एम.ए. पूर्वार्द्ध

समाजशास्त्र, तृतीय प्रश्नपत्र

भारत में ग्रामीण समाज

(RURAL SOCIETY IN INDIA)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Shailja Dubey
   Professor
   Institute for Excellence in Higher Education, Bhopal (M.P.)

2. Dr. Madhavi Lata Dubey
   Professor
   Govt. Dr. Shyama Prasad Mukharjee Science and Commerce College, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Archana Chauhan
   Assistant Professor
   Govt. S.N. (P.G.) Autonomous College, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Anjali Singh
   Director, Student Support
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

4. Dr. Shailja Dubey
   Professor
   Institute for Excellence in Higher Education, Bhopal (M.P.)

5. Dr. Madhavi Lata Dubey
   Professor
   Govt. Dr. Shyama Prasad Mukharjee Science and Commerce College, Bhopal (M.P.)

6. Dr. Archana Chauhan
   Assistant Professor
   Govt. S.N. (P.G.) Autonomous College, Bhopal (M.P.)

COURSE WRITERS

Prof. Meenu Agrawal, Principal, Ginni Devi Modi Girls P.G. College, Modinagar, Ghaziabad, U.P.
Units (1.0-1.1, 1.2-1.2.3, 1.2.4, 1.3-1.7, 2.0-2.1, 2.5-2.9, 3.3-3.3.1)

Dr. Mohsin Uddin, Consultant, School of Social Sciences, I.G.N.O.U., New Delhi
Units (2.2-2.4, 4.2, 5.2-5.3)

Dr. Rupesh Tyagi, Assistant Professor (Contractual), Dept. of Economics, C.C.S. (Chaudhary Charan Singh) University, Ramgarhi, Meerut, U.P.
Units (3.0-3.1, 3.2-3.2.1, 3.4-3.8, 4.0-4.1, 4.3-4.7, 5.0-5.1, 5.4-5.8)

Dr. Sarita Jain, Lecturer, Department of Economics, Ginni Devi Modi Girls PG College, Modinagar, U.P.
Unit (3.2.2, 3.3.2)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

भारत में ग्रामीण समाज

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 भारत में ग्रामीण समाज : सामाजिक संरचना के रूप में कृषि एवं कृषक कृषक एवं ग्रामीण समाज में जाति कृषक एवं ग्रामीण समाज में परिवार कृषक एवं ग्रामीण समाज में गांव, आवास एवं बस्ती कृषक एवं ग्रामीण समाज में धर्म	**इकाई 1** : भारत में ग्रामीण समाज : एक अवलोकन **(पृष्ठ 3–40)**
इकाई–2 उत्पादन के तरीके और कृषि संबंधों पर बहस किरायेदारी/बटाईदारी भूमि और श्रम कृषि कानून और ग्रामीण सामाजिक संरचना	**इकाई 2** : उत्पादन विधा और कृषि संबंध पर बहस **(पृष्ठ 41–66)**
इकाई–3 ग्रामीण समाज हेतु योजनाबद्ध परिवर्तन : पंचायती राज, स्थानीय स्वशासन योजनाबद्ध परिवर्तन पंचायती राज एवं स्थानीय स्वशासन सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा ग्रामीण विकास की रणनीतियां सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्रामीण विकास की रणनीतियां	**इकाई 3** : ग्रामीण समाज : स्थानीय स्वशासन, विकास कार्यक्रम एवं एजेंसियां **(पृष्ठ 67–138)**
इकाई–4 भारत के प्रमुख कृषि आंदोलन : आलोचनात्मक विश्लेषण	**इकाई 4** : भारत के प्रमुख कृषि आंदोलन : एक आलोचनात्मक विश्लेषण **(पृष्ठ 159–155)**
इकाई–5 वैश्वीकरण और कृषि पर इसके प्रभाव जल और कृषि तथा सिंचाई प्रबंधन प्रथाएं	**इकाई 5** : वैश्वीकरण और कृषि पर इसके प्रभाव : जल और कृषि, सिंचाई प्रबंधन प्रथाएं **(पृष्ठ 157–174)**

विषय–सूची

परिचय **1**

इकाई 1 भारत में ग्रामीण समाज : एक अवलोकन **3–40**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 भारत में ग्रामीण समाज : सामाजिक संरचना के रूप में कृषि एवं कृषक
  1.2.1 कृषक एवं ग्रामीण समाज में जाति
  1.2.2 कृषक एवं ग्रामीण समाज में परिवार
  1.2.3 कृषक एवं ग्रामीण समाज में गांव, आवास एवं बस्ती
  1.2.4 कृषक एवं ग्रामीण समाज में धर्म
1.3 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.4 सारांश
1.5 मुख्य शब्दावली
1.6 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.7 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 उत्पादन विधा और कृषि संबंध पर बहस **61–66**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 उत्पादन के तरीके और कृषि संबंधों पर बहस
2.3 किरायेदारी/बटाईदारी भूमि और श्रम
2.4 कृषि कानून और ग्रामीण सामाजिक संरचना
2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 ग्रामीण समाज : स्थानीय स्वशासन, विकास कार्यक्रम एवं एजेंसियां **67–138**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 ग्रामीण समाज हेतु योजनाबद्ध परिवर्तन : पंचायती राज, स्थानीय स्वशासन
  3.2.1 योजनाबद्ध परिवर्तन
  3.2.2 पंचायती राज एवं स्थानीय स्वशासन
3.3 सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा ग्रामीण विकास की रणनीतियां
  3.3.1 सामुदायिक विकास कार्यक्रम
  3.3.2 ग्रामीण विकास की रणनीतियां
3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.5 सारांश
3.6 मुख्य शब्दावली

3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 भारत के प्रमुख कृषि आंदोलन : एक आलोचनात्मक विश्लेषण **139–155**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 भारत के प्रमुख आंदोलन : आलोचनात्मक विश्लेषण
4.3 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.4 सारांश
4.5 मुख्य शब्दावली
4.6 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.7 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 वैश्वीकरण और कृषि पर इसके प्रभाव : जल और कृषि, सिंचाई प्रबंधन प्रथाएं **157–174**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 वैश्वीकरण और कृषि पर इसके प्रभाव
5.3 जल और कृषि तथा सिंचाई प्रबंधन प्रथाएं
5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.5 सारांश
5.6 मुख्य शब्दावली
5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.8 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'भारत में ग्रामीण समाज' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित एम.ए. (पूर्वार्द्ध) के पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई है।

'गांव' मानव के सामूहिक जीवन का प्रथम पालना है। मानव ने सबसे पहले जब सामूहिक रूप में रहना प्रारंभ किया तो गांव ही उसके निवास स्थान रहे। संसार की अधिकांश जनसंख्या आरंभ से लेकर अब तक गांवों में ही बसी है। समाजशास्त्र में अध्ययन की सुविधा के लिए समय–समय पर अनेक शाखाओं और उपशाखाओं की स्थापना की गई। आदिम समाजों के समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए सामाजिक मानवशास्त्र की स्थापना की गई। समाज से संबंधित मनोवैज्ञानिक पक्ष का गहन अध्ययन करने के लिए सामाजिक मनोविज्ञान एक विशिष्ट विषय के रूप में विकसित हुआ। इसी क्रम में ग्रामीण समाजों का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण का गहन एवं सारगर्भित अध्ययन करने के लिए ग्रामीण समाजशास्त्र विषय की स्थापना की गई। ग्रामीण समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण समाजों का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य से अध्ययन करके इन समाजों की सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक संरचना, प्रकार्य और उनमें होने वाले परिवर्तनों का गहन अध्ययन करना है।

अध्ययन की सुविधा के लिए पुस्तक को पांच इकाइयों में समायोजित किया गया है। प्रत्येक इकाई के आरंभ में परिचय के पश्चात विषय–विश्लेषण से पूर्व इसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। सभी इकाइयों के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' स्तंभ के जरिए विद्यार्थियों को स्व–मूल्यांकन का अवसर भी दिया गया है। इसके अतिरिक्त 'मुख्य शब्दावली' के अंतर्गत कठिन शब्दों के अर्थ भी दिए गए हैं। पुस्तक की समस्त इकाइयों का वर्णन इस प्रकार है–

पहली इकाई में भारत के ग्रामीण समाज के प्रमुख बिंदुओं पर प्रकाश डाला गया है तथा ग्रामीणों व कृषकों से संबंधित विभिन्न बातों का विवेचन किया गया है।

दूसरी इकाई में कृषि में बंटाईदारी व्यवस्था के अच्छे–बुरे पहलुओं का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है तथा ग्रामीण सामाजिक संरचना का विश्लेषण किया गया है।

तीसरी इकाई ग्रामीण समाज में योजनाबद्ध परिवर्तनों पर आधारित है। इसके अंतर्गत पंचायती राज का विस्तृत विश्लेषण किया गया है तथा ग्रामीण विकास की विभिन्न रणनीतियों पर प्रकाश डाला गया है।

चौथी इकाई भारत के प्रमुख कृषि आंदोलनों से संबंधित है। इस इकाई में भारत में हुए विभिन्न कृषि आंदोलनों का विस्तृत आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है।

पांचवीं इकाई वैश्वीकरण और कृषि पर इसके प्रभावों के बारे में जानकारी देती है। इसमें जल एवं कृषि जैसे मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है तथा ग्रामीण विकास की रणनीतियों की चर्चा की गई है।

प्रस्तुत पुस्तक में भारत के ग्रामीण समाज के वैभव को आसान भाषा में रोचक ढंग से पेश किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों की जिज्ञासा को शांत कर भारत में ग्रामीण समाज की स्थिति को समझने में सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1 भारत में ग्रामीण समाज : एक अवलोकन

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 भारत में ग्रामीण समाज : सामाजिक संरचना के रूप में कृषि एवं कृषक
  1.2.1 कृषक एवं ग्रामीण समाज में जाति
  1.2.2 कृषक एवं ग्रामीण समाज में परिवार
  1.2.3 कृषक एवं ग्रामीण समाज में गांव, आवास एवं बस्ती
  1.2.4 कृषक एवं ग्रामीण समाज में धर्म
1.3 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.4 सारांश
1.5 मुख्य शब्दावली
1.6 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.7 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

ब्रिटिश शासन की शुरुआत से पहले भारत की अर्थव्यवस्था बुनियादी तौर पर कृषि पर आधारित थी। स्थानीय दस्तकारी सेवाएं तथा व्यापारिक गतिविधियां सीधे कृषि से जुड़ी हुई थीं। गांवों की बहुतायत वाले समाज के ऊपर एक छोटा सा शहरी ढांचा था, जो अपने अस्तित्व के लिये शासकों और न्याय–प्रणाली पर निर्भर था। जहां तक कृषि के क्षेत्र में उत्पादन सम्बन्धों का सवाल है, विद्वान इस बारे में एकमत नहीं हैं। एक छोर पर मार्क्स हैं, जिनका विश्वास है कि यूरोप के सामंतवाद के प्रभुत्व वाले समाज से भिन्न, भारतीय ग्रामीण समाज की विशेषता उत्पादन की वह प्रणाली है, जो समूचे एशिया में विद्यमान थी। मार्क्स के अनुसार इस प्रणाली पर आधारित भारतीय ग्रामों की दो महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं– पहली भूमि और सम्पत्ति पर साझा अधिकार तथा इस पर संयुक्त रूप से खेती–बाड़ी और दूसरी, जाति प्रथा पर आधारित अपरिवर्तनीय श्रम विभाजन। कई विद्वानों ने इस एशियाई पद्धति के बारे में मार्क्स के दृष्टिकोण को अस्वीकार किया है। उनका विश्वास है कि यद्यपि भारत का कृषि पर आधारित ढांचा यूरोप से काफी अलग है, लेकिन इसकी विशेषता अपना अलग किस्म का सामंतवाद है।

भारतीय ग्रामीण समाज की एक विशेषता यह थी कि इसमें जाति प्रथा पर आधारित स्पष्ट श्रम–विभाजन था। इस श्रम विभाजन के अनुसार मेहनत–मजदूरी और हेय दृष्टि से देखे जाने वाले कार्य अक्सर नीची समझी जाने वाली जातियों को सौंप दिए जाते थे। जिन इलाकों में ब्राह्मणों से अलग धर्म मानने वालों का बहुमत था, वहां भी जातिगत आधार पर श्रम–विभाजन लागू होता था। जाति–प्रथा के अंतर्गत तथाकथित नीचे की जातियों और अछूत समझे जाने वाले को जीवन के बुनियादी अधिकारों और मानवीय गरिमा तक से वंचित कर दिया जाता था। जमींदारों द्वारा खेतिहर मजदूरों को, जो आम तौर पर अनुसूचित जातियों के लोग हुआ करते थे तथा

टिप्पणी

बढ़ई, सुनार, नाई, ब्राह्मण आदि को जो पैसा दिया जाता था, वह जजमानी प्रथा के अनुसार होता था। सेवाओं के एवज में चीजें दी जाती थीं, जो कुछ मामलों में उपज का एक निश्चित हिस्सा होती थी। इस वजह से गांवों में रहने वाले सभी लोगों की खुशहाली इस बात पर निर्भर करती थी कि फसल कैसी हुई। खुशहाली का सीधा सम्बन्ध फसल के अच्छे या बुरा होने पर निर्भर रहता था। लेकिन इसके बावजूद उपज का समाज में वितरण एक समान नहीं था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही, भारत में कृषक समुदाय के लोगों की दशा सुधारने के उद्देश्य से कृषि क्षेत्र में बदलाव लाने के योजनाबद्ध प्रयास शुरू हुए। कृषि में नयी जान फूंकने के इरादे से कृषि के विकास में संस्थागत बाधाओं को दूर करने के लिये भूमि सुधारों को लागू किया गया।

इस इकाई में भारत के ग्रामीण एवं कृषक समाज के स्वरूप एवं विशेषताओं, ग्रामीण परिवार, ग्रामीण भारत की कृषि संरचना में जाति और वर्ग, जाति एवं उससे जुड़ी उपजीविकाओं की स्थिति में आ रहे बदलावों के साथ–साथ भारत में प्रचलित जजमानी व्यवस्था का अध्ययन किया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- ग्रामीण एवं कृषक समाज के स्वरूप एवं विशेषताओं से अवगत हो पाएंगे;
- ग्रामीण परिवार की संरचना एवं विशेषताओं को जान पाएंगे;
- ग्रामीण समाज में जाति एवं वर्ग के स्वरूप तथा विशेषताओं को समझ पाएंगे;
- भारत में जाति एवं उनसे जुड़ी उपजीविकाओं की बदलती स्थिति का विश्लेषण करने में सक्षम हो पाएंगे;
- भारत में जजमानी व्यवस्था के स्वरूप एवं उसकी विशेषताओं का परिचय प्राप्त कर पाएंगे।

1.2 भारत में ग्रामीण समाज : सामाजिक संरचना के रूप में कृषि एवं कृषक

मनुष्य समाज में रहता है। समाज के विभिन्न रूपों के उदाहरण हैं– ग्रामीण समाज (Rural Society), नगरीय समाज (Urban Society) तथा जनजातीय समाज (Tribal Society)। इन सभी समाजों के सामुदायिक स्वरूप, संबंधों के सांस्कृतिक आधार तथा धनोपार्जन के तरीकों में भिन्नता होती है। समाजशास्त्रीय दृष्टि में, ग्रामीण समाज अनौपचारिक, घनिष्ठ प्राथमिक संबंधों की प्रधानता, छोटा आकार तथा कृषि की प्रधानता से पहचाना जाता है। ग्रामीण समाज का प्रकृति एवं मनुष्य दोनों से करीबी संबंध होता है। पी.एच. लैण्डिस के विचारानुसार, "गांव को प्रकृति पर प्रत्यक्ष निर्भरता, छोटा आकार, निवासियों के बीच घनिष्ठ और प्राथमिक संबंधों के आधार पर पहचाना जा सकता है।" (Rural Society in India: Agriculture and Farmers as Social Structure)

टिप्पणी

भारत गांवों में बसता है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत की कुल जनसंख्या का 68.8 प्रतिशत गांव में रहता है। कुल 6,40,930 गांवों में 83,34,63,448 व्यक्ति निवास करते हैं। 32.95 प्रतिशत गांवों की आबादी 500 से कम है, जबकि 58.17 प्रतिशत गांवों की आबादी 2000 से अधिक है।

ग्रामीण समाज की परिभाषा

ए.आर. देसाई के कथनानुसार, "ग्रामीण समाज की इकाई गांव है, यह एक रंगमंच है, जहां ग्रामीण जीवन का प्रमुख भाग स्वयं प्रकट होता है और कार्य करता है। ग्राम सामूहिक निवास की प्रथम स्थापना है और कृषि अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति है।"

जे.पी. सिंह ने 'समाज विज्ञान विश्वकोष' में ग्रामीण समाज के बारे में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं– "किसी स्थानीय क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों तथा संस्थाओं के बीच साहचर्य भाव के कारण गठित समुदाय जिसमें अधिकांश व्यक्ति सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और दूसरी सेवाओं का सामूहिक जीवन में उपयोग करते हैं तथा मूल प्रवृत्तियों और व्यवहार में सामान्य एकता होती है ऐसे समुदाय का आकार छोटा, जनसंख्या के घनत्व का कम होना एवं कृषि मुख्य व्यवसाय होता है।

राबर्ट रेडफील्ड ने गांव को इस प्रकार परिभाषित किया है– "गांव लघु समुदाय का पर्याय है, जिसमें मुख्य रूप से चार लक्षण मौजूद होते हैं– लघुता, विशिष्टता, समरूपता, आत्मनिर्भरता।"

सोरोकिन ओर जिमरमैन का कथन है कि "गांव प्रकृति के निकट है, गांव में प्राथमिक संबंध होते हैं तथा गांव में धर्म एवं परंपरा की प्रधानता होती है और इसके साथ ही गांव में सामाजिक गतिशीलता कम होती है।"

सैंडरसन के अनुसार, "ये ग्रामीण समुदाय वह स्थानीय क्षेत्र है जिसमें यहां निवास करने वाले लोगों की सामाजिक अंतःक्रिया और उनकी संस्थाएं सम्मिलित हैं। जिसमें यह खेतों के चारों ओर बिखरी झोंपड़ियों या ग्रामों में रहते हैं और जो उनकी सामान्य गतिविधियों का केंद्र है।"

ग्रामीण समाज की इन सभी परिभाषाओं (Definitions of Rural Society) से यह स्पष्ट हो जाता है कि घनिष्ठ प्राथमिक संबंध, सामूहिकता, कृषि प्रधान जीवन शैली तथा प्रकृति पर निर्भरता, ग्रामीण समाज की विशेषताएं हैं।

(**नोट**– ग्रामीण समुदाय को ग्रामीण समाज के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।)

आमतौर पर ग्रामीण समुदाय को किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रह रहे लोगों के समूह के रूप में परिभाषित किया जाता है। इनके लक्षण समान धार्मिक विश्वास, समान आदतें, समान जीवनशैली और सामाजिक संवाद के विभिन्न प्रकार होते हैं। 'ग्रामीण' शब्द का आशय कम आबादी वाले किसी छोटे इलाके से है, जिनके लिए खेती केवल पेशा नहीं, बल्कि जीवनशैली भी होती है।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी समाजशास्त्री लुइस डुमों ने ग्रामीण समुदाय के तीन अर्थ निम्नानुसार बताए हैं–

1. राजनीतिक समाज,

2. जमीन के सह–मालिकों की संस्था,
3. परंपरागत अर्थव्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था का प्रतीक।

टिप्पणी

ग्रामीण समाज सामान्य रूप मे ग्रामीण समुदायों का एक समूह होता है। दूसरे शब्दों में, कोई ग्रामीण समाज कई ग्रामीण समुदायों का संग्रह होता है और किसी ग्रामीण समुदाय की सारी विशेषताएं और लक्षण इसमें भी होते हैं।

गांव आज भी एक संबद्ध भौगोलिक इकाई के रूप में अस्तित्व में हैं। गांवों में रहने वाले लोगों की संख्या इसका प्रमाण है। हालांकि, ग्राम्य पहचान, एकता, और निष्ठा कई बार जाति और धार्मिक कारणों से प्रभावित हो जाती है। गांवों में और गांवों के बीच ही उपद्रवी और विरोधी गुट होते हैं। भूमि सुधार, पंचायती राज, सांस्कृतीकरण और अन्य संरचनात्मक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों ने ग्रामीण सामाजिक संरचना में और बाहरी जगत से उसके संबंधों में भारी बदलाव किया है। गांव अपने निवासियों के लिए स्पष्ट रूप से महत्वपूर्ण सामाजिक इकाई हैं, जो वृहद समाज में हिस्सा लेते हैं और सभ्यता के रूपों में भागीदारी करते हैं।

गांव घुमक्कड़ समूहों से स्थायी बस्तियों में रूपांतरण का महत्व दर्शाते हैं। गांव मानव जाति का सबसे प्राचीन स्थायी समुदाय है। गांव और ग्रामीण समुदाय दुनिया के हर हिस्से में मौजूद हैं और वे मानव प्रजाति की स्थायी और स्थिर बस्तियों के सबसे प्राचीन उदाहरण हैं।

ग्रामीण समाज की विशेषताएं

ग्रामीण समाज की विशेषताएं (Features of Rural Society) निम्न हैं–

1. **मुख्य व्यवसाय कृषि** : ग्रामीण समुदाय की आजीविका का मुख्य आधार (Main Occupation) कृषि होता है। हालांकि अन्य व्यवसाय भी गांवों में होते हैं तथापि कृषि प्रमुख व्यवसाय है।
2. **लघु समुदाय** : ग्रामीण समुदाय का आकार छोटा (Small Community) होता है। भारत में अधिकतर गांवों की जनसंख्या 200 से 500 के बीच है। हालांकि पलायन से यह संख्या कम हो गई है। 5000 की जनसंख्या अधिकतम मानी जाती है। हालांकि न्यूनतम शून्य भी हो सकती है (पलायन एक प्रमुख कारण है)।
3. **सामान्य रूप से जीवनयापन** : गांव में रहने वाले लोगों के धर्म, जाति अलग–अलग हो सकते हैं किंतु उनकी प्रथाओं, काम करने के तरीकों, मनोवृत्तियों एवं रुचियों में समानता देखने को मिलती है। ग्रामीण समुदाय एक सामान्य जीवन विधि (Normal Life) से जीवन निर्वाह करते हैं जिसमें समरूपता होती है।
4. **परिवार एक महत्वपूर्ण संस्था** : ग्रामीण समाज में परिवार (Family) सर्वप्रमुख इकाई है। परिवार ही व्यक्ति की प्रस्थिति निर्धारण का आधार होता है। सामाजिक गतिविधियों में व्यक्तियों के बीच संबंधों का आधार पारिवारिक संबंध ही होते हैं। जैसे कि विवाह संबंधों में परिवार की पृष्ठभूमि महत्वपूर्ण होती है।
5. **धर्म को प्राथमिकता** : ग्रामीण समुदाय की प्रकृति से निकटता के कारण उनमें अलौकिक शक्ति के प्रति भय मिश्रित श्रद्धा एवं विश्वास उत्पन्न हो जाना

टिप्पणी

स्वाभाविक है जो धार्मिक नियमों के अनिवार्यतः पालन के रूप में फलित होता है। स्थानीय देवी–देवताओं, मान्यताओं और अन्य उपासना पद्धतियों की उपस्थिति के कारण ग्रामीण समुदाय एक नैतिक समुदाय में परिवर्तित हो जाता है। अतः ग्रामीण समाज में धर्म (Religion) सामाजिक, आर्थिक तथा पारिवारिक क्रियाओं के आधार के साथ–साथ अनौपचारिक नियंत्रण का साधन भी बन जाता है।

अशिक्षा एवं निरक्षरता जनित भाग्यवादिता इसका प्रमुख कारण है। 2011 की जनगणना के अनुसार गांवों में शिक्षा एवं साक्षरता का प्रतिशत अभी भी अपेक्षाकृत कम है। ग्रामीण क्षेत्रों में छात्र शिक्षा पूरी कर पाएं, इस हेतु और अधिक प्रयास की आवश्यकता है।

6. **श्रमशील ग्रामीण** : ग्रामीण समाज में क्योंकि सभी काम लगभग सभी लोग कर लेते हैं, अतः कहा जा सकता है कि यहां श्रम के विशेषीकरण (Specialisation of labour) का अभाव है। फसल बोना, काटना, खेती के अन्य कार्य की जानकारी सभी लोगों को होती है।
7. **परस्पर घनिष्ठता** : आकार छोटा होने के कारण ग्रामीण समुदाय के सभी व्यक्ति घनिष्ठ आमने–सामने के संबंधों के आधार पर अंतःक्रिया (Mutual intimacy) करते हैं। पड़ोसी भी परिवार के सदस्य की तरह व्यवहार करता है।
8. **जन्मानुसार भूमिकाओं का निर्धारण** : ग्रामीण समुदाय में जन्म (जाति) से ही व्यक्ति की भूमिका (Occupation by birth) निश्चित हो जाती है। जाति से व्यक्ति के व्यवसाय का सीधा संबंध है और भारत में सभी जातियां अपने कार्यों से एक–दूसरे को सेवाएं देती हैं और यह सेवाओं का आदान–प्रदान जजमानी व्यवस्था के अंतर्गत होता है।
9. **सभी के विचारों और भावनाओं को प्रधानता** : ग्रामीण समाज के व्यक्तियों का व्यवहार व्यक्तिगत न होकर संपूर्ण ग्रामीण समाज की इच्छा से प्रभावित होता है क्योंकि ग्रामीण समाज परंपरागत विचारों के पालन को प्रमुखता देता है अतः रूढ़िवादिता का बाहुल्य नजर आता है (Collective adherence to traditional ideas)। आज भी पंच परमेश्वर का विचार ग्रामीण समुदाय के लिए महत्वपूर्ण है।

आज के गांवों का बदलता स्वरूप

लोकतांत्रिक नेतृत्व का विकास : ग्रामीण समाज में पंचायतीराज संस्थाओं (Local-rural Governing Bodies) के विकास का आधार लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया है। 73वें संशोधन ने पंचायतों को कानूनी मान्यता दी है तथा कमजोर वर्ग में नेतृत्व को उभारने हेतु आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

महिलाओं की स्थिति : पंचायतीराज में महिलाएं भी अपनी परंपरागत स्थिति से आगे बढ़ कर कार्य कर रही हैं। देश की 2.5 लाख पंचायतों के लगभग 32 लाख चुने गए प्रतिनिधियों में से करीब–करीब आधी संख्या (13 से 14 लाख) महिला सदस्यों की है। स्वसहायता समूहों ने महिलाओं की आर्थिक भागीदारी को बढ़ाया है। इन सभी प्रयासों में महिलाओं की सहभागिता (Women Empowerment) ने उन्हें घर व बाहर की दुनिया में स्वतंत्र होकर जीने में सहायता प्रदान की है।

टिप्पणी

भारतीय ग्रामीण समाज के सामाजिक सांस्कृतिक पहलू

1. **संयुक्त परिवार व्यवस्था** : ग्रामीण समाज की केंद्रीय इकाई संयुक्त परिवार (Joint Family) है जिसका आधार एक साझा निवास स्थान, संयुक्त रसोई, संपत्ति में सहभागिता तथा घनिष्ठ प्राथमिक संबंध हैं। ग्रामीण परिवार आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करता है। सामाजिक परिवर्तन से परिवार की संरचना में बदलाव तो आया है किंतु प्रकार्यात्मक एकता अभी भी विद्यमान है।

2. **जाति प्रथा का बाहुल्य** : अनेक जातियों में बंटा समाज (Casteism) भारतीय ग्रामीण समाज की एक प्रमुख विशेषता है। जाति समूह जन्म पर आधारित होता है तथा इसमें अंतरविवाह नियम लागू होता है। जाति द्वारा प्रदत्त प्रस्थिति का निर्धारण होता है। जाति व्यवस्था श्रम विभाजन का भी आधार है और यह भारतीय गांवों की कृषि केंद्रित व्यवस्था की विशेषता रही है। जाति समूह के अपने आंतरिक संगठन व नियम होते हैं जिसके अंतर्गत उत्पादन एवं सेवाओं का आदान–प्रदान एवं विनिमय होता है। परंपरागत व्यवसाय, धार्मिक आस्थाएं, प्रथाएं तथा रीतिरिवाज, खानपान के नियम और सजातीय विवाह इन जाति समूहों की आंतरिक एकता को स्थिरता प्रदान करते हैं। ग्रामीण समाज में जाति आधारित संस्तरण स्पष्टतया देखा जा सकता है।

3. **अर्थ व्यवस्था का आधार कृषि** : कृषि आधारित अर्थव्यवस्था ग्रामीण समाज की संरचना का प्रमुख आधार है (Agriculture is a way of life)। आंद्रे बेते के कथनानुसार, "कृषि मात्र व्यवसाय नहीं बल्कि एक जीवनशैली है।" भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में तीन वर्ग प्रमुखतया दृष्टिगोचर होते हैं– (1) स्वामी (2) कामकाजी कृषक (3) मजदूर। इसके साथ ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था में वस्तुओं एवं सेवाओं का विनिमय परंपरागत जजमानी व्यवस्था के अंतर्गत होता है। जजमानी व्यवस्था के बारे में विलियम वायजर ने अपनी पुस्तक 'द हिंदू जजमानी सिस्टम' में लिखा है कि, "गांव का प्रत्येक जाति समूह अन्य जाति के परिवारों को कुछ निश्चित सेवाएं प्रदान करता है। बदले में पारितोषिक के रूप में वस्तुएं अथवा अनाज प्राप्त करता है। लेन–देन की यह प्रथा बगैर अनुबंध के होती है। हालांकि अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण के फलस्वरूप वर्तमान में यह प्रथा कमजोर पड़ गई है।

4. **लैंगिक भेदभाव** : परंपरागत मानदंडों पर आधारित ग्रामीण समाज में स्त्री–पुरुष में असमानता (Gender Discrimination) की स्थिति बहुत अधिक दिखाई देती है। पितृसत्तात्मक मूल्यों तथा जाति आधारित नियमों के पालन से तथा सांस्कृतिक आधार पर निर्मित लैंगिक भूमिकाओं ने महिलाओं की स्थिति को कमजोर बनाया है। इसके अलावा पर्दा प्रथा, बाल विवाह, अशिक्षा, अंधविश्वास जैसे कारणों ने महिलाओं की स्थिति को ग्रामीण समाज में तुलनात्मक रूप से अधिक कमजोर किया है।

5. **वंश व नातेदारी प्रथा के विविध रूप** : ग्रामीण समाज के परिवारों में एक निश्चित वंश परंपरा (Lineage) होती है जिसे कुल कहते हैं। विवाह संबंध कुल

टिप्पणी

के बाहर ही हो सकते हैं। रक्त संबंध एवं वैवाहिक संबंध, नातेदारी (Kinship) का आधार होते हैं। उत्तर तथा दक्षिण भारत में नातेदारी में भिन्नता पाई जाती है। उत्तर भारत में एक ही गांव या गोत्र में विवाह पर प्रतिबंध है, वहीं दक्षिण भारत में भाई–बहिन के बच्चों एवं ममेरे–फुफेरे भाई–बहनों में विवाहों को प्रमुखता दी जाती है। नातेदारी से उत्तराधिकार निर्धारण भी होता है।

6. **ग्राम पंचायत बनाम जाति पंचायत** : परंपरागत भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना में जमींदारी प्रथा, ग्राम पंचायत (Village Panchayat) तथा जाति पंचायत (Caste Panchayat) शक्ति संरचना का आधार रहे हैं। लोगों के भौतिक तथा आर्थिक हितों की प्रतिनिधि जमींदारी प्रथा थी तो ग्राम पंचायतें, जाति पंचायतें, ग्रामीण राजनीति की सामाजिक विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करती थीं। आधुनिक भारतीय ग्रामीण समाज में पंचायती राज के माध्यम से लोकतांत्रिक नेतृत्व उभर रहा है फिर भी जाति समूह आज भी ग्रामीण शक्ति संरचना के महत्वपूर्ण तत्व हैं।

ग्रामीण समाज का क्रमिक विकास

ग्राम समाज विकास के विभिन्न चरणों से गुजरा है। इनमें से कुछ निम्नानुसार हैं–

- **आदिम ग्राम समुदाय** : आदिकालीन ग्राम समुदाय (Primitive Village Community) आकार में बहुत छोटे होते थे और उनमें केवल दस के आस–पास ही परिवार होते थे। ये परिवार एक–दूसरे के बहुत निकट होते थे। उनके बीच सामाजिक संबंध बहुत मजबूत होते थे। आरंभिक काल में, परिवहन और संचार सुविधाओं के अभाव में वे अन्य ग्राम समुदायों के संपर्क में नहीं रहते थे। यह जमीन का सवाल था, तो यह समुदाय सामूहिकता के आधार पर संगठित रहता था। जमीन के मालिक सभी परिवारों के सदस्य संयुक्त रूप से होते थे। रक्त संबंध और निकट संबंधों का बंधन इन परिवारों के बीच होता था, जो सुनिश्चित करता था कि उनके बीच उच्च स्तर की सामुदायिक भावना बनी रहे।
- **मध्ययुगीन ग्राम समुदाय** : इस प्रकार के समुदाय (Medieval Village Community) में, न तो जमीन का संयुक्त स्वामित्व अहम भूमिका निभाता था और न ही रक्त संबंध लोगों को एक–दूसरे से जोड़े रखने में कोई महत्वपूर्ण किरदार निभाते थे। भूमि का मालिक राजा या कोई कुलीन होता था। सामान्य ग्रामीण उस भूमि पर खेती करते थे और भूमि के मालिक उन्हें मजदूरी देते थे। वे काश्तकार थे और जमीन मालिक उनके मालिक होते थे। इसी काल में सामंतशाही की प्रथा अस्तित्व में आई जिसमें मालिक काश्तकारों का शोषण करता था और उनसे पूरी ताबेदारी, जी–हुजूरी और निष्ठा की अपेक्षा करता था।
- **आधुनिक ग्राम समुदाय** : आधुनिकीकरण और औद्योगिकीकरण ने ग्रामीण समुदायों के विकास पर रोक लगाई। इनके बजाय, शहरी समुदाय विकसित होने और फलने–फूलने लगे। हालांकि, इसके बावजूद गांव और ग्राम समुदाय दुनिया भर में अस्तित्व बनाए हुए हैं। भारत में, अब भी ये रिहाइश का प्रभावशाली तरीका हैं और 2011 की जनगणना के अंतरिम आंकड़ों के अनुसार 69 प्रतिशत

टिप्पणी

भारतीय आबादी गांवों में रहती है। भारत में स्वतंत्रता के बाद, परिवहन और संचार साधनों के विस्तार के साथ ही ग्रामीण जीवन शहरी जीवन के अधिक निकट आया। नई सड़कें और रेल की पटरियां बनने से गांव शहरों से जुड़ने लगे। इससे गांवों की पहुंच बाजारों तक होने लगी जिससे ग्रामीणों को अपने उत्पादों के बेहतर दाम पाने के अवसर मिलने लगे। इस प्रकार, गांवों में आधुनिकता की प्रक्रिया शुरू हो गई। ऐसे गांवों को आधुनिक ग्राम समुदाय (Modern Village Community) कहते हैं।

ग्रामीण समाज के विकास के कारक

ग्रामीण समाज के विकास के लिए निम्न कारक जिम्मेदार हैं–

- **भौगोलिक कारक** : जमीन, पानी और मौसम जैसे कारक भौगोलिक कारकों (Geographical Factors) में शामिल होते हैं। जमीन सबसे अहम कारक है और ग्राम समुदायों की स्थापना और विकास में इसका बहुत महत्वपूर्ण योगदान होता है। ग्राम समुदाय केवल उपजाऊ जमीन पर ही रह सकते हैं और विकास कर सकते हैं क्योंकि ऐसी ही जमीन पर खेती फल–फूल सकती है। यही कारण है कि ऐतिहासिक रूप से गांव उपजाऊ भूमि पर ही होते हैं और पथरीली तथा रेतीली जमीन से अकसर दूर होते हैं।

  ग्राम समुदाय की स्थापना में पानी की उपलब्धता भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नदियों या झरनों के पास के गांवों की आबादी अकसर ज्यादा होती है। पानी मनुष्यों, जानवरों और फसलों के लिए जीवनदायी होता है। यदि किसी गांव में या गांव के आस–पास ठीक–ठाक दूरी पर पानी नहीं है तो जीवन कठिन हो जाता है।

- **आर्थिक कारक** : किसी ग्राम समुदाय का विकास उसकी स्थिति पर निर्भर करता है। अगर गांव की स्थिति और सुविधाएं अच्छी हैं तो गांव वाले ज्यादा कमाई कर सकते हैं और जीवन में आगे बढ़ सकते हैं। एक आर्थिक कारक (Economical Factors) कुटीर उद्योगों की स्थिति भी है। अगर कुटीर उद्योगों की हालत अच्छी है तो गांव वाले कुछ अतिरिक्त आमदनी पा सकते हैं।

- **सामाजिक कारक** : ग्राम समुदाय के विकास में सामाजिक कारकों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। शांति और सुरक्षा, सहयोग, त्योहार आदि ग्राम समुदाय के विकास में अहम भूमिका निभाते हैं। ये कारक ग्रामीणों के जीवन की सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं, आर्थिक तथा अन्य मामलों में सहयोग सुनिश्चित करते हैं और उनके बीच एकता की भावना को प्रोत्साहन देते हैं।

  बुनियादी विश्लेषण में, यह प्रमाणित होता है कि गांवों और ग्राम समुदाय का विकास बुद्धि से ही सुनिश्चित हो सकता है। साक्षरता के निम्न स्तर और शिक्षा की खराब गुणवत्ता के कारण अल्पविकसित और विकासशील देशों में ग्राम समुदाय अपनी आमदनी नहीं बढ़ा पा रहे हैं। इसके विपरीत विकसित पश्चिमी देशों में ग्राम समुदाय अधिक समृद्ध हैं।

टिप्पणी

कृषक समाज की अवधारणा

मानवशास्त्री क्रोबर के अनुसार, "कृषक समाज मध्यवर्ती स्थिति में है इसके एक ओर जनजातीय समाज है और दूसरी ओर नगरीय समाज है।"

इस परिभाषा का विश्लेषण कृषक समाज की अवधारणा (Concept of agricultural society) के बारे में विचार देता है कि गैर जनजातीय गांवों वाले समाज को कृषक समाज कहा जा सकता है। अन्य शब्दों में, जनजातीय समाज के परिवर्तित सामाजिक तथा आर्थिक जीवन ने कृषक समाज को जन्म दिया। एक रोचक प्रश्न यह भी है कि क्या कृषक समाज एवं ग्रामीण समाज एक ही हैं? ध्यान रहे कि भूमि निर्धारण, कृषि कार्यप्रणाली, जाति संरचना जैसी विशेषताएं केवल भारतीय ग्रामीण समाज में ही पाई जाती हैं जो अन्य ग्रामीण समाजों से अलग हैं। आंद्रे बेते इस बारे में कहते हैं, "यदि कोई व्यक्ति कृषक समाज और जनजातीय समाज जैसे शब्दों से ग्रामीण भारत की कृषि संरचना को समझना चाहता है तो वह किसी भी प्रकार इसे नहीं समझ सकता।" आशय यह है कि कृषक समाज की अवधारणा को पंरपरागत भारतीय ग्रामीण समाज के जातीय संस्तरण एवं जटिल कृषि संबंधी संस्तरण के विश्लेषण से ही समझा जा सकता है।

कृषक (Peasant), कृषक वर्ग तथा किसान (Farmer)

विदेशी मानवशास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों द्वारा बताई गई कृषक एवं कृषक वर्ग की विशेषताओं को निम्न प्रकार से संकलित किया जा सकता है–

"कृषक एक ग्रामीण एवं देहाती है जिसका व्यवसाय ग्रामीण कार्य होता है और कृषक वर्ग वह है जिसमें कृषक या भूमि को जोतने वाले देहाती श्रमिकों का समूह होता है।"

कृषक छोटे उत्पादनकर्ता होते हैं जो केवल अपने उपभोग के लिए उत्पादन करते हैं। उनके लिए कृषि जीविकोपार्जन एवं जीवन शैली है न कि लाभ के लिए व्यवसाय।

कृषक भूस्वामी, किराए पर जोतने वाला या एक श्रमिक हो सकता है। वह परिश्रमी, सरल एवं मितव्ययी होता है। कृषकों को श्रमिकों के समकक्ष या परस्पर पूरक माना जाता है। कृषक यदि भूस्वामी भी है तो भी खेत की जोत का आकार इतना छोटा होता है कि वह इससे अपने परिवार का बमुश्किल गुजारा कर पाता है। जबकि किसान वे व्यक्ति हैं जो बाजार के लिए उत्पादन करते हैं।

कृषक समाज तुलनात्मक रूप से एक समरूप, अविभेदीकृत तथा अस्तरीकृत समाज है। कृषक समाज की आर्थिक स्थिति निम्न होती है।

ऐरिक बोल्फ ने कृषक समाज के दो भेद किए हैं– 'खुला कृषक समाज' तथा 'बंद कृषक समाज'।

खुला कृषक समाज– इस समाज में कृषक भूस्वामी होते हैं, बाजार में बिक्री हेतु उत्पादन करते हैं। कृषि में नए विचारों का स्वागत करते हैं। खेती को उन्नत बनाने हेतु नए विचारों, उपायों एवं ऋण व्यवस्था का उपयोग करते हैं।

बंद कृषक समाज– इस समाज के कृषक अशिक्षित, परिवर्तन के विरोधी एवं परंपरागत जीवन शैली के समर्थक होते हैं। तुलनात्मक रूप से गरीब होते हैं।

टिप्पणी

कृषक समाज की सामाजिक संरचनाओं में विभिन्न प्रकार की विविधताएं दृष्टिगत होती हैं। कृषक वर्ग संरचना का स्वरूप प्रत्येक क्षेत्र में अलग–अलग है। यह स्थिति इस तथ्य से और जटिल हो जाती है कि हाल ही में अधिकांश समाजों में कृषीय संरचनाओं में बुनियादी रूपांतरण हुए हैं।

पश्चिम के अधिकांश विकसित समाजों में, कृषि अर्थव्यवस्था गौण हो गई है और वहां अपेक्षाकृत कम लोग खेती करते हैं। भले ही तीसरी दुनिया के देशों में भी कृषि के महत्व में काफी कमी आई है, फिर भी वे अपनी जनसंख्या का बड़ा हिस्सा इस काम में लगा रहे हैं। इस तरह कृषीय सामाजिक संरचना की सार्थक समझ (सोच) विकसित करने के लिए हमें इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि कृषीय वर्ग संरचना का कोई भी एक ऐसा मॉडल नहीं है जिसे सभी समाजों में लागू किया जा सकता है। इस विषय के संबंध में कई भिन्न–भिन्न परिप्रेक्ष्य भी हैं। कृषि अध्ययन के क्षेत्र में शिक्षाविदों का अत्यधिक प्रभावी समूह है जो वर्ग संदर्भों में कृषीय समाजों का समीक्षात्मक विश्लेषण करता है। उनके अनुसार कृषक समाज समष्टि का एक प्रकार है, जो मूलभूत रूप से आधुनिक औद्योगिक समाजों से भिन्न है। इस विषय पर प्रतिष्ठित नृवैज्ञानिक रचनाएं कृषक समाजों को इसी जनवादी संदर्भों में देखती हैं।

कृषक समाज की अवधारणा का इतिहास

नृविज्ञानियों ने युद्धोत्तर अवधि (1945 के बाद) के दौरान कृषक समाज की प्रतिष्ठित धारणा विकसित की (Development of concepts of farming society)। यह घटना काफी हद तक पश्चिमी अनुभव से व्युत्पन्न हुई। कृषक समाजों को सामाजिक और आर्थिक जीवन के जनजातीय रूप के विखंडन के बाद विकसित होते देखा गया, जब मानव ने भूमि पर खेती करके अपनी जीविका अर्जित करनी प्रारंभ की। उन्होंने छोटे–छोटे व्यक्तियों में भी रहना शुरू कर दिया था। विशिष्ट कृषक समाजों का स्वरूप पूर्व औद्योगिक पाया गया। औद्योगिक क्रांति के प्रारंभ से जैसे–जैसे अर्थव्यवस्थाएं विकसित हुईं वैसे–वैसे पारंपरिक 'कृषक जीवन शैली' में धीरे–धीरे बदलाव प्रारंभ हुए और इन बदलावों ने आधुनिक शहरी जीवन शैलियों को राह प्रदान की।

इस नृवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में किसान वर्ग अनिवार्यतः एक अविभेदित सामाजिक समूह था। कृषकों के सामाजिक और आर्थिक संगठन के संदर्भों में वे सभी एक–दूसरे के समान थे। उन्होंने अपने–अपने भूखंडों पर खेती की और इसमें उनके परिवारों ने श्रमिक का काम किया। उन्होंने मुख्य रूप से अपने–अपने परिवारों के उपभोग के लिए कृषि उत्पादन किया। दूसरे शब्दों में, किसान वर्गों में कोई महत्वपूर्ण वर्ग विभेद नहीं थे, जबकि आंतरिक रूप से कृषक समाज पर शहरी अभिजात्य वर्ग का दबदबा था।

सांस्कृतिक और सामाजिक संदर्भों में कृषकों को मूल रूप से आधुनिक उद्यमियों के अलग रूप में देखा गया। उनकी कार्य के प्रति अभिवृत्ति और भूमि के साथ संबंध आधुनिक औद्योगिक समाजों के लाभ–जिज्ञासु उद्यमियों से काफी भिन्न था। रॉबर्ट रेडफील्ड जो किसान वर्ग पर नृवैज्ञानिक अनुसंधान में अग्रदूत थे उनका मानना है कि किसान वर्ग एक सार्वभौमिक मानव प्रकार था। भावनाओं और मनोभावों के जरिए उनका

अपनी भूमि से लगाव था। उनके लिए कृषि 'जीविका उपार्जन और जीवन शैली थी न कि लाभ के लिए एक व्यवसाय था' (रेडफील्ड, 1965)।

बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में इसी ढंग से लिखते हुए रूस के अर्थशास्त्री ए. वी. श्यानोव ने अपना मत प्रस्तुत किया कि "कृषक अर्थव्यवस्थाओं का नियामक (नियंत्रक) तर्क आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं से भिन्न था। औद्योगिक समाजों में जहां आर्थिक प्रक्रिया लाभ अधिकतमीकरण के सिद्धांत और पूंजी–नियमों द्वारा नियंत्रित (संचालित) होती है, वहीं इसके विपरीत कृषक अर्थव्यवस्था का वर्ग निर्वाह (जीविका) मूलक है। रूसी ग्रामीण क्षेत्र में खेत के आकार और भूमि की उत्पादकता में विविधता जनसांख्यिकीय कारकों से प्रभावित थी न कि लाभ या वर्ग अंतर के कारण थी।

टिप्पणी

थियोडोर शनीन (1987) ने कृषक समाज का 'आदर्श प्रारूप' विकसित किया। उन्होंने कृषकों को छोटे कृषि उत्पादक के रूप में परिभाषित किया, जो साधारण उपकरणों की सहायता से और अपने–अपने परिवारों की मेहनत से प्रत्यक्ष रूप से अपने उपभोग के लिए और राजनीतिक और आर्थिक शक्ति धारकों को नजराना देने के लिए पैदावार कर लेते थे।

कृषक समाज के रूप में सामंतवाद

ऐतिहासिक तौर पर सामंतवाद (Feudalism) की संकल्पना सामान्यतः उस सामाजिक संगठन के लिए प्रयुक्त हुई है जो जनजातीय समूहों के नियमित खेतिहर बन जाने के बाद यूरोप के हिस्सों में विकसित हुई। 18वीं और 19वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति की सफलता से सामंती समाज विखंडित हुए जिसने आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के विकास के लिए राह बनाई। हालांकि, कुछ वर्षों में सामंतवाद शब्द ने भी एक जातिगत अर्थ अर्जित कर लिया। विश्व के अन्य हिस्सों में भी पूर्व–आधुनिक कृषक समाजों का वर्णन करने के लिए इसका प्रयोग प्रायः होता है।

'कृषक समाज' की संकल्पना के साथ तुलना किए जाने पर सामंतवाद शब्द कृषीय वर्ग संरचना की एक बिल्कुल अलग धारणा को प्रस्तुत करता है। सामंती समाजों में खेतिहरों को अधीन वर्ग के रूप में देखा जाता था। जिस भूमि पर वे खेती करते थे वह कानूनी रूप से उनकी अपनी नहीं होती थी। उन्हें उस भूमि पर केवल खेती करने का अधिकार प्राप्त था, जिस भूमि के कानूनी स्वामी सामान्यतः 'अधिपति', 'सामंत' या राजा होते थे। सामंतवाद में कृषि वर्ग संरचना की विशिष्टता थी। 'पराश्रितता' और 'संरक्षण' की संरचनाएं खेतिहरों और 'अधिपतियों' के बीच विद्यमान थीं। खेती करने वाले किसानों को अपने अधिपतियों के प्रति वफादारी और अनुग्रह की भावना प्रदर्शित करनी होती थी। निष्ठा की यह भावना केवल भू–स्वामी को भूमि से होने वाली पैदावार के हिस्से को देखकर व्यक्त नहीं की जाती थी, बल्कि किसान अधिपति के लिए अक्सर काम करने के लिए बाध्य भी होते थे और कई ऐसे काम करते थे जिनके बदले उन्हें कोई भी मजदूरी आदि नहीं दी जाती थी।

समकालीन कृषीय क्षेत्र

19वीं शताब्दी के दौरान पश्चिमी देशों और 20वीं शताब्दी के दौरान शेष विश्व में औद्योगीकरण के प्रसार के कारण अर्थव्यवस्था के समकालीन कृषीय क्षेत्र (Contemporary

टिप्पणी

Agricultural Field) में भी महत्वपूर्ण बदलाव हुए। कृषीय अर्थव्यवस्था में औद्योगीकरण और विकास से आए दो महत्वपूर्ण परिवर्तनों को हम पहचान सकते हैं। पहला परिवर्तन यह हुआ कि कृषि ने अपना पहले वाला महत्व खो दिया और वह अर्थव्यवस्था का केवल सीमांत क्षेत्र बन गई। उदाहरण के लिए आज अधिकांश पश्चिमी देशों में कुल कृषक जनसंख्या का केवल एक छोटा हिस्सा (दो या तीन से दस प्रतिशत तक) है। विश्व के अन्य देशों में भी कृषि के महत्व में गिरावट आई है। उदाहरण के लिए, भारत में भले ही जनसंख्या का एक बड़ा भाग कृषि के क्षेत्र में लगा है, लेकिन कुल राष्ट्रीय आय में इसके योगदान में महत्वपूर्ण गिरावट आई है। भले ही भारत की कृषक जनसंख्या का आधे से ज्यादा भाग कृषि में लगा है लेकिन कृषि क्षेत्र से राष्ट्रीय आय में इसका योगदान 25 प्रतिशत से भी कम है।

कृषीय क्षेत्र में जिस दूसरे महत्वपूर्ण परिवर्तन का अनुभव किया गया, वह है इसका आंतरिक सामाजिक संगठन। पिछली शताब्दी के दौरान विश्व के विभिन्न हिस्सों में कृषि उत्पादन के सामाजिक ढांचे में व्यापक परिवर्तन हुआ है। सामाजिक संगठन के 'सामंतवाद' और कृषक समाजों से पहले के रूप विघटित हुए। यह औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं के प्रभावस्वरूप हुआ। आधुनिक दौर में खेत जोतने और भूसी निकालने जैसी खेती–बाड़ी की गतिविधियों के लिए अनेक किस्म की मशीनें व उपकरण उपलब्ध कराए गए हैं। इन प्रौद्योगिकियों और विकास ने भू–स्वामियों के लिए कम समय में भूमि के बड़े भाग में खेती करना संभव बना दिया है। वैज्ञानिक शोधों ने रासायनिक उर्वरक और ज्यादा पैदावार करने वाले बीज की किस्में भी उपलब्ध कराई हैं। खेती की नई प्रौद्योगिकियों के आने से न केवल भूमि की उत्पादकता में वृद्धि हुई है, बल्कि कृषि उत्पादन के सामाजिक ढांचे में भी महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं।

कृषक समाज की विशेषताएं (Features of Agricultural Society)

कृषक समाज में कुछ निश्चित लक्षण या विशेषताएं होती हैं, जो अपने आप में अनूठी होती हैं। ये निम्नानुसार हैं–

- **सामुदायिक भावना** : कृषक समुदायों में एकता की तगड़ी भावना होती है और कठिन समय में वे एक साथ खड़े दिखते हैं। उनके रीति–रिवाज, आस्थाएं, रस्में और परंपराएं भी समान होती हैं। ये सब उनके जुड़ाव को और मजबूत बनाती हैं।
- **सहयोगी पड़ोस** : कृषक मिल–जुलकर दुख–सुख का सामना करते हैं। वे एक–दूसरे की मदद करते हैं और एक बड़े परिवार की तरह रहते हैं। इस प्रकार, पड़ोस का उनके लिए बहुत महत्व होता है।
- **संयुक्त परिवार** : शहरी विकास और औद्योगीकरण ने संयुक्त परिवारों में विघटन पैदा किया है, लेकिन कृषकों के मामले में परिदृश्य अलग है। संयुक्त परिवार कृषक समाज का अभिन्न अंग बने हुए हैं। इसका एक बड़ा कारण खेती के उनके तौर–तरीके हैं। समूचा परिवार खेतों में काम करता है और इसलिए उनमें श्रम का विभाजन होता है। पुरुष खेतों में हल चलाते हैं, महिलाएं बीजों

टिप्पणी

की बुआई और फसल कटाई में सहायता करती हैं और बच्चे जानवरों की देखभाल करते हैं।

- **लोगों की सादा जीवनशैली** : कृषक आमतौर पर सीधे होते हैं और सादगी की जीवनशैली जीते हैं। शहरी इलाकों में होने वाले तेज परिवर्तनों से वे अप्रभावित होते हैं। वे कड़े परिश्रमी, भरोसेमंद, ईमानदार और लगनशील होते हैं। ये भी इसका एक बड़ा कारण है कि उनकी आमदनी बहुत ज्यादा नहीं होती, और इसलिए अधिक प्रभावशाली जीवनशैली अपनाने का उन्हें अवसर नहीं मिलता। इस प्रकार, उनकी सादगी आंशिक रूप से स्वैच्छिक और आंशिक रूप से गैर स्वैच्छिक होती है। हालांकि, संचार सुविधाओं के विस्तार से कृषक अब शहरी और आधुनिक जीवनशैली से परिचित होने लगे हैं और धीरे–धीरे उनका अनुकरण करने लगे हैं।
- **कृषि अर्थव्यवस्था** : कृषक आमतौर पर सिर्फ कृषि पर निर्भर होते हैं और इसीलिए उनकी अर्थव्यवस्था आवश्यक रूप से कृषि अर्थव्यवस्था होती है। वे अनाज, सब्जियां और फल उगाते हैं। उपज का एक हिस्सा तो परिवार के उपभोग के लिए होता है और अतिरिक्त हिस्सा या तो बाजार में बेच दिया जाता है या उसके बदले दूसरा कुछ सामान ले लिया जाता है।
- **धर्म का प्रभाव** : कृषकों के जीवन में धर्म की बहुत अहम भूमिका होती है। वे लोग पूजा–पाठ बहुत ज्यादा करते हैं। धर्म में उनका विश्वास बहुत गहरा होता है और उनकी यह मान्यता होती है कि उनकी सारी समस्याएं ईश्वर दूर करेगा।
- **रक्त संबंधों का महत्व** : कृषकों के जीवन में रक्त संबंध अहम होते हैं। ये संबंध बहुत टिकाऊ होते हैं और वे लोग हमेशा अपने परिजनों–रिश्तेदारों के साथ समय बिताना चाहते हैं।
- **रूढ़िवादी व्यवहार** : कृषक लोग अपनी सोच और कामों में बहुत रूढ़िवादी होते हैं। वे अपने निकट के समाजीकरण से प्रभावित होते हैं। उनके अंदर अचानक बदलाव या आधुनिकता को अपनाने की कोई इच्छा नहीं होती। कृषक समुदाय सालों–साल तक वैसे ही बने रहते हैं।

1.2.1 कृषक एवं ग्रामीण समाज में जाति

भारतीय सामाजिक संरचनाओं में जाति एक सर्वाधिक प्राचीन संस्था है। आदिकाल से ही भारत में जाति प्रथा (Caste System) का प्रचलन रहा है। पश्चिमी देशों में सामाजिक स्तरीकरण का आधार वर्ग रहा है तो भारत में जाति एवं वर्ण। समाजविदों के मत में जाति हिन्दू सामाजिक संरचना का एक मुख्य आधार रही है, जिससे हिन्दुओं का सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन प्रभावित होता रहा है। हिन्दुओं के सामाजिक जीवन के किसी भी क्षेत्र का अध्ययन बिना जाति के विश्लेषण के अपूर्ण ही रहता है। श्रीमती इरावती कर्वे का भी मत है कि यदि हम भारतीय संस्कृति के तत्वों को समझना चाहते हैं तो जाति–व्यवस्था का अध्ययन अत्यन्त अनिवार्य है। यही कारण है कि इतिहासकारों, भारत–शास्त्रियों, जनगणना–आयुक्तों, समाजशास्त्रियों, मानवशास्त्रियों एवं अन्य लोगों ने इस संदर्भ में समय–समय पर अपने–अपने दृष्टिकोण प्रकट किये हैं।

टिप्पणी

भारत में जाति की व्यापकता एवं महत्व को बताते हुए डॉ. मजूमदार लिखते हैं, कि ''जाति व्यवस्था भारत में अनुपम है। सामान्यतः भारत जातियों एवं सम्प्रदायों की परम्परात्मक स्थली माना जाता है। ऐसा कहा जाता है कि यहां की हवा में भी जाति घुली हुई है और यहां तक कि मुसलमान तथा ईसाई भी इससे अछूते नहीं बचे हैं।''

जाति : अर्थ, उत्पत्ति एवं विशेषताएं

भारतीय समाज में सामाजिक स्तरीकरण की एक अतिप्राचीन व्यवस्था पाई गई है, जिसे जाति प्रथा कहते हैं। जाति की सदस्यता व्यक्ति को जन्म से ही मिल जाती है तथा वह संपूर्ण जीवन उसी का सदस्य बना रहता है, अर्थात जाति की सदस्यता को किसी भी तरीके से बदला नहीं जा सकता। इसीलिए इसे सामाजिक स्तरीकरण की बन्द व्यवस्था भी कहा जाता है। जातियों की सामाजिक स्थिति में काफी अन्तर अर्थात संस्तरण पाया जाता है।

समाज में व्यक्ति की स्थिति उसके जन्म लेने के स्थान व समूह से निर्धारित होती है। जाति भी व्यक्तियों का एक समूह है। यह कुछ विशिष्ट सांस्कृतिक प्रतिमानों को मानने वाला वह समूह है, जिसके सदस्यों में रक्त शुद्धि होने का विश्वास किया जाता है, जिसकी सदस्यता व्यक्ति नहीं अर्जित करता है। इस प्रकार का समूह सामान्य संस्कृति का अनुसरण करता है। इस प्रकार के सदस्य अन्य किसी समूह के सदस्य नहीं होते हैं और न कोई बाहर के समूह के सदस्य इस समूह के सदस्य हो सकते हैं। इस प्रकार जाति एक बन्द वर्ग है।

'जाति' शब्द अंग्रेजी के 'कास्ट' (Caste) शब्द का हिन्दी अनुवाद है। अंग्रेजी के Caste शब्द की व्युत्पत्ति पुर्तगाली भाषा के 'Casta' शब्द से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'नस्ल', 'प्रजाति' या 'भेद'। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1565 ई. में गार्सिया दी ओरटा 'Garcia de Orta' ने किया था। उसके बाद फ्रांस के अब्बे डुबॉय के इसका प्रयोग प्रजाति के संदर्भ में किया। समाजशास्त्र में इस शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में किया जाता है। इसके अर्थ को समझने के लिए विस्तृत रूप से इसकी परिभाषाओं को समझना आवश्यक है। प्रमुख विद्वानों ने जाति की परिभाषाएं भिन्न–भिन्न आधारों पर दी हैं। प्रमुख परिभाषाएं निम्न प्रकार हैं–

1. चार्ल्स कूले के अनुसार, "जब एक वर्ग आनुवांशिक होता है, तो हम उसे जाति कहते हैं।"
2. मजूमदार के शब्दों में– "जाति एक बन्द वर्ग है।"
3. ब्लष्ट के अनुसार– "एक जाति एक अन्तर्विवाह वाला समूह है या अन्तर्विवाह करने वाले समूहों का संकलन है जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसकी सदस्यता वंशानुगत होती है, जो अपने सदस्यों पर सामाजिक सहवास से सम्बन्धित कुछ प्रतिबन्ध लगाता है, एक सामान्य परम्परागत व्यवसाय करता है या एक सामान्य उत्पत्ति का दावा करता है और आमतौर से एक सजातीय समुदाय को बनाने वाला समझा जाता है।"
4. मार्टिण्डेल एवं मेनेक्सी के अनुसार– ''जाति व्यक्तियों का ऐसा समूह है। जिसके दायित्व और अधिकार जन्म से निश्चित होते हैं तथा धर्म उनका समर्थन करता है।''

टिप्पणी

5. हॉबेल के अनुसार–''अन्तर्विवाह तथा आनुवांशिकता द्वारा थोपे हुए पदों को जमा देना ही जाति व्यवस्था है।
6. रिजले के अनुसार–''जाति एक ऐसे परिवारों तथा परिवार समूह का संकलन है, जिसका उसके विशिष्ट पेशों के अनुसार एक सामान्य नाम हो, जो एक ही पौराणिक पितामह–मनुष्य या देवता से अपनी उत्पत्ति मानते हों, तथा जो एक ही व्यवसाय करते हों।''
7. मैकाइवर एवं पेज के अनुसार–''जब सामाजिक पद पूर्णतः निश्चित हो, जो जन्म से ही मनुष्य के भाग्य को निश्चित कर दे, जीवनपर्यन्त उसके परिवर्तन की कोई आशा न हो, तब वे जन वर्ग, जाति का रूप धारण कर लेते हैं।''
8. केतकर के अनुसार–''जाति की सदस्यता उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित होती है जो उसी जाति में जन्म लेते हैं तथा एक कठोर सामाजिक नियम, अपनी जाति से बाहर विवाह करने से रोकता है।
9. एन. के. दत्त के अनुसार–''एक जाति के सदस्य एक जाति के बाहर विवाह नहीं कर सकते हैं।...अनेक जातियों में कुछ निश्चित व्यवसाय हैं।.. मनुष्य की जाति का निर्णय जन्म से होता है।''
10. जे. एच. हट्टन के अनुसार–''जाति एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत एक समाज अनेक आत्म–केन्द्रित एवं एक–दूसरे से पूर्णतः इकाइयों में विभाजित रहता है। इन इकाइयों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध ऊंच–नीच के आधार पर सांस्कृतिक रूप से निर्धारित होते हैं।''
11. इरावती कर्वे ने जातिगत अन्तर्विवाह (Caste Endogancy) को इतना अधिक महत्व दिया है कि वे जाति को मूलतः एक अन्तर्विवाही समूह मानती हैं। अन्तर्विवाह के कारण जाति की सामाजिक सीमाएं निर्धारित हो जाती हैं। वे कहती हैं, ''जाति वस्तुतः एक विस्तृत नातेदारी समूह (Extended Kin Group) है।''

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि जाति एक ऐसा सामाजिक समूह है, जिसकी सदस्यता जन्म पर आधारित है। जो अपने सदस्यों पर खान–पान, विवाह, पेशा और सामाजिक सहवास सम्बन्धी अनेक प्रतिबन्ध लागू करती है। भारत में जाति का स्वरूप इतनी विभिन्नता लिए हुए है कि इसकी कोई भी सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है। यही कारण है कि अनेक विद्वानों जैसे हट्टन, दत्ता, घुरिये आदि ने जाति की परिभाषा देने के बजाय, विशेषताएं देना महत्वपूर्ण माना है।

जाति व्यवस्था की उत्पत्ति

जाति जैसी जटिल एवं विचित्र व्यवस्था की उत्पत्ति कब और कैसे हुई (Origin of Caste System), इस बात को लेकर विद्वानों में विवाद पाया जाता है। जाति सदैव परिवर्तनशील संस्था रही है, अतः इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में निश्चिततापूर्वक कुछ भी कहा नहीं जा सकता है। मैकाइवर कहते हैं, ''उत्पत्तियां सदैव अगम्य होती हैं।'' इस अर्थ में किसी भी संस्था की उत्पत्ति ढूंढ़ना एक कठिन कार्य है।

मजूमदार कहते हैं कि ''जाति संरचना के सम्बन्ध में एक शताब्दी के परिश्रम और सावधानीपूर्ण किये गये अनुसंधान यह स्पष्ट नहीं कर पाये हैं कि वस्तुतः मूल रूप से

टिप्पणी

किन्होंने इस विशिष्ट व्यवस्था के निर्माण और विकास में योग दिया है। कितने ही भारतीय एवं विदेशी विद्वानों ने जाति–प्रथा के उद्भव के प्रश्न को सुलझाने के लिए अपने–अपने सिद्धांतों को जन्म दिया है। किसी ने जाति को कर्मकाण्डों का प्रतिफल माना तो किसी ने इसे ब्राह्मणों का स्वार्थ जाल, किसी ने आर्यों को इसके लिए उत्तरदायी ठहराया तो किसी ने आर्यों एवं अनार्यों के सांस्कृतिक संपर्क को। कुछ ने भारत में होने वाले प्रजातीय मिश्रण में जाति का उद्गम पाया तो कुछ ने पेशा एवं जाति की घनिष्ठता में। कुछ विद्वानों ने धार्मिक विश्वासों, भौगोलिक पृथकता एवं सांस्कृतिक भिन्नता को, तो कुछ ने जनजातीय विश्वासों आदि को इसके लिए उत्तरदायी ठहराया। वेदों में श्रद्धा रखने वालों ने ब्रह्मा को ही जाति के उद्गम के लिए उत्तरदायी माना। इन विद्वानों ने तथ्यों एवं तर्कों के आधार पर अपने मत की पुष्टि करने का प्रयास किया है।

भारत एक कृषि व ग्रामप्रधान देश है। यहां की 80% जनसंख्या गांवों में निवास करती है। ग्रामीण अंचल के जन–जीवन से जुड़ी समग्र विशेषताओं एवं समस्याओं को जानना, समझना तथा कुरीतियों व विषमताओं का निराकरण करना अत्यंत आवश्यक है। यह सब तभी संभव हो सकता है जब हम ग्रामीण परिवेश का गहन अध्ययन करें। भारतीय गांवों में प्रचलित जात–पात, ऊंच–नीच, शिक्षा–अशिक्षा, सामाजिक रीति–रिवाज, हिंसा–अहिंसा आदि से भलीभांति परिचित हों। भारत में प्राचीन काल से प्रचलित ग्रामीण सामाजिक संरचना का प्रभाव वर्तमान अति आधुनिक युग में किस प्रकार गतिशील है यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है।

ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में 'जाति' भारतीय गांवों की एक प्रमुख सामाजिक संस्था है। यह ऐसे लोगों का गठबंधन है, जो रिश्ते–नातेदारी और विवाह जैसी रस्मों से एक–दूसरे से बंध जाते हैं। किसी निश्चित व्यवसाय में भी इनका आधिपत्य होता है। जाति विभिन्न व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति व उनके कार्यों को निर्धारित करती है। जाति–व्यवस्था ही सामाजिक असमानताओं एवं कुप्रथाओं को भी जन्म देती है जिससे वर्ग–संघर्ष होते रहते हैं। जाति का एक संपन्न व शक्तिशाली नेता होता है। उसके नेतृत्व में ही उस जाति के सभी व्यक्ति कार्य करते हैं। समयानुसार जाति नेतृत्व में काफी परिवर्तन आते रहे हैं।

असमानता एवं जाति

भारतीय समाज के पिछले दो हजार वर्षों के इतिहास में जाति–व्यवस्था यहां सामाजिक सम्बन्धों एवं सामाजिक स्तरीकरण के निर्धारण का सर्वप्रमुख आधार रही है। यह व्यवस्था सामाजिक विभाजन का एक विशेष रूप है, जिसमें सम्पूर्ण समाज को एक–दूसरे से उच्च और निम्न अनेक भागों में विभाजित कर दिया है (Inequality due to Caste System)। एक ओर, हिन्दू स्मृतियों ने जाति–व्यवस्था को इसकी उपयोगिता के आधार पर एक लाभप्रद संस्था के रूप में स्पष्ट किया, वहीं दूसरी ओर आज यह व्यवस्था एक ऐसे अभिशाप के रूप में विकसित हो गयी, जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण हिन्दू समाज एक–दूसरे से पृथक बहुत–सी छोटी–छोटी इकाइयों में छिन्न–भिन्न हो गया। विभिन्न विद्वानों ने इस व्यवस्था की प्रकृति, उत्पत्ति तथा भारतीय समाज के लिए इसकी भूमिका के बारे में एक–दूसरे से भिन्न इतने अधिक विचार प्रस्तुत किये हैं कि अक्सर इस संस्था को समझना भी कठिन हो जाता है। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि जाति–व्यवस्था सामाजिक संरचना का एक विशेष रूप है, जो पवित्रता और

अपवित्रता की धारणा के आधार पर विभिन्न जाति समूहों के पारस्परिक सम्बन्धों का निर्धारण करता है।

टिप्पणी

जाति–व्यवस्था का अध्ययन एक संरचनात्मक यथार्थता के रूप में किया जाता है। भारत में सामाजिक स्तरीकरण का आधार मुख्य रूप से जाति ही रहा है तथा जाति घनिष्ठ रूप से वर्ग एवं शक्ति से सम्बन्धित रही है। उच्च जातियां केवल संस्कारात्मक दृष्टि से ही उच्च नहीं नहीं थीं, अपितु आर्थिक दृष्टि से भी ऊंची थीं, तथा शक्ति की दृष्टि से भी इनका सर्वोच्च स्थान था। यद्यपि जाति के इस पहलू में परिवर्तन हो रहा है, तथापि भारत में पायी जाने वाली असमताओं में जाति का प्रमुख स्थान है। जाति–व्यवस्था भारतीय सामाजिक संरचना की एक अनुपम एवं बहुचर्चित विशेषता है जो कि हिन्दू धर्म द्वारा पूर्णतः अनुमोदित है। यह व्यवस्था मेगस्थनीज के समय से लेकर आज तक किसी भी विदेशी का ध्यान आकर्षित करने से नहीं चूकी है। आर्यों के पूर्वकाल में भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था का प्रचलन था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण ही आर्यों के आने के पश्चात् अनेक जातियों में परिवर्तित हो गये। आज भारतवर्ष में लगभग तीन हजार जातियां व उपजातियां हैं जाति–व्यवस्था यद्यपि भारतीय समाज की एक अनुपम विशेषता है तथापि यह नेपाल तथा अन्य देशों, जहां पर हिन्दुओं की काफी संख्या है, में भी पायी जाती है। जाति–व्यवस्था एक ओर, हिन्दू सामाजिक संरचना के प्रकार को प्रकट करती है तो दूसरी ओर, हिन्दुओं के आचरण को भी निश्चित करती है।

जाति–व्यवस्था एक ऐसी धुरी है जिसके चारों ओर सदियों से भारतीय समाज गतिमान रहा है। भारतीय सामाजिक संरचना के केन्द्र में भी यही विराजमान है। जाति और धर्म के सन्दर्भ बिना भारतीय समाज को समझा नहीं जा सकता।

इस विषय में रेमण्ड मूरे मानते हैं कि 'जातीय असमता या स्तरीकरण समाज का वह क्रमबद्ध विभाजन है, जिसमें सम्पूर्ण समाज को कुछ उच्च और निम्न सामाजिक इकाइयों में विभाजित कर दिया जाता है'।

जिस्बर्ट के अनुसार 'सामाजिक स्तरीकरण या जातीय असमता का अर्थ समाज को कुछ ऐसे स्थायी समूहों या श्रेणियों में विभाजित करने वाली व्यवस्था से है, जिसके अन्तर्गत सभी समूह और श्रेणियां श्रेष्ठता और अधीनता के सम्बन्धों द्वारा एक–दूसरे से बंधी होती हैं।

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट है कि जाति–व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें सम्पूर्ण समाज उच्च और निम्न परिस्थिति वाली अनेक श्रेणियों में विभाजित हो जाता है। इसके बाद भी विभिन्न परिस्थितियों वाली सभी श्रेणियां एक–दूसरे से सम्बन्धित रहती हैं तथा अपने–अपने कार्यों के द्वारा सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने में योगदान देती हैं।

जाति की विशेषताएं

उपरोक्त विवेचन के आधार पर जाति की निम्नलिखित विशेषताएं (Characteristics of Caste) हो सकती हैं–

1. **समाज का खण्डनात्मक विभाजन**– जाति असमता एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके द्वारा भारतीय समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय–वैश्य तथा शूद्र खण्डों में विभाजित हो गया है।

टिप्पणी

2. **संरचना**– एक सामान्य नियम के अनुसार ब्राह्मणों का स्थान सबसे ऊंचा होता है। जाति संरचना में क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जातियों का स्थान क्रमशः दूसरा, तीसरा तथा चौथा होता है।

3. **आनुवांशिक सदस्यता**– किसी व्यक्ति को विशेष जाति की सदस्यता जन्म अथवा आनुवांशिक रूप से प्राप्त होती है। व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है, वह आजीवन उसी जाति का सदस्य बना रहता है।

4. **अन्तर्विवाह**– जाति–व्यवस्था का सबसे कठोर नियम यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ही जाति के अंदर विवाह करना आवश्यक है।

5. **पवित्रता एवं अपवित्रता की धारणा**– जातीय असमानता का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण है कि जिन जातियों को जन्म अथवा व्यवसाय के आधार पर अपवित्र माना गया, उन पर उच्च अथवा पवित्र जातियों द्वारा समाजिक सम्पर्क रखने पर कठोर प्रतिबंध लगाये गये हैं। सम्पर्क के यह प्रतिबन्ध उन जातियों पर अधिक कठोरता से लागू किये गये, जिन्हें अधिक अपवित्र समझकर एक लम्बे समय तक अछूत जातियां माना जाता रहा है।

6. **खान–पान के प्रतिबंध**– इस प्रतिबंध का सम्बन्ध भी पवित्र और पवित्रता की धारणा से है। जाति–व्यवस्था में सामान्य नियम यह रखा गया कि प्रत्येक व्यक्ति केवल अपनी जाति के व्यक्तियों द्वारा बनाया गया भोजन ही ग्रहण करेगा। इसके बाद भी खान–पान के प्रतिबंध को कच्चे और पक्के भोजन के दो रूपों में विभाजित करके स्पष्ट किया गया। विशेष परिस्थिति में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातियों को एक–दूसरे के द्वारा बनाये गये भोजन को ग्रहण करने की अनुमति दी गई, लेकिन इनमें से किसी भी जाति को अपने से निम्न जाति द्वारा बनाये गये कच्चे भोजन को ग्रहण करने पर प्रतिबंध लगाया गया।

7. **व्यावसायिक विभाजन**– जातीय–व्यवस्था में प्रत्येक जाति के द्वारा किये जाने वाले व्यवसाय का रूप पूर्व–निर्धारित है। साधारणतया, ब्राह्मण–जातियों के लिए धार्मिक क्रियाओं तथा शिक्षा देने का कार्य, क्षत्रिय जातियों के लिए रक्षा और प्रशासन से सम्बन्धित व्यवस्था, वैश्य जातियों के लिए व्यापार और पशुपालन का व्यवसाय निर्धारित किया गया, जबकि शूद्र जातियों के लिये वे सब व्यवसाय निर्धारित किये गये जिन्हें गंदा और अपवित्र समझा जाता था।

8. **धार्मिक स्वीकृति**– जाति–व्यवस्था सामाजिक संरचना के एक विशेष रूप में ही विकसित नहीं हुई, बल्कि धर्म ग्रन्थों के द्वारा व्यवहार के ऐसे नियम भी बनाये गये जिनके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने से उच्च जाति के व्यक्ति का आदर करे और मानसिक रूप से स्वयं को उसके अधीन समझे।

उपर्युक्त विशेषताएं जाति–व्यवस्था की संरचना के साथ–साथ जाति–व्यवस्था की असमानताओं को भी उजागर करती हैं, कि किस प्रकार विभिन्न जन–जातियों में उच्च, निम्न एवं पवित्र, अपवित्र का तत्व विद्यमान था।

कृषि संरचना में जाति

टिप्पणी

भारत के स्वतंत्र होने के बाद नेहरू और उनके नीति सलाहकारों ने नियोजित विकास के कार्यक्रमों की तरफ अपना ध्यान केंद्रित किया। कृषि सुधारों के साथ ही साथ औद्योगीकरण भी इसमें शामिल था। नीति निर्माताओं ने उस समय भारत की निराशाजनक कृषि स्थिति पर अपने जवाबी मुद्दे बताये। इसमें शामिल किये गये मुख्य मुद्दे थे– पैदावार का कम होना, आयातित अनाज पर निर्भरता और ग्रामीण जनसंख्या के एक बड़े भाग में गहन गरीबी का होना। फलतः कृषि की उन्नति के लिए कृषि संरचना में महत्वपूर्ण सुधार किए जाने और विशेष रूप से भूस्वामित्व एवं भूमि के बंटवारे की व्यवस्था में भी सुधार करने की तरफ सोचा गया।

सन् 1950 से 1970 के बीच में भूमि सुधार कानूनों की एक शृंखला को शुरू किया गया। इसे राष्ट्रीय स्तर के साथ राज्य के स्तर पर भी चलाया गया। इसका इरादा इन परिवर्तनों को लाने का था। विधेयक में पहला सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन था जमींदारी व्यवस्था को समाप्त करना, इससे उन बिचौलियों की फौज समाप्त हो गई जो कि कृषक और राज्य के बीच में थी। भू–सुधार के लिए पास किए गए कानूनों में यह संभवतः सबसे अधिक प्रभावशाली कानून था। यह महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भूमि पर जमींदारों के उच्च अधिकारों को दूर करने में और उनकी आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियों को कम करने में सफल रहा। निश्चित रूप से, यह बिना संघर्ष के नहीं हो सकता था, लेकिन इसने अंततोगत्वा वास्तविक भूस्वामियों एवं स्थानीय कृषकों की स्थिति को मजबूत कर दिया। हालांकि, जमींदारी उन्मूलन ने भूसामंतवाद या पट्टेदारी या साझा कृषि व्यवस्था को पूरी तरह साफ नहीं किया, यह कई क्षेत्रों में चलता रहा। कृषि संरचना की बहुआयामी परतों में फैला हुआ भूमि सामंतवाद केवल सबसे ऊपर वाली परतों में ही समाप्त हुआ।

भू–सुधार के कानूनों के अंतर्गत अन्य मुख्य कानून था पट्टेदारी का उन्मूलन और नियंत्रण या नियमन अधिनियम। उन्होंने या तो पट्टेदारी को पूरी तरह से हटाने का प्रयत्न किया या किराए के नियम बनाए, ताकि पट्टेदार को कुछ सुरक्षा मिल सके। अधिकतर राज्यों में यह कानून कभी भी प्रभावशाली तरीके से लागू नहीं किया गया। पश्चिम बंगाल और केरल में कृषि संरचना में आमूलचूल परिर्वतन आए, जिसमें पट्टेदार को भूमि के अधिकार दिए गए। भूमि सुधार की तीसरी मुख्य श्रेणी में भूमि की हदबंदी अधिनियम थे। इन कानूनों के तहत एक विशिष्ट परिवार के लिए जमीन रखने की उच्चतम सीमा तय कर दी गई। प्रत्येक क्षेत्र में हदबंदी भूमि के प्रकार, उपज और अन्य इसी प्रकार के कारकों पर निर्भर थी। बहुत अधिक उपजाऊ जमीन की हदबंदी कम थी जबकि अनउपजाऊ, बिना पानी वाली जमीन की हदबंदी अधिक सीमा तक थी। यह संभवतः राज्यों का कार्य था, कि वे निश्चित करें कि अतिरिक्त भूमि, हदबंदी सीमा से ज्यादा को वह अधिगृहित कर लें, और इसे भूमिहीन परिवारों को तय की गई श्रेणी के अनुसार पुनः वितरित कर दें, जैसे अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति में। परंतु अधिकांश राज्यों में ये अधिनियम दंतविहीन साबित हुए (Caste in Agricultural Structure)। इसमें बहुत से ऐसे बचाव के रास्ते और युक्तियां थीं, जिनसे परिवारों और घरानों ने अपनी भूमि को राज्यों को देने से बचा लिया था। हालांकि कुछ बड़ी जागीरों

टिप्पणी

या जायदादों को तोड़ दिया गया, लेकिन अधिकतर मामलों में भूस्वामियों ने अपनी भूमि रिश्तेदारों या अन्य लोगों के बीच विभाजित कर दी। इसमें उनके नौकर के नाम भी तथाकथित बेनामी बदल दी गईं– जिसमें उन्हें जमीन पर नियंत्रण करने का अधिकार दिया गया। वास्तव में उनके नाम नहीं किया गया।

कृषि संरचना पूरे देश में बहुत ही भिन्न स्तर पर मिलती है। विभिन्न राज्यों में भूमि सुधार की प्रगति भी असमान रूप से हुई। मोटे तौर पर कहें तो यह कहा जा सकता है कि हालांकि इसमें औपनिवेशिक काल से अब तक वास्तव में परिवर्तन आया, लेकिन अभी भी बहुत असमानता बची हुई है। इस संरचना ने कृषि संबंधी उपज पर ध्यान खींचा। भूमि सुधार न केवल कृषि उपज को अधिक बढ़ाने के लिए, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों से गरीबी हटाने और सामाजिक न्याय दिलाने के लिए भी आवश्यक है।

हरित क्रांति और इसके सामाजिक परिणाम

हमने देखा कि अधिकतर क्षेत्रों में भू सुधार का ग्रामीण समाज तथा कृषि संरचना पर एक सीमित प्रभाव ही है। इसके विपरीत 1960–70 के दशकों की हरित क्रांति (Green Revolution and its Social effects) द्वारा उन क्षेत्रों में जहां यह प्रभावशाली रही, महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। जैसा कि हम जानते हैं कि हरित क्रांति कृषि आधुनिकीकरण का एक सरकारी कार्यक्रम था। इसके लिए आर्थिक सहायता अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा दी गई थी, तथा यह अधिक उत्पादकता वाले अथवा संकर बीजों के साथ कीटनाशकों, खादों तथा किसानों के लिए अन्य निवेश देने पर केंद्रित थी। हरित क्रांति कार्यक्रम केवल उन्हीं क्षेत्रों में लागू किया गया था, जहां सिंचाई का समुचित प्रबंध था, क्योंकि नए बीजों तथा कृषि पद्धति हेतु समुचित जल की आवश्यकता थी। यह कार्यक्रम मुख्य रूप से गेहूं तथा चावल उत्पाद करने वाले क्षेत्रों पर ही लक्षित था। परिणामस्वरूप हरित क्रांति पैकेज की प्रथम लहर केवल कुछ क्षेत्रों में जैसे पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, तटीय आंध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु के कुछ हिस्सों में ही चली। इन क्षेत्रों में त्वरित सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों ने समाजशास्त्रियों द्वारा हरित क्रांति के बारे में शृंखलाबद्ध अध्ययनों तथा जोरदार वाद–विवादों की बाढ़ ला दी।

नयी तकनीक द्वारा कृषि उत्पादकता में अत्यधिक वृद्धि हुई। दशकों बाद पहली बार भारत खाद्यान्न उत्पादन में स्वावलंबी बनने में सक्षम हुआ। हरित क्रांति सरकार तथा इसमें योगदान देने वाले वैज्ञानिकों की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी गई है। हालांकि इसके कुछ नकारात्मक सामाजिक तथा पर्यावरण के विपरीत प्रभावों की ओर हरित क्रांति के क्षेत्रों का अध्ययन करने वाले समाजशास्त्रियों ने संकेत किया है। हरित क्रांति के अधिकतर क्षेत्रों में मूल रूप से मध्यम तथा बड़े किसान ही नयी तकनीक का लाभ उठा सके। इसका कारण यह था कि इसमें किया जाने वाला निवेश महंगा था, जिनका व्यय छोटे तथा सीमांत किसान उठाने में उतने सक्षम नहीं थे, जितने कि बड़े किसान। जब कृषक मूल रूप से स्वयं के लिए उत्पादन करते हैं, तथा बाजार के लिए उत्पादन करने में असमर्थ होते हैं, तब उन्हें जीवन–निर्वाही कृषक कहा जाता है तथा आमतौर पर उन्हें कृषक की संज्ञा दी जाती है। काश्तकार अथवा किसान वे हैं, जो परिवार की आवश्यकता से अधिक अतिरिक्त उत्पादन करने में सक्षम होते हैं, तथा इस प्रकार वे बाजार से जुड़े होते हैं।

टिप्पणी

हरित क्रांति और इसके बाद होने वाले कृषि व्यापारीकरण का मुख्य लाभ उन किसानों को मिला जो बाजार के लिए अतिरिक्त उत्पादन करने में सक्षम थे। इस प्रकार हरित क्रांति के प्रथम चरण, 1960 तथा 1970 के दशकों में, नयी तकनीक के लागू होने से ग्रामीण समाज में असमानताएं बढ़ने का आभास हुआ। हरित क्रांति की फसलें अधिक लाभ वाली थीं क्योंकि इनसे अधिक उत्पादन होता था। अच्छी आर्थिक स्थिति वाले किसान जिनके पास जमीन, पूंजी, तकनीक तथा जानकारी थी, तथा जो नए बीजों और खादों में पैसा लगा सकते थे, वे अपना उत्पादन बढ़ा सके और अधिक पैसा कमा सके। हालांकि कई मामलों में इससे पट्टेदार कृषक बेदखल भी हुए। ऐसा इसलिए कि भूस्वामियों ने अपने पट्टेदारों से जमीन वापस ले ली, क्योंकि अब सीधे कृषि कार्य करना अधिक लाभदायक था। इससे धनी किसान और अधिक संपन्न हो गए तथा भूमिहीन तथा सीमांत भू–धारकों की दशा और बिगड़ गई। इसके अतिरिक्त पंजाब तथा मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में कृषि उपकरणों जैसे टिलर, ट्रैक्टर, थ्रैशर व हारवेस्टर के प्रयोग ने सेवा प्रदान करने वाली जातियों के उन समूहों को भी बेदखल कर दिया, जो इन कृषि संबंधी क्रियाकलापों को करते थे। इस बेदखली की प्रक्रिया ने ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर प्रवसन की गति को और भी बढ़ा दिया। हरित क्रांति की अंतिम परिणति 'विभेदीकरण' की एक ऐसी प्रक्रिया थी, जिसमें धनी अधिक धनी हो गए तथा कई निर्धन पूर्ववत रहे या अधिक गरीब हो गए।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि कई क्षेत्रों में मजदूरों की मांग बढ़ने से कृषि मजदूरों का रोजगार तथा उनकी दिहाड़ी में भी बढ़ोतरी हुई। इसके अतिरिक्त कीमतों की बढ़ोतरी तथा कृषि मजदूरों के भुगतान के तरीकों में बदलाव, खाद्यान्न के स्थान पर नकद भुगतान से अधिकतर ग्रामीण मजदूरों की आर्थिक दशा खराब हो गई। हरित क्रांति के प्रथम चरण के अनुकरण में इसका दूसरा चरण वर्तमान में भारत के सूखे तथा आंशिक सिंचित क्षेत्रों में लागू किया जा रहा है। इन क्षेत्रों में सूखी कृषि से सिंचित कृषि की ओर एक महत्वपूर्ण बदलाव आया है तथा साथ ही फसल के प्रतिमानों एवं प्रकारों में भी परिवर्तन आया है। बढ़ते व्यापारीकरण तथा बाजार पर निर्भरता ने इन क्षेत्रों में; उदाहरण के लिए जहां कपास की खेती को प्रोत्साहित किया गया है, जीवन व्यापार की असुरक्षा को घटाने की बजाय बढ़ाया ही है, क्योंकि किसान जो एक समय अपने प्रयोग के लिए खाद्यान्न का उत्पादन करते थे, अब अपनी आमदनी के लिए बाजार पर निर्भर हो गए। बाजारोन्मुखी कृषि में विशेषतः जब एक ही फसल उगाई जाती है, तो कीमतों में कमी अथवा खराब फसल से किसानों की आर्थिक बरबादी हो सकती है। हरित क्रांति के अधिकांश क्षेत्रों में किसानों ने बहुफसली कृषि व्यवस्था, जिसमें वे जोखिम को बांट सकते थे, के स्थान पर एकल फसली कृषि व्यवस्था को अपनाया, जिसका अर्थ यह था कि फसल नष्ट होने पर उनके पास निर्भरता हेतु कुछ भी नहीं है।

हरित क्रांति की रणनीति की एक नकारात्मक परिणति क्षेत्रीय असमानताओं में वृद्धि थी। वे क्षेत्र जहां यह तकनीकी परिवर्तन हुआ, अधिक विकसित हो गए, जबकि अन्य क्षेत्र पूर्ववत रहे। उदाहरण के लिए हरित क्रांति को देश के पूर्वी, पश्चिमी तथा दक्षिणी भागों तथा पंजाब–हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अधिक लागू किया

टिप्पणी

गया। इसके परिणामस्वरूप हम पाते हैं कि बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों तथा तेलंगाना जैसे सूखे क्षेत्रों में कृषि तुलनात्मक रूप से अविकसित रही। यही वे क्षेत्र हैं जहां सामंतवादी कृषि संरचना आज भी सुस्थापित है, जिसमें भूधारक जातियों तथा भूस्वामियों ने निम्न जातियों, भूमिहीन मजदूरों तथा छोटे किसानों पर अपनी सत्ता बरकरार रखी हुई है। जाति तथा वर्ग की तीक्ष्ण असमानताओं तथा शोषणकारी मजदूर संबंधों ने इन क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की हिंसा, जिसमें अंतर्जातीय हिंसा सम्मिलित है, को हाल के वर्षों में बढ़ावा दिया है।

अक्सर यह सोचा जाता है कि कृषि की 'वैज्ञानिक' पद्धति की जानकारी देने से भारतीय कृषकों की दशा में सुधार होगा। हमें यह याद रखना चाहिए कि भारतीय कृषक सदियों से, हरित क्रांति के प्रारंभ से कहीं पहले से, कृषि कार्य करते आ रहे हैं। उन्हें कृषि भूमि तथा उसमें बोई जाने वाली फसलों के बारे में बहुत सघन तथा विस्तृत पारंपरिक जानकारी है। ऐसी बहुत सी जानकारी, जैसे बीजों की बहुत सी पारंपरिक किस्में जिन्हें किसानों ने सदियों में उन्नत किया था, लुप्त होती जा रही हैं, क्योंकि संकर तथा जैविक सुधार वाले बीजों की किस्मों को अधिक उत्पादकता वाले तथा 'वैज्ञानिक' बीजों के रूप में प्रोत्साहित किया जा रहा है। पर्यावरण तथा समाज पर कृषि के आधुनिक तरीकों के नकारात्मक प्रभाव को देखते हुए, बहुत से वैज्ञानिक तथा कृषक आंदोलन अब कृषि के पारंपरिक तरीकों तथा अधिक सावयवी बीजों के प्रयोग की ओर लौटने की सलाह दे रहे हैं। बहुत से ग्रामीण लोग स्वयं विश्वास करते हैं कि संकर किस्में, पारस्परिक किस्मों से कम स्वस्थ होती हैं।

स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण समाज में परिवर्तन

स्वातंत्र्योत्तर काल में ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक संबंधों की प्रकृति में अनेक प्रभावशाली रूपांतरण हुए, विशेषतः उन क्षेत्रों में जहां हरित क्रांति लागू हुई (Changes in rural society after Indepandence and Green Revolution)। ये बदलाव थे– गहन कृषि के कारण कृषि मजदूरों की बढ़ोतरी, भुगतान में अनाज के स्थान पर नकद भुगतान, पारंपरिक बंधनों में शिथिलता अथवा भूस्वामी एवं किसान या कृषि मजदूरों; जिन्हें बंधुआ मजदूर भी कहते हैं, के मध्य पुश्तैनी संबंधों में कमी होना, 'मुक्त' दिहाड़ी मजदूरों के वर्ग का उदय। भूस्वामी, जो अधिकतर प्रबल जाति के होते थे, तथा कृषि मजदूर के, जो अधिकतर निम्न जातियों के थे, के मध्य संबंधों की प्रकृति में परिवर्तन का वर्णन समाजशास्त्री जान ब्रेमन ने 'संरक्षण से शोषण' की ओर बदलाव में किया था। ऐसे परिवर्तन उन तमाम क्षेत्रों में हुए, जहां कृषि का व्यापारीकरण अधिक हुआ, अर्थात् जहां फसलों का उत्पादन मूल रूप से बाजार में बिक्री के लिए किया गया। मजदूर संबंधों का यह बदलाव कुछ विद्वानों द्वारा पूंजीवादी कृषि की ओर एक बदलाव के रूप में देखा जाता है, क्योंकि पूंजीवादी उत्पादन व्यवस्था, उत्पादन के साधन इस मामले में भूमि तथा मजदूरों के पृथक्ककरण तथा 'मुक्त' दिहाड़ी मजदूरों के प्रयोग पर आधारित होता है।

सामान्यतः, यह सच है कि अधिक विकसित क्षेत्रों के किसान अधिक बाजारोन्मुखी हो रहे थे। कृषि के अधिक व्यापारीकरण के कारण ये ग्रामीण क्षेत्र भी विस्तृत अर्थव्यवस्था से जुड़ते जा रहे थे। इस प्रक्रिया से मुद्रा का गांवों की तरफ बहाव बढ़ा

टिप्पणी

तथा व्यापार के अवसरों व रोजगार में विस्तार हुआ। लेकिन हमें यह याद रखना चाहिए कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बदलाव की यह प्रक्रिया वास्तव में औपनिवेशिक काल में प्रारंभ हुई थी। उन्नीसवीं शताब्दी में महाराष्ट्र में भूमियों के बड़े टुकड़े कपास की कृषि के लिए दिए गए थे, तथा कपास की खेती करने वाले किसान सीधे विश्व बाजार से जुड़ गए। हालांकि इसकी गति तथा विस्तार में स्वतंत्रता के बाद तेजी से परिवर्तन हुआ, क्योंकि सरकार ने कृषि की आधुनिक पद्धतियों को प्रोत्साहित किया, तथा अन्य रणनीतियों द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण का प्रयास किया। राज्य ने ग्रामीण अधिसंरचना जैसे सिंचाई सुविधाएं, सड़कें तथा सरकारी समितियों द्वारा उधार की सुविधा में निवेश किया। ग्रामीण विकास के इन प्रयासों का समग्र परिणाम न केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा कृषि में रूपांतरण था, बल्कि कृषि संरचना तथा ग्रामीण समाज में भी रूपांतरण था।

1960 व 1970 के दशक में कृषि विकास द्वारा ग्रामीण सामाजिक संरचना को बदलने वाला एक तरीका नयी तकनीक अपनाने वाले मध्यम तथा बड़े किसानों की समृद्धि थी, जिसकी चर्चा पूर्व भाग में की गई है। अनेक कृषि संपन्न क्षेत्रों जैसे तटीय आंध्र प्रदेश, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा मध्य गुजरात में प्रबल जातियों के संपन्न किसानों ने कृषि से होने वाले लाभ को अन्य प्रकार के व्यापारों में निवेश करना प्रारंभ कर दिया। विविधता की इस प्रक्रिया से नए उद्यमी समूहों का उदय हुआ, जिन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों से इन विकासशील क्षेत्रों के बढ़ते कस्बों की ओर पलायन किया, जिससे नए क्षेत्रीय अभिजात वर्गों का उदय हुआ, जो आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से प्रबल हो गए।

वर्ग संरचना के इस परिवर्तन के साथ ही ग्रामीण तथा अर्द्ध–नगरीय क्षेत्रों में उच्च शिक्षा का विस्तार, विशेषतः निजी व्यावसायिक महाविद्यालयों की स्थापना से नव ग्रामीण अभिजात वर्ग द्वारा अपने बच्चों को शिक्षित करना संभव हुआ, जिनमें से बहुतों ने व्यावसायिक अथवा सफेदपोश व्यवसाय अपनाए अथवा व्यापार प्रारंभ कर नगरीय मध्य वर्गों के विस्तार में योगदान दिया। इस प्रकार त्वरित कृषि विकास वाले क्षेत्रों में पुराने भूमि अथवा कृषि समूह का समेकन हुआ, जिन्होंने स्वयं को एक गतिमान उद्यमी, ग्रामीण नगरीय प्रबल वर्ग के रूप में परिवर्तित कर लिया। लेकिन अन्य क्षेत्रों जैसे पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार में प्रभावशाली भू–सुधारों का अभाव, राजनीतिक गतिशीलता तथा पुनर्वितरण के साधनों के कारण वहां तुलनात्मक रूप से कृषि संरचना तथा अधिकांश लोगों की जीवन दशाओं में थोड़े बदलाव हुए। इसके विपरीत केरल जैसे राज्य विकास की एक भिन्न प्रक्रिया से गुजरे, जिसमें राजनीतिक गतिशीलता, पुनर्वितरण के साधन तथा बाह्य अर्थव्यवस्था, मूल रूप से खाड़ी के देशों से जुड़ाव ने ग्रामीण परिवेश में भरपूर बदलाव किया। केरल में ग्रामीण क्षेत्र मूल रूप से कृषि प्रधान होने के बजाय मिश्रित अर्थव्यवस्था वाला है, जिनमें कुछ कृषिकार्य खुदरा विक्रय तथा सेवाओं के एक विस्तृत संजाल के साथ जुड़ा हुआ है, और जहां एक बड़ी संख्या में परिवार विदेश से भेजे जाने वाले धन पर निर्भर हैं।

मजदूरों का प्रवजन

प्रवासी कृषि मजदूरों की बढ़ोतरी ग्रामीण समाज का एक अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन है, जो कृषि के व्यापारीकरण से जुड़ा है। मजदूरों अथवा पहरेदारों तथा भूस्वामियों के बीच

टिप्पणी

संरक्षण का पारंपरिक संबंध टूटने से तथा पंजाब जैसे हरित क्रांति के संपन्न क्षेत्रों में कृषि मजदूरों की मांग बढ़ने से मौसमी पलायन (Seasonal Labour Migration) का एक प्रतिमान उभरा, जिसमें हजारों मजदूर अपने गांवों से अधिक संपन्न क्षेत्रों, जहां मजदूरों की अधिक मांग तथा उच्च मजदूरी थी, की तरफ संचार करते हैं। 1990 के दशक के मध्य से ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती असमानताएं, जिन्होंने अनेक गृहस्थियों को स्वयं को बनाए रखने के लिए बहुस्तरीय व्यवसायों को सम्मिलित करने पर बाध्य किया, से भी मजदूर पलायन करते हैं। जीवन व्यापार की रणनीति के तौर पर पुरुष समय–समय पर काम तथा अच्छी मजदूरी की खोज में पलायन कर जाते हैं, जबकि स्त्रियों तथा बच्चों को अक्सर गांव में बुजुर्ग माता–पिता के साथ छोड़ दिया जाता है। प्रवसन करने वाले मजदूर मुख्यतः सूखाग्रस्त तथा कम उत्पादकता वाले क्षेत्रों से आते हैं तथा वे वर्ष के कुछ हिस्सों के लिए पंजाब तथा हरियाणा के खेतों में, अथवा उत्तर प्रदेश के ईंट के भट्ठों में, अथवा नयी दिल्ली या बैंगलोर जैसे शहरों में, भवन निर्माण कार्य में काम करने के लिए जाते हैं। प्रवसन करने वाले इन मजदूरों को जान ब्रेमन ने 'घुमक्कड़ मजदूर' कहा है, परंतु इसका अर्थ स्वतंत्रता नहीं है। इसके विपरीत ब्रेमन (1982) का अध्ययन बताता है कि भूमिहीन मजदूरों के पास बहुत से अधिकार नहीं होते, उदाहरण के लिए उन्हें अक्सर न्यूनतम मजदूरी भी नहीं दी जाती है।

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि धनी किसान अक्सर फसल काटने तथा इसी प्रकार की अन्य गहन कृषि क्रियाओं के लिए स्थानीय कामकाजी वर्ग के स्थान पर, प्रवसन करने वाले मजदूरों को प्राथमिकता देते हैं, क्योंकि प्रवसन करने वाले मजदूरों का आसानी से शोषण किया जा सकता है तथा उन्हें कम मजदूरी भी दी जा सकती है। इस प्राथमिकता ने कुछ क्षेत्रों में एक विशिष्ट प्रतिमान पैदा किया है, जहां स्थानीय भूमिहीन मजदूर अपने गांव से कृषि के मुख्य मौसम में काम की तलाश में प्रवास कर जाते हैं, जबकि दूसरे क्षेत्रों में प्रवसन करने वाले मजदूर स्थानीय खेतों में काम करने के लिए लाए जाते हैं। यह प्रतिमान विशेषतः गन्ना उत्पादित क्षेत्रों में पाया जाता है। प्रवसन तथा काम की सुरक्षा के अभाव से इन मजदूरों के कार्य तथा जीवनदशाएं खराब हो जाती हैं।

मजदूरों के बड़े पैमाने पर संचार से ग्रामीण समाज, दोनों ही– भेजने वाले तथा प्राप्त करने वाले क्षेत्रों, पर अनेक महत्वपूर्ण प्रभाव पड़े हैं। उदाहरण के लिए निर्धन क्षेत्रों में, जहां परिवार के पुरुष सदस्य वर्ष का अधिकतर हिस्सा गांवों के बाहर काम करने में बिताते हैं, कृषि मूल रूप से एक महिलाओं का कार्य बन गया है। महिलाएं भी कृषि मजदूरों के मुख्य स्रोत के रूप में उभर रही हैं, जिससे 'कृषि मजदूरों का महिलाकरण' हो रहा है। महिलाओं में असुरक्षा अधिक है क्योंकि वे समान कार्य के लिए पुरुषों से कम मजदूरी पाती हैं। अभी हाल तक सरकारी आंकड़ों में कमाने वालों तथा मजदूरों के रूप में महिलाएं मुश्किल से नजर आती थीं, जबकि महिलाएं भूमि पर भूमिहीन मजदूर तथा कृषक के रूप में श्रम करती हैं। मौजूदा पितृवंशीय नातेदारी व्यवस्था तथा अन्य सांस्कृतिक व्यवहार, जिनसे पुरुष के अधिकारों का हित होता है, आमतौर पर महिलाओं को भूमि के स्वामित्व से पृथक् रखता है।

टिप्पणी

ग्रामीण समाज पर भूमंडलीकरण और उदारीकरण के प्रभाव

उदारीकरण (Laberalisation) की नीति, जिसका अनुसरण भारत 1990 के दशक से कर रहा है, का कृषि तथा ग्रामीण समाज पर बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है (Effects of globalization and liberalisation on Rural Society) । इस नीति के अंतर्गत विश्व व्यापार संगठन में भागीदारी होती है, जिसका उद्देश्य अधिक मुक्त अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था है, और जिसमें भारतीय बाजारों को आयात हेतु खोलने की आवश्यकता है। दशकों तक सरकारी सहयोग और संरक्षित बाजारों के बाद भारतीय किसान अंतर्राष्ट्रीय बाजार से प्रतिस्पर्धा हेतु प्रस्तुत हैं। उदाहरण के लिए हम सभी ने आयातित फलों तथा अन्य खाद्य सामग्री को अपने स्थानीय बाजारों में देखा है– ये वे वस्तुएं हैं जो कुछ वर्ष पूर्व तक आयात प्रतिबंधों के कारण उपलब्ध नहीं थीं। हाल ही में भारत ने गेहूं के आयात का भी फैसला किया, जो एक विवादास्पद फैसला था, जिसने खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता की पूर्व नीति को उलट दिया। और साथ ही जो स्वतंत्रता के बाद के प्रारंभिक वर्षों में अमेरिका के खाद्यान्न पर हमारी निर्भरता की कटु स्मृति कराता है। ये कृषि के भूमंडलीकरण (Globalisation) की प्रक्रिया अथवा कृषि को विस्तृत अंतर्राष्ट्रीय बाजार में सम्मिलित किए जाने के संकेत हैं– वह प्रक्रिया जिसका किसानों और ग्रामीण समाज पर सीधा प्रभाव पड़ा है। उदाहरणार्थ पंजाब और कर्नाटक जैसे कुछ क्षेत्रों में किसानों को बहुराष्ट्रीय कंपनियों– जैसे पेप्सी, कोक से कुछ निश्चित फसलें जैसे टमाटर और आलू उगाने की संविदा दी गई है, जिन्हें ये कंपनियां उनसे प्रसंस्करण अथवा निर्यात हेतु खरीद लेती हैं। ऐसी 'संविदा खेती' (Contract Farming) पद्धति में, कंपनियां उगाई जाने वाली फसलों की पहचान करती हैं, बीज तथा अन्य वस्तुएं निवेशों के रूप में उपलब्ध करवाती हैं, साथ ही जानकारी तथा अक्सर कार्यकारी पूंजी भी देती हैं। बदले में किसान बाजार की ओर से आश्वस्त रहता है, क्योंकि कंपनी पूर्वनिर्धारित तय मूल्य पर उपज के क्रय का आश्वासन देती है।

'संविदा खेती' (Contract Farming) कुछ विशिष्ट मदों जैसे फलों, कपास तथा तिलहन के लिए आजकल बहुत सामान्य है। जहां 'संविदा खेती' किसानों को वित्तीय सुरक्षा प्रदान करती है, वहीं यह किसानों के लिए अधिक असुरक्षा भी बन जाती है, क्योंकि वे अपने जीवन व्यापार के लिए इन कंपनियों पर निर्भर हो जाते हैं। निर्यातोन्मुखी उत्पाद जैसे फल और खीरे हेतु 'संविदा खेती' का अर्थ यह भी है कि कृषि भूमि का प्रयोग खाद्यान्न उत्पादन से हट कर किया जाता है। 'संविदा खेती' का समाजशास्त्रीय महत्व यह है कि यह बहुत से व्यक्तियों को उत्पादन प्रक्रिया से अलग कर देती है, तथा उनके अपने देशीय कृषि ज्ञान को निरर्थक बना देती है। इसके अतिरिक्त 'संविदा खेती' मूल रूप से अभिजात मदों का उत्पादन करती है तथा चूंकि यह अकसर खाद तथा कीटनाशक का उच्च मात्रा में प्रयोग करती है, इसलिए यह बहुधा पर्यावरणीय दृष्टि से सुरक्षित नहीं होती।

कृषि के भूमंडलीकरण का एक अन्य तथा अधिक प्रचलित पक्ष बहुराष्ट्रीय कंपनियों का इस क्षेत्र में कृषि मदों जैसे बीज, कीटनाशक तथा खाद के विक्रेता के रूप में प्रवेश है। पिछले दशक के आसपास से सरकार ने अपने कृषि विकास कार्यक्रमों में कमी की है तथा 'कृषि विस्तार' एजेंटों का स्थान गांव में बीज, खाद तथा कीटनाशक

टिप्पणी

कंपनियों के एजेंटों ने ले लिया है। ये एजेंट अकसर किसानों के लिए नए बीजों तथा कृषि कार्य हेतु जानकारी का एकमात्र स्रोत होते हैं, और निःसंदेह वे अपने उत्पाद बेचने के इच्छुक होते हैं। इससे किसानों की महंगी खाद और कीटनाशकों पर निर्भरता बढ़ी है, जिससे उनका लाभ कम हुआ है। बहुत से किसान ऋणी हो गए हैं, तथा ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यावरण संकट भी पैदा हुआ है। जबकि भारत में किसान सदियों से समय–समय पर सूखे, फसल न होने अथवा ऋण के कारण परेशानी का सामना करते रहे हैं। किसानों द्वारा आत्महत्या की घटनाएं नयी जान पड़ती हैं।

इस प्रघटना की व्याख्या समाजशास्त्रियों ने कृषि तथा कृषक समाज में होने वाले संरचनात्मक तथा सामाजिक परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में करने का प्रयास किया है। ऐसी आत्महत्याएं, 'मैट्रिक्स घटनाएं' बन गई हैं, अर्थात् जहां कारकों की एक शृंखला मिल कर एक घटना बनाती हैं। आत्महत्या करने वाले बहुत से किसान 'सीमांत किसान' थे, जो मूलरूप से हरित क्रांति के तरीकों का प्रयोग करके अपनी उत्पादकता बढ़ाने का प्रयास कर रहे थे। हालांकि ऐसा उत्पादन करने का अर्थ था कई प्रकार के जोखिम उठाना। कृषि रियायतों में कमी के कारण उत्पादन लागत में तेजी से बढ़ोतरी हुई है, बाजार स्थिर नहीं है, तथा बहुत से किसान अपना उत्पादन बढ़ाने के लिए महंगे मदों में निवेश करने हेतु अत्यधिक उधार लेते हैं। खेती का न होना, किसी बीमारी अथवा हानिकारक जीव–जंतु, अत्यधिक वर्षा या सूखे के कारण तथा कुछ मामलों में उचित आधार अथवा बाजार मूल्य के अभाव के कारण किसान कर्ज का बोझ उठाने अथवा अपने परिवारों को चलाने में असमर्थ होते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की परिवर्तित होने वाली संस्कृति, जिसमें विवाह, दहेज तथा अन्य नयी गतिविधियां तथा शिक्षा व स्वास्थ्य की देखभाल के खर्चों के कारण अधिक आय की आवश्यकता होती है, जिससे ऐसी परेशानियों की तीव्रता बढ़ जाती है। (वासवी, 1999)

किसानों की आत्महत्याओं का प्रतिमान ग्रामीण क्षेत्रों में अनुभव किए जाने वाले महत्वपूर्ण संकट की ओर संकेत करते हैं। कृषि बहुत से लोगों के लिए अरक्षणीय होती जा रही है, तथा कृषि के लिए राज्य का सहयोग भी बहुत कम मिलता है। इसके अतिरिक्त कृषि के मुद्दे अब मुख्य सार्वजनिक मुद्दे नहीं रहे हैं, तथा गतिशीलता के अभाव के कारण कृषक शक्तिशाली दबाव समूह बनाने में असमर्थ हैं, जो नीति निर्धारण अपने पक्ष में करवा सकें अथवा नीति को प्रभावित कर सकें।

1.2.2 कृषक एवं ग्रामीण समाज में परिवार

भारतीय ग्रामीण परिवार संयुक्त परिवार प्रणाली की विशेषता से जुड़ा है। ग्रामीण परिवार की सबसे उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण विशेषताएं (Characteristics of Family in Agriculturist and Rural Society) इस प्रकार हैं–

1. **संयुक्त परिवार**– भारत में ग्रामीण परिवार की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है संयुक्त परिवार प्रणाली का अभ्यास। एक संयुक्त परिवार में पति, पत्नी, चाचा, चाची, बेटे, और भतीजे, आदि शामिल हैं। अधिकार का हक परिवार के सबसे वरिष्ठ पुरुष सदस्य में होता है। परिवार में आम तौर पर साझी रसोई की प्रथा होती है और हर सदस्य का साझा आवास और साझी भोजन व्यवस्था होती है।

टिप्पणी

2. **महिलाओं के प्रति उच्च सम्मान**– भारतीय गांवों में महिलाओं को सम्मान प्रदान किया जाता है। ग्रामीण समाज में महिलाएं, पुरुषों के साथ खेतों में काम करती हैं।

3. **धार्मिक दृष्टिकोण**– ग्रामीण परिवार की तीसरी मुख्य विशेषता है, धार्मिक और आध्यात्मिक आधार। ग्रामीण परिवार धार्मिकता के सिद्धांतों से बंधा होता है और इसका उद्देश्य भौतिक न होकर आध्यात्मिक होता है। गांवों में रहने वाले परिवारों में अधिकारों से ज्यादा, दायित्वों पर जोर दिया जाता है। इसीलिए परिवार के सदस्यों के बीच सौहार्द्रपूर्ण और सम्मानजनक संबंध होते हैं। ग्रामीण परिवार का हर सदस्य अलग कार्य करता है और सभी सदस्यों के बीच अनुशासन, सद्भाव और शांति का वास होता है।

4. **मेहमानदारी**– ग्रामीण परिवार की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है, इसका अपने मेहमानों के प्रति रवैया (Hospitality)। इनके घर में मेहमान का सदा स्वागत किया जाता है। भारत में पाई जाने वाली यह मेहमानवाजी, दुनिया को सदा से आकर्षित करती रही है।

5. **सामंजस्य**– शहरों की तुलना में गांवों में, परिवार के सदस्यों के बीच अधिक सौहार्द्रपूर्ण (Cordial) और सामंजस्यपूर्ण (Harmonious) संबंध होता है। गांवों में रहने वाले परिवार आम तौर पर सजातीय इकाई होते हैं।

6. **एक–दूसरे के प्रति प्यार**– किसान परिवारों में, परिवार का प्रत्येक सदस्य धन कमाने में भागीदार होता है और प्रत्येक सदस्य का समान ढंग से ख्याल रखा जाता है। ग्रामीण परिवारों में बच्चे घर के पशुओं का ध्यान रखते हैं, महिलाएं फसलें काटती हैं और पुरुष अन्य कृषि श्रम करते हैं। वे खेतों को जोतने और उन्हें जानवरों से बचाने का काम करते हैं।

7. **परिवार में अनुशासन**– शहरी परिवारों की तुलना में, ग्रामीण परिवारों में अधिक अनुशासन और आपसी लेन–देन पाया जाता है। परिवार के सदस्य परिवार के मुखिया के आदेशों का पालन करते हैं। विवाह, सामान्य रूप से, माता–पिता द्वारा तय किए जाते हैं।

8. **परिवार का सम्मान**– ग्रामीण परिवारों के लिए उनका सम्मान बहुत महत्वपूर्ण होता है। उनकी सामूहिक भावनाएं उनकी व्यक्तिगत भावनाओं से अधिक प्रमुख होती हैं। परिवार को पहुंची कोई भी ठेस प्रत्येक सदस्य द्वारा एक व्यक्तिगत चोट की तरह ली जाती है और परिवार का सम्मान भी व्यक्तिगत सम्मान माना जाता है। इसलिए, परिवार के किसी भी सदस्य को ऐसा कोई ऐसा काम करने की इजाजत नहीं होती, जिससे परिवार के सम्मान का समझौता करना पड़े।

9. **परंपरा और रीति का प्रभाव**– गांवों में, परंपराओं को बहुत मान दिया जाता है और इनकी सुरक्षा की जाती है। जितनी पुरानी परंपरा, ग्रामीण मानस पर उसकी उतनी ही मजबूत पकड़ होती है। शहरी लोगों की तुलना में, तकनीकी विकास, उन्नति, और सामाजिक बदलाव जैसी चीजों का ग्रामीण लोगों पर

टिप्पणी

ज्यादा असर नहीं होता। परिवार के अंदर संबंध परंपराओं पर निर्धारित होते हैं।

10. **परिवार, एक आर्थिक इकाई**– आर्थिक दृष्टिकोण से, एक ग्रामीण परिवार को उत्पादन, वितरण और विनिमय के संबंध में एक इकाई समझा जा सकता है। आर्थिक संबंधों में, व्यक्ति के स्थान पर परिवार की केंद्रीय भूमिका होती है। वस्तु विनिमय प्रणाली, कुछ हद तक आज भी गांवों में प्रचलित है।
11. **पैतृक प्रभाव**– भारत के ग्रामीण परिवारों में कुलपति प्रणाली प्रचलित है। एक पितृसत्तात्मक परिवार में अधिकार और सम्मान परिवार के पिता में निहित रहता है। इसी प्रकार, ग्रामीण भारत में परिवारों में पिता श्रेष्ठ होते हैं। बच्चे चाहे कितने भी बड़े क्यों न हो जाएं, वे आमतौर पर पिता का सम्मान करते हैं और उनके आदेश के विरुद्ध जाने का साहस नहीं करते।
12. **परिवार नियंत्रण**– ग्रामीण समाज में, समाज के सदस्यों पर, परिवार के माध्यम से नियंत्रण रखा जाता है। परिवार द्वारा समाज के सदस्यों पर दायित्वों का बोझ डाला जाता है और परिवार ही इस बात को निश्चित करते हैं कि वे अपने दायित्वों का पालन करें। एक व्यक्ति का स्तर उसके परिवार के स्तर के आधार पर निर्धारित किया जाता है। परिवार ही सदस्यों द्वारा सामाजिक कानूनों का सम्मान और पालन करवाता है।
13. **देवता पूजा**– ग्रामीण भारत में, पूर्वजों की पूजा एक सामान्य बात है। पूजे जाने वाले देव, आमतौर पर पारिवारिक नक्षत्र बनाते हैं। उदाहरण के लिए, भगवान शिव देवी पार्वती के पति हैं और भगवान गणेश के पिता।
14. **परिवार, एक सामाजिक इकाई**– ग्रामीण परिवार, ग्रामीण समाज की एक धार्मिक, आर्थिक, और सामाजिक इकाई है। कोई नैतिक, सामाजिक या राजनीतिक नियम नहीं तोड़े जाते और ये पारिवारिक संरचना का आधार बनते हैं। ग्रामीण समाज में सभी नियम और कानून परिवार संरचना की जड़ों को मजबूत करते हैं।

ऊपर रेखांकित ग्रामीण समाज की मुख्य विशेषताएं तकरीबन भारत के सभी ग्रामीण क्षेत्रों में समान रूप से पाई जाती हैं, बस देश के विशाल फैलाव के चलते इन विशेषताओं में कुछ क्षेत्रीय भिन्नताएं हो सकती हैं।

संयुक्त परिवार

पीढ़ी दर पीढ़ी, परिजनों के समूह को संयुक्त परिवार (Joint Family) कहा जाता है, इस परिवार का एक मुखिया, एक निवास, एक चूल्हा, और साझी संपत्ति होती है और परिवार के सदस्य एक–दूसरे के साथ पारस्परिक दायित्वों द्वारा जुड़े होते हैं। एक ही घर, आम रसोई, संयुक्त संपत्ति और आम पूजा पद्धति संयुक्त परिवार की मुख्य विशेषताएं हैं। इस बात को संयुक्त परिवार की निम्न परिभाषाओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

1. कारवे का मानना है, 'एक संयुक्त परिवार उन लोगों का एक समूह है जो आमतौर पर एक ही छत के नीचे रहते हैं, एक ही चूल्हे से बना खाना खाते हैं,

टिप्पणी

जिनकी संयुक्त संपत्ति होती है, जो आम पूजा में भाग लेते हैं और जो किसी विशेष रूप में एक–दूसरे से संबंधित होते हैं'।

2. जॉली का कहना है, 'न केवल माता–पिता और बच्चे, भाई और सौतेले भाई एक ही संपत्ति पर रहते हैं, लेकिन कई बार अनेक पीढ़ियों के वंशज भी उस घर में रहते हैं'।
3. देसाई के अनुसार, 'पीढ़ियों की अधिक गहराई (यानी, दो अथवा तीन) वाले घर को, जिसके सदस्य एक–दूसरे से संपत्ति, आय और आपसी अधिकार एवं दायित्वों के माध्यम से जुड़े हों, संयुक्त परिवार कहा जाता है, एकल परिवारों को नहीं।

संयुक्त परिवार के लाभ

संयुक्त परिवार के लाभ (Benefits of Joint Family) इस प्रकार हैं–

1. **आर्थिक लाभ**– आर्थिक दृष्टिकोण से, संयुक्त परिवार की प्रणाली सदा लाभदायक साबित हुई है। इस कारण संपत्ति का विभाजन नहीं होता। परिवार की जमीन टुकड़ों में बंटने से बच जाती है। छोटे टुकड़ों में बंटने के बाद जमीन आर्थिक रूप से उपयोगी नहीं रहती। जमीन को एक साथ जोड़े रखने के अलावा, संयुक्त परिवार आर्थिक उत्पादन में भी सहायता करता है। एक संयुक्त कृषि परिवार में पुरुष सदस्य खेतों में बीजाई और सिंचाई का काम करते हैं। महिलाएं फसलों की जुताई में सहायता करती हैं। बच्चे पशु चराते हैं और ईंधन तथा खाद इकट्ठा करते हैं। इस प्रकार, परिवार के सभी सदस्यों के सहयोग से पैसे की बचत होती और मजदूरों को काम पर रखने की आवश्यकता नहीं होती। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले संयुक्त परिवार इस प्रकार के होते हैं जिनमें पुरुष, महिलाएं और बच्चे सब एक–दूसरे के साथ मिलकर काम करते हैं। मध्य एवं उच्च वर्गी परिवार भी व्यापार की स्थापना एवं विस्तार के लिए संयुक्त परिवार की सहायता पर निर्भर करते हैं।
2. **सदस्यों की सुरक्षा**– जवाहरलाल नेहरू, संयुक्त परिवार के पक्षधर थे। नेहरू जी का यह कहना था कि संयुक्त परिवार प्रणाली, परिवार के सदस्यों के लिए बीमे का काम करती है, जो मानसिक एवं शारीरिक तौर से कमजोर सदस्यों की रक्षा की गारंटी लेती है। संकट के समय में संयुक्त परिवार बच्चों, महिलाओं, बूढ़ों, पागल, विधवा और असहाय सदस्यों को सहायता प्रदान कर सकता है। गर्भावस्था, बीमारी आदि जैसी आपातकालीन स्थितियों के समय संयुक्त परिवार सहायता करने की योग्यता रखता है और किसी सदस्य के मर जाने की स्थिति में संयुक्त परिवार मृतक के बच्चों और उसकी पत्नी की पूरी देखभाल करता है। एक संयुक्त परिवार में प्रत्येक सदस्य को एक स्थान मुहैया करवाया जाता है, जहां वह जरूरत पड़ने पर कभी भी जा सकता है और सदस्यों के धन तथा उनकी समृद्धि की सामूहिक तौर पर सुरक्षा की जाती है।
3. **अच्छी आदतों की शुरुआत**– संयुक्त परिवार प्रणाली एक आदमी में अच्छी आदतें डालने के विचार के विकास की संभावना उत्पन्न करती है। परिवार के बड़ों की देख रेख में, अवांछनीय, और असामाजिक प्रवृत्तियां काबू में रहती हैं,

टिप्पणी

घर के बड़े उन्हें रास्ता भटकने से बचा लेते हैं और वे आत्म–नियंत्रण भी सीख पाते हैं। संयुक्त परिवार में, लड़के और लड़कियां उदारता, धैर्य, सेवा, सहयोग और आज्ञाकारिता जैसे सबक सीखते हैं। त्याग की भावना स्वार्थ को बदल देती है। परिवार के सभी सदस्य परिवार नियंत्रण का पालन करना और अपने से बड़ों का आदर करना सीखते हैं।

4. **सहयोग एवं आर्थिक सहायता**– एक संयुक्त परिवार के सभी सदस्य एक–दूसरे का इस कदर सहयोग करते हैं और ऐसी आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं जिसका उदाहरण शायद ही कहीं मिल सके। परिवार के सदस्यों के बीच सहयोग की भावना रहती है। आर्थिक सहयोग के कारण खर्चों में काफी कमी होती है। एक संयुक्त परिवार को सहयोग का आदर्श केंद्र कहना बिल्कुल ठीक होगा।

5. **पैसों के मामले में समाजवाद**– सर हेनरी मेन के अनुसार, संयुक्त परिवार एक व्यापार संघ की तरह है, जिसका ट्रस्टी उसका पिता होता है। परिवार के पिता को कर्ता कहा जाता है। डी.एन. मजूमदार द्वारा कहा गया है, 'संयुक्त परिवार के कर्ता के पास अपने परिवार से संबंधित फैसले लेने का अधिकार होता है। वह परिवार का कार्यकारी मुखिया होता है और जज व जूरी भी। वह परिवार में होने वाले झगड़ों का फैसला करता है। चूंकि सामाजिक, औपचारिक और सामुदायिक गतिविधियों, तथा स्थानीय ग्राम पंचायत में हर परिवार का प्रतिनिधित्व उसके मुखिया द्वारा किया जाता है, इसलिए, परिवार का पिता उसका राजनीतिक मुखिया होता है'। जेथर और बेरी के अनुसार, संयुक्त परिवार का प्रत्येक सदस्य अपनी योग्यता के अनुसार कमाता है, लेकिन अपनी जरूरत के हिसाब से पाता है, और इस प्रकार यह एक समाजवादी आदर्श उपलब्ध करता है; प्रत्येक अपनी क्षमता से, से लेकर, प्रत्येक अपनी जरूरत तक।

संयुक्त परिवार के नुकसान

संयुक्त परिवार प्रणाली के कुछ मुख्य नुकसान (Disadvantages of Joint Family) इस प्रकार हैं–

1. **व्यक्तित्व के विकास में बाधा**– संयुक्त परिवार प्रणाली का सबसे बड़ा नुकसान है कि वह सदस्यों के व्यक्तित्व के विकास में रुकावट बनती है (Impediment to personality development)। संयुक्त परिवार का मुखिया पूर्ण शासक होता है। वह परिवार का सबसे वरिष्ठ सदस्य होता है। इसलिए सदस्यों को व्यक्तिगत स्वतंत्रता या आत्म–निर्भरता के बहुत कम अवसर मिलते हैं।

2. **महिलाओं की दयनीय स्थिति**– महिलाओं की बुरी हालत (Pathetic Condition) भी इसके विघटन का एक प्रमुख कारक है। संयुक्त परिवार में एक बहू को अपना व्यक्तित्व विकसित करने के अवसर नहीं मिलते। वह अपने बच्चों और परिवार की जरूरतों का ध्यान रखती है।

3. **घरेलू हिंसा**– यदि अत्याचार की शिकार महिलाएं बुरे व्यवहार के विरुद्ध आवाज उठाती हैं या अपने हक में कोई बात करती हैं तो घर लड़ाई का

टिप्पणी

मैदान बन जाता है (Domestic Violence)। देवरानी और जेठानी के बीच आपसी जलन तथा नफरत, भाइयों के बीच भी संघर्ष की स्थिति पैदा करती है जिससे हालात खतरनाक मोड़ ले सकते हैं। बच्चों को लेकर भी निरंतर लड़ाइयां और मनमुटाव चलते रहते हैं। घर के बड़े, ज्यादातर, इन छोटी समस्याओं का समाधान ढूंढ़ने में लगे रहते हैं।

4. **आलस्य**– सामान्य जिम्मेदारी के कारण बहुत से लोग काम से मुंह मोड़कर पूरे आलसी (Lazybones) बन जाते हैं। इस स्थिति में मेहनत करने वालों और आलसी लोगों की समान हालत होती है। इसलिए, आलस्य को बढ़ावा दिया जाता है। जब किसी व्यक्ति को बिना मेहनत किए आराम से खाने को मिल जाए तो बेशक, वह किसी चीज के लिए मेहनत नहीं करेगा। आमतौर पर, संयुक्त परिवार में कुछ सदस्य कड़ी मेहनत करते हैं और कुछ पूरी सुस्ती और आलस्य का जीवन व्यतीत करते हैं।

5. **बच्चों की अधिक संख्या**– संयुक्त परिवार में बच्चों को पालने और उन्हें शिक्षित करने की साझी जिम्मेदारी होती है। इसलिए, कोई भी व्यक्ति संतान वृद्धि पर रोक लगाने की बात पर जोर देना जरूरी नहीं समझता। परिवार में सदस्यों द्वारा की जाने वाली कमाई और संबंधित बच्चों की संख्या के आधार पर उनकी हैसियत में कोई अंतर नहीं किया जाता। इस प्रकार, एक संयुक्त परिवार में, किसी एक सदस्य को कम बच्चे पैदा करने या ज्यादा धन कमाने का कोई सीधा लाभ नहीं होता। इसके फलस्वरूप, लोग अपनी परिवार नियोजन विचारधारा खो देते हैं।

6. **गरीबी**– तकरीबन दैनिक संघर्ष, महिलाओं की बुरी हालत, सम्पूर्ण शासन, जिम्मेदारी की कमी और अधिक बच्चे होने के कारण, एक संयुक्त परिवार की हालत बहुत खराब होती है। बढ़ते संघर्ष के कारण जमीन और संपत्ति में बंटवारा, हालात को और खराब कर देता है। संयुक्त स्वामित्व वाली परिवार की संपत्ति कई बार व्यर्थ हो जाती है और धीरे–धीरे सब इससे हाथ धो बैठते हैं।

7. **अन्य समस्याएं**– ऊपर व्यक्त की गई मुख्य कमियों के अतिरिक्त, संयुक्त परिवार प्रणाली में अन्य कई छोटी–छोटी कमियां हैं। पारिवारिक संघर्ष की बदौलत कोर्ट–कचहरी के चक्कर लगाने पड़ते हैं। संयुक्त परिवार में परंपराओं और रिवाजों का दृढ़ पालन किया जाता है और यहां सबसे बड़े सदस्य का मार्गदर्शक हाथ होने के कारण, अंधविश्वास का बोलबाला होता है। बूढ़े लोगों के सख्त प्रशासन के कारण युवा सदस्य आत्म–विश्वास और आत्म–निर्भरता जैसी चीजें नहीं सीख पाते, परिणाम स्वरूप, संयुक्त परिवार का विघटन हो रहा है।

नए सामाजिक विधान की भूमिका

भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली कुछ नए सामाजिक विधानों (New Social Legislation) से बहुत प्रभावित हुई है। इनका, संयुक्त परिवार, संयुक्त आवास, संयुक्त रसोई, संयुक्त

टिप्पणी

संपत्ति और मुखिया के अधिकार जैसी विशिष्ट विशेषताओं पर सीधा असर पड़ा है। इन सामाजिक विधानों में निम्न विधान प्रमुख हैं–

1. **हिंदू विवाहित महिलाओं के लिए अलग निवास और रखरखाव का अधिकार अधिनियम**– यह विधान (The Hindu Adoption and Maintenance Act 1956) 1956 में लागू किया गया था। इस विधान के अनुसार, कुछ विशेष परिस्थितियों में एक पत्नी अपने पति से अलग रह कर निर्वाह निधि की मांग कर सकती है।
2. **हिंदू विवाह अधिनियम**– इस अधिनियम (Hindu Marriage Act) के अनुच्छेद 13 के अनुसार, कोई भी पति और पत्नी, जिनका विवाह इस विधान को लागू किए जाने से पहले या बाद में हुआ है, विशेष परिस्थितियों में, कोर्ट में तलाक हेतु अर्जी दाखिल कर सकते हैं। इस कानून को 1955 में लागू किया गया था।
3. **हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम**– इस अधिनियम (Hindu Succession Act 1956) ने 1956 में कानून का रूप लिया। इसके अनुसार, बेटी को अपने पिता की संपत्ति पर समान अधिकार प्रदान किया गया और महिलाओं को भी संपत्ति के निपटान, उसे गिरवी रखने और अपने मनचाहे ढंग से इस्तेमाल करने का अधिकार दिया गया।

ऊपर वर्णित अधिनियमों अथवा विधानों का संयुक्त परिवार की एकता पर बहुत असर पड़ा है। हिंदू विवाह अधिनियम के परिणामस्वरूप तलाकों की संख्या बढ़ रही है। पहले, महिलाएं चुपचाप अन्याय और आक्रोश सह लिया करती थीं। संयुक्त परिवारों में महिलाओं का बेहद निम्न स्तर था। कई बार सास का अपनी बहू के प्रति बहुत बुरा बर्ताव हुआ करता था। उनके पति भी उनसे ऐसा ही बुरा बर्ताव किया करते थे। अब, इस कानून का समर्थन पाने के बाद महिलाओं ने इस अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठानी शुरू की तो संयुक्त परिवार का विघटन होने लगा। पति द्वारा बुरे व्यवहार के कारण अब वे उन्हें छोड़ कर अलग रह सकती हैं और अपने पति से अपने गुजर हेतु पैसे की मांग कर सकती हैं। इस प्रावधान ने संयुक्त परिवार प्रणाली को झटका दिया है। संयुक्त परिवार की एक और मुख्य विशेषता है संयुक्त संपत्ति। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम का इस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अब, जब महिलाओं को अपनी संपत्ति बेचने का अधिकार प्राप्त है और लड़कियां भी अपने पिता की संपत्ति में बराबर की हकदार हैं, पारिवारिक संपत्ति को संयुक्त रखना बहुत मुश्किल हो गया है। इसका परिणाम यह है कि संयुक्त परिवारों का शीघ्र विघटन हो रहा है। आधुनिक विधानों के चलते पुरुष अपना प्रभुत्व खो रहे हैं। इससे भी संयुक्त परिवार की संस्था पर गहरा असर देखने को मिल रहा है। आधुनिक विधानों की बदौलत अब, संयुक्त परिवार में ज्यादा पैसा कमाने वाले पुरुषों की पत्नियां अपने पति को संयुक्त परिवार से नाता तोड़ कर स्वतंत्र काम करने के लिए हठ कर सकती हैं। उनके सास–ससुर भी उनकी इस शक्ति को समझते हैं। उनके पति भी उनसे अविवेकी व्यवहार नहीं कर सकते। उनका भी अपने बच्चों पर अपने पति के समान अधिकार है। इन सभी कारणों के चलते कई बार छोटी गलतफहमियां भी ऐसी परिस्थिति पैदा कर देती हैं

कि पति पत्नी एक–दूसरे से अलग हो जाते हैं। दरअसल, संयुक्त परिवार के विघटन के कारण संवैधानिक नहीं बल्कि मुख्य रूप से सामाजिक हैं, लेकिन इस बात में कोई संदेह नहीं कि कानून का भी इस विघटन में बड़ा हाथ है।

टिप्पणी

1.2.3 कृषक एवं ग्रामीण समाज में गांव, आवास एवं बस्ती

हमारे सामूहिक इतिहास में विभिन्न कालों में दुनिया भर में विभिन्न प्रकार के ग्राम समुदाय उभरे और अस्तित्व में आए। ये ग्राम समुदाय सामाजिक प्रथाओं, लोक–संस्कृतियों, परंपराओं, अर्थव्यवस्था, मूल्य परंपरा जैसे विभिन्न आयामों के लिहाज से एक–दूसरे से भिन्न होते हैं। इस प्रकार, अमेरिकी गांव जर्मनी के गांव से भिन्न होता है और भारतीय गांव रूस के गांव से भिन्न होता है।

इन अंतरों का विभिन्न समाजशास्त्रियों ने अध्ययन किया है और विभिन्न प्रकार के ग्राम समुदायों की पहचान की है। ग्राम समुदाय के कुछ प्रमुख प्रकार निम्नानुसार हैं (Villages, houses and settlements in agricultural and rural society)–

1. **निवास के आधार पर** : निवास ग्राम समुदायों के वर्गीकरण का बहुत महत्वपूर्ण मानदंड है। निवास के आधार पर वर्गीकरण इस प्रकार है–
   - **भ्रमणशील गांव** : ऐसे समुदाय कुछ समय तक किसी एक स्थान पर रहते हैं, और वहीं से अपनी दैनिक जरूरतें (भोजन और मकान) हासिल करते हैं। एक बार जब खाने–पीने के साधन खत्म हो जाते हैं तो वह समुदाय किसी अन्य जगह चला जाता है और नई जगह गांव बसा लेता है।
   - **अर्ध–स्थायी गांव** : ऐसे गांव में, समुदाय कई साल तक रहते हैं और जब आय कम हो जाती है, तो वह स्थान छोड़ देते हैं। घटी हुई आय उनका गांव में टिकना तय करती है, और वे अधिक आय की तलाश में चल देते हैं।
   - **स्थायी गांव** : ऐसे गांवों में लोग स्थायी रूप से रहते हैं। कई पीढ़ियां ऐसे गांवों में जीवन बिता चुकी होती हैं। इन गांवों में स्थायी मकान होते हैं और परिवार उनमें रहते हैं और आजीविका कमाते हैं।
2. **भौतिक बनावट के आधार पर** : इरावती कर्वे ने भारत के गांवों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है–
   - **मैदानी आयताकार गांव** : बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों के अधिकतर गांव इस प्रकार के हैं।
   - **केंद्रीयकृत गांव** : दक्षिण भारत के पठारी क्षेत्र के छोटे आकार के गांव इसका उदाहरण हैं।
   - **रैखिक गांव** : सड़क के दोनों ओर बसे गांव इस श्रेणी में आते हैं। कोंकण क्षेत्र तथा बंगाल, उड़ीसा, केरल आदि स्थानों पर ऐसे गांव अधिक पाए जाते हैं।
   - **बिखरे हुए गांव** : पहाड़ी क्षेत्रों के गांव (उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश आदि) इसके उदाहरणस्वरूप दिए जा सकते हैं।
3. **संगठन के आधार पर** : ग्राम समुदायों को उनके संगठन के तरीके के आधार पर निम्न तीन प्रकारों में बांटा जा सकता है–

टिप्पणी

– **सहकारी गांव** : इस प्रकार के गांव में, जमीन का स्वामित्व तो निजी रूप से होता है, लेकिन समुदाय के सदस्य अपनी जमीन मिलाकर एक साथ सामूहिक खेती करने का निर्णय लेते हैं। सहकारिता के सामूहिक भंडार से हर परिवार की जरूरतों की पूर्ति की जाती है।

– **अर्ध–सामूहिक गांव** : इस तरह के गांवों में जमीन का स्वामित्व संयुक्त रूप से होता है और समुदाय के सदस्य जमीन पर संयुक्त रूप से खेती करते हैं। परिवारों की जरूरतें गांव की आमदनी के हिसाब से पूरी की जाती हैं। परिवारों को उनकी संख्यात्मक शक्ति के आधार पर उनका हिस्सा दिया जाता है।

– **सामूहिक गांव** : इस तरह के गांवों में ग्राम समुदाय एक सामूहिक बस्ती में रहते हैं जहां सारी संपत्ति का स्वामित्व सामूहिक रूप से होता है और जीवन के सारे मामले सामूहिक रूप से संभाले जाते हैं। सदस्य सामूहिक काम में अपना योगदान करते हैं और उनके जीवन की सारी जरूरतें पूरी की जाती हैं। उनका एक ही भोजन कक्ष, एक ही भंडारगृह आदि होता है। बूढ़ों, बीमारों और कमजोरों की भी समुदाय सामूहिक रूप से देखरेख करता है। इस तरह के संगठन में गांव के हर सदस्य को पूरी सुरक्षा दी जाती है।

4. **भू–स्वामित्व के आधार पर** : इस आधार पर, ग्राम समुदाय को नीचे बताए दो वर्गों में बांटा गया है:

– **भूस्वामी गांव** : इस प्रकार के समुदाय में जमीन केवल कुछ परिवारों के पास निजी रूप में होती है और वे भूस्वामी होते हैं। वे अपनी जमीन खेती के लिए किराए पर देते हैं।

– **रैयतवाड़ी गांव** : ऐसे गांवों में किसान जमीन के मालिक होते हैं और खुद खेती करते हैं। वो जमीन का राजस्व सरकार को सीधे देते हैं और इसमें कोई बिचौलिया नहीं होता।

1.2.4 कृषक एवं ग्रामीण समाज में धर्म

कृषक एवं ग्रामीण समाज की एक प्रमुख विशेषता है, धार्मिक एवं आध्यात्मिक आधार (Religion in Agriculturist and Rural Soeicty)। कृषक ग्रामीण परिवार धार्मिकता के सिद्धांतों से बंधे होते हैं और उनका उद्देश्य भौतिक न होकर आध्यात्मिक होता है। गांवों में रहने वाले परिवारों में अधिकारों से ज्यादा, दायित्वों को महत्व दिया जाता है। इसीलिए परिवार के सदस्यों के बीच सौहार्द्रपूर्ण और सम्मानजनक संबंध होते हैं। कृषक एवं ग्रामीण परिवार के सभी सदस्य अलग कार्य करते हैं और सभी सदस्यों के बीच अनुशासन, सद्भाव और शांति का वास होता है।

धर्म की महत्ता

कृषक एवं ग्रामीण समाज द्वारा धर्म को बहुत ज्यादा महत्व दिया जाता है। उनकी प्रकृति से निकटता के कारण उनमें अलौकिक शक्ति के प्रति डर मिश्रित श्रद्धा तथा विश्वास पैदा हो जाना स्वाभाविक है जो धार्मिक नियमों के नियमित पालन के रूप में

टिप्पणी

फलित होता है। स्थानीय देवी–देवताओं, मान्यताओं और अन्य उपासना रीतियों की उपस्थिति के कारण कृषक एवं ग्रामीण समुदाय एक नैतिक समुदाय में परिवर्तित हो जाता है। अतः कृषक एवं ग्रामीण समाज में धर्म, सामाजिक, आर्थिक तथा पारिवारिक क्रियाओं के आधार के साथ–साथ अनौपचारिक नियंत्रण का माध्यम भी बन जाता है।

अशिक्षा जनित भाग्यवादिता इसका प्रमुख कारण है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार गांवों में शिक्षा एवं साक्षरता का प्रतिशत अभी भी अपेक्षाकृत बहुत कम है। ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चे शिक्षा पूरी कर पाएं, इस के लिए और अधिक प्रयास की आवश्यकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या का कितना हिस्सा गांव में रहता है?

   (क) 58.8 प्रतिशत (ख) 68.8 प्रतिशत

   (ग) 50 प्रतिशत (घ) 60 प्रतिशत

2. "जाति वस्तुतः एक विस्तृत नातेदारी समूह है।"– यह किसका कथन है?

   (क) इरावती कर्वे का (ख) जे.एच. हट्टन का

   (ग) दत्ता का (घ) घुरिये का

1.3 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)

1.4 सारांश

मनुष्य समाज में रहता है। समाज के विभिन्न रूपों के उदाहरण हैं– ग्रामीण समाज, नगरीय समाज तथा जनजातीय समाज। इन सभी समाजों के सामुदायिक स्वरूप, संबंधों के सांस्कृतिक आधार तथा धनोपार्जन के तरीकों में भिन्नता होती है। समाजशास्त्रीय दृष्टि में, ग्रामीण समाज अनौपचारिक, घनिष्ठ प्राथमिक संबंधों की प्रधानता, छोटा आकार तथा कृषि की प्रधानता से पहचाना जाता है। ग्रामीण समाज का प्रकृति एवं मनुष्य दोनों से करीबी संबंध होता है। पी.एच. लैण्डिस के विचारानुसार, "गांव को प्रकृति पर प्रत्यक्ष निर्भरता, छोटा आकार, निवासियों के बीच घनिष्ठ और प्राथमिक संबंधों के आधार पर पहचाना जा सकता है।"

भारत गांवों में बसता है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत की कुल जनसंख्या का 68.8 प्रतिशत गांव में रहता है। कुल 6,40,930 गांवों में 83,34,63,448 व्यक्ति निवास करते हैं। 32.95 प्रतिशत गांवों की आबादी 500 से कम है, जबकि 58.17 प्रतिशत गांवों की आबादी 2000 से अधिक है।

टिप्पणी

ए.आर. देसाई के कथनानुसार, "ग्रामीण समाज की इकाई गांव है, यह एक रंगमंच है, जहां ग्रामीण जीवन का प्रमुख भाग स्वयं प्रकट होता है और कार्य करता है। ग्राम सामूहिक निवास की प्रथम स्थापना है और कृषि अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति है।"

जे.पी. सिंह ने 'समाज विज्ञान विश्वकोष' में ग्रामीण समाज के बारे में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं– "किसी स्थानीय क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों तथा संस्थाओं के बीच साहचर्य भाव के कारण गठित समुदाय जिसमें अधिकांश व्यक्ति सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और दूसरी सेवाओं का सामूहिक जीवन में उपयोग करते हैं तथा मूल प्रवृत्तियों और व्यवहार में सामान्य एकता होती है ऐसे समुदाय का आकार छोटा, जनसंख्या के घनत्व का कम होना एवं कृषि मुख्य व्यवसाय होता है।

भारतीय सामाजिक संरचनाओं में जाति एक सर्वाधिक प्राचीन संस्था है। आदिकाल से ही भारत में जाति प्रथा का प्रचलन रहा है। पश्चिमी देशों में सामाजिक स्तरीकरण का आधार वर्ग रहा है तो भारत में जाति एवं वर्ण। समाजविदों के मत में जाति हिन्दू सामाजिक संरचना का एक मुख्य आधार रही है, जिससे हिन्दुओं का सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन प्रभावित होता रहा है। हिन्दुओं के सामाजिक जीवन के किसी भी क्षेत्र का अध्ययन बिना जाति के विश्लेषण के अपूर्ण ही रहता है। श्रीमती इरावती कर्वे का भी मत है कि यदि हम भारतीय संस्कृति के तत्वों को समझना चाहते हैं तो जाति–व्यवस्था का अध्ययन अत्यन्त अनिवार्य है। यही कारण है कि इतिहासकारों, भारत–शास्त्रियों, जनगणना–आयुक्तों, समाजशास्त्रियों, मानवशास्त्रियों एवं अन्य लोगों ने इस संदर्भ में समय–समय पर अपने–अपने दृष्टिकोण प्रकट किये हैं।

हमारे सामूहिक इतिहास में विभिन्न कालों में दुनिया भर में विभिन्न प्रकार के ग्राम समुदाय उभरे और अस्तित्व में आए। ये ग्राम समुदाय सामाजिक प्रथाओं, लोक–संस्कृतियों, परंपराओं, अर्थव्यवस्था, मूल्य परंपरा जैसे विभिन्न आयामों के लिहाज से एक–दूसरे से भिन्न होते हैं। इस प्रकार, अमेरिकी गांव जर्मनी के गांव से भिन्न होता है और भारतीय गांव रूस के गांव से भिन्न होता है।

इन अंतरों का विभिन्न समाजशास्त्रियों ने अध्ययन किया है और विभिन्न प्रकार के ग्राम समुदायों की पहचान की है।

प्रकृति से निकटता के कारण उनमें अलौकिक शक्ति के प्रति डर मिश्रित श्रद्धा तथा विश्वास पैदा हो जाना स्वाभाविक है जो धार्मिक नियमों के नियमित पालन के रूप में फलित होता है। स्थानीय देवी–देवताओं, मान्यताओं और अन्य उपासना रीतियों की उपस्थिति के कारण कृषक एवं ग्रामीण समुदाय एक नैतिक समुदाय में परिवर्तित हो जाता है। अतः कृषक एवं ग्रामीण समाज में धर्म, सामाजिक, आर्थिक तथा पारिवारिक क्रियाओं के आधार के साथ–साथ अनौपचारिक नियंत्रण का माध्यम भी बन जाता है।

अशिक्षा जनित भाग्यवादिता इसका प्रमुख कारण है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार गांवों में शिक्षा एवं साक्षरता का प्रतिशत अभी भी अपेक्षाकृत बहुत कम है। ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चे शिक्षा पूरी कर पाएं, इस के लिए और अधिक प्रयास की आवश्यकता है।

टिप्पणी

1.5 मुख्य शब्दावली

- **अवगत** : परिचित।
- **घनिष्ठ** : गहरा।
- **आकार** : आकृति, बनावट।
- **परंपरा** : रिवाज।
- **उपासना** : प्रार्थना, पूजा।
- **प्रयास** : कोशिश, प्रयत्न।
- **प्रतिबंध** : पाबंदी, रोक।

1.6 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. ग्रामीण समाज की परिभाषा दीजिए।
2. लैंगिक भेदभाव से आप क्या समझते हैं?
3. भारत में जाति प्रथा का प्रचलन कब से है?
4. संयुक्त परिवार के मुख्य लाभ क्या हैं?
5. कृषक और ग्रामीण समाज में धर्म का क्या महत्व है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक संरचना के रूप में कृषि एवं कृषक की विवेचना कीजिए।
2. ग्रामीण समाज की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. हरित क्रांति और इसके सामाजिक परिणामों की समीक्षा कीजिए।
4. ग्रामीण परिवार की उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
5. कृषक तथा ग्रामीण समाज में गांव, आवास एवं बस्ती की स्थिति का विश्लेषण कीजिए।

1.7 सहायक पाठ्य सामग्री

MacIver, R.M and C. Page. *Society: An Introductory Analysis*. New York: Macmillan.

Bottmore, T.B. *Sociology — A Guide to Problems and Literature.* Delhi: S. Chand.

Davis, Kingsley. *Human Society.* New York: Macmillan.

Horton, Paul. B, and Chester, L. Hunt, *Sociology.* New York: McGraw-Hill.

Hadden W. Richard. *Sociological Theory — An Introduction to the Classical Tradition.* Canada: Board View Press.

टिप्पणी

Spencer, H. *Study of Sociology*. Michigan: University of Michigan Press

Rao, M.S.A.(Eds), *Urban Sociology in India: Reader and Source Book*. New Delhi: Orient Longman, New Delhi.

Shivaramakrishan, K.C. Amitabh Kundu and B.N. Singh, 2005. *Oxford Hand Book of Urbanisation in India.* New Delhi: Oxford University Press, New Delhi.

Hadden W. Richard. *Sociological Theory — An Introduction to the Classical Tradition.* Canada: Board View Press.

Singh, Y. *Indian Sociology: Social Conditioning and Emerging Concerns*. Delhi: Vistaar.

इकाई 2 उत्पादन विधा और कृषि संबंध पर बहस

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 उत्पादन के तरीके और कृषि संबंधों पर बहस
2.3 किरायेदारी/बटाईदारी भूमि और श्रम
2.4 कृषि कानून और ग्रामीण सामाजिक संरचना
2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

किसी भी वस्तु का उत्पादन विभिन्न साधनों एवं विधियों के संयोग से होता है तथा उत्पादन फलन किसी उत्पादन क्रिया में उत्पादन तथा उत्पत्ति के साधनों का आपसी संबंध है। यह संबंध ही हमें बताता है कि उत्पादन कैसे किया जाए, तथा किस वस्तु का उत्पादन किया जाए तथा कितनी मात्रा में किया जाए, ताकि किसान की आय अधिकतम हो सके और विभिन्न प्रकार की कृषि प्रणालियों जैसे पूंजीवादी, काश्तकारी प्रणाली आदि के गुण–दोष क्या हैं, के विषय में हम जान पाएंगे। फार्म प्रबंध का अभिप्राय क्या है तथा इसकी उपयोगिता क्या है? फार्म बजटिंग के माध्यम से कैसे किसान अपने उत्पादन के लाभ का पूर्वानुमान लगा सकता है, आदि बातों की जानकारी बहुत महत्वपूर्ण होती है।

इस इकाई में उत्पादन विधा तथा कृषि संबंधों का अध्ययन किया गया है तथा किराएदारी, बटाईदारी तथा कृषि कानून आदि की विवेचना की गई है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- उत्पादन फलन की अवधारणा को समझ पाएंगे;
- साधन और उत्पादन के आपसी संबंधों को जान पाएंगे;
- कृषि की विभिन्न प्रणालियों जैसे कि पूंजीवादी, काश्तकारी, पारिवारिक कृषि प्रणाली के गुण–दोषों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- फार्म प्रबंध के अंतर्गत सीमित साधनों के प्रयोग से लाभों को अधिकतम कैसे किया जाए, जान पाएंगे;
- फार्म बजटिंग के द्वारा संभावित लाभों का अनुमान लगा पाएंगे।

2.2 उत्पादन के तरीके और कृषि संबंधों पर बहस

टिप्पणी

प्रत्येक जीवधारी को भोजन की आवश्यकता होती है। भोजन से हमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन तथा खनिज लवण प्राप्त होते हैं, जिनके द्वारा जीवों के शरीर का विकास, वृद्धि तथा स्वास्थ्य वृद्धि होती है। पौधे तथा जंतु दोनों ही हमारे भोजन के प्रमुख स्रोत हैं किंतु अधिकांश भोज्य पदार्थ हमें कृषि एवं पशुपालन से प्राप्त होते हैं। भारत में कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए काफी प्रयास लंबे समय से करते आ रहे हैं क्योंकि भारत की जनसंख्या बहुत अधिक है। भारत देश की जनसंख्या लगभग 1 बिलियन से अधिक है। इसमें लगातार वृद्धि हो रही है। भारत में पहले से ही अत्यधिक स्थान पर खेती होती है। इसलिए कृषि के लिए और अधिक भूमि की उपलब्धता संभव नहीं है। अतः फसल एवं पशुधन के उत्पादक की क्षमता को बढ़ाना आवश्यक है। सन् 2025 में हमारी खाद्यान्न की आवश्यकता 30 करोड़ टन के करीब आंकी गई है। इसे पूरा करने का मतलब है कि हर साल कृषि उत्पादन की 4 प्रतिशत की वृद्धि दर बनाए रखना जो कि इतना सरल नहीं है। इन सभी बातों के संदर्भ में उत्पादन के तरीकों और कृषि संबंधों (Methods of production and agricultural relations) पर विचार करना महत्वपूर्ण हो जाता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही देश का विकास जिन रास्तों पर चल पड़ा, वे असल में प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध शोषण के रास्ते थे। हमने प्रकृति के साथ इतनी छेड़–छाड़ की कि पर्यावरण को एवं संसाधनों को विनाश की सीमा तक बढ़ाया है। एक तरफ जनसंख्या बढ़ रही है दूसरी तरफ कृषि योग्य भूमि का रकबा भी घट रहा है। अर्थव्यवस्था और जनसंख्या दोनों की वृद्धि प्राकृतिक संसाधनों की कीमत पर हो रही है। हमारी वर्तमान प्रणालियां आज ही नहीं कल भी टिकाऊ बनी रहें इसके लिए प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा जरूरी है। कम रकबे में अधिक उत्पादन की रणनीति अपनाई जाए। यह तभी संभव है जब पर्यावरण सुरक्षा, संसाधनों का संरक्षण और उनका तर्कसंगत उपयोग अनुसंधान और विकास की प्रक्रिया के अभिन्न अंग बन जाएं। पर्यावरण संबंधी तमाम समस्याएं हैं जैसे कि ग्रीन हाउस गैसों का भारी जमाव, ओजोन का घटना–बढ़ना और बुनियादी प्राकृतिक संसाधनों के प्रदूषण ने हमारी कृषि व्यवस्था को बदल कर रख दिया। इसके कारण ही बदलती जलवायु, ढहते भू–संसाधन और तबाह होते प्राकृतिक संसाधन पर ही हमारी कृषि टिकी रहती है। मनुष्य ने प्रकृति के साथ छेड़–छाड़ कर संसाधनों को विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया है।

संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन की रिपोर्ट में कहा जा चुका है कि वर्ष 2050 तक दुनिया की कुल जनसंख्या करीब 9.1 अरब के आंकड़ों तक पहुंच सकती है। अभी विश्व की कुल जनसंख्या करीब 7 अरब है। जनसंख्या बढ़ने के साथ खाद्य पदार्थों की मांग दुगनी हो जाएगी। खासकर विकासशील देशों में प्रति व्यक्ति आय बढ़ने से खपत भी बढ़ेगी। इसमें मुख्यतः भारत एवं चीन शामिल हैं। संयुक्त राष्ट्र के अनुमान के अनुसार जलवायु परिवर्तन कृषि योग्य भूमि में कमी, जल संकट आदि के चलते सन् 2050 तक करीब 35 प्रतिशत खाद्यान्न का उत्पादन कम होने की आशंका है। एक तरफ जनसंख्या बढ़ रही है दूसरी ओर कृषि योग्य भूमि का रकबा घट रहा

टिप्पणी

है। उद्योग के विकास और आवासीय परियोजनाओं के लिए खेती की जमीन के उपयोग के चलते पिछले दो दशक में कृषि योग्य भूमि करीब दो प्रतिशत तक घट गई है।

केवल फसल उत्पादन बढ़ाने और उन्हें गोदामों में संचित करने से ही कुपोषण तथा भूख की समस्या का समाधान नहीं हो सकता है। लोगों को अनाज खरीदने के लिए धन की आवश्यकता है। खाद्य सुरक्षा उसके उत्पादन तथा उपलब्धता दोनों पर निर्भर है। भारत में अधिकांश जनसंख्या अपना जीवनयापन के लिए कृषि पर निर्भर है। इसलिए कृषि क्षेत्र में लोगों की आय भी बढ़नी चाहिए जिससे भूख की समस्या का भी समाधान हो सके। संकर प्रजाति एवं अन्य प्रजातियों की फसलों को बढ़ावा दिया जाता है तो पोषक तत्वों के असंतुलित और कीट प्रबंधन की तकनकी अपनाई जाती है जिससे भूमि अपनी उर्वरा शक्ति खोती जा रही है। अधिक फसल देने वाली फसलों और संकरों के प्रचलन के बाद अधिक पैदावार एवं मुनाफे की होड़ ऐसी बढ़ी है कि हमारा ध्यान इस बात पर गया ही नहीं कि यह प्रणाली कब तक चल पाएगी। इसी का नतीजा है कि ये सारी प्रणालियां जवाब दे चुकी हैं और उत्पादकता के स्तर को घटाने वाली नई–नई समस्याएं उभरने लगी हैं। इस तरह पोषक तत्वों की दक्षता में कमी, मिट्टी में अनेक पोषक तत्वों का असंतुलन, मिट्टी के भौतिक व रासायनिक गुणों में प्रतिकूल परिवर्तन, पानी का दुरुपयोग, मिट्टी और पानी का प्रदूषण और कीट व्याधिक रोग, खरपतवार की समस्या आती है। मौसम की बदलती हुई चाल के अनुरूप तकनीकें विकसित करने के लिए अनुसंधान की नई दिशाएं गढ़नी होंगी तभी देश के उत्पादन में स्थायित्व लाया जा सकेगा। अनुसंधान की नई दिशाएं होगी भूमि, जलवायु ओर जल के संसाधनों का पूरी तरह सर्वेक्षण करके भूमि का अनुकूल सदुपयोग करना, कृषि जलवायु संबंधी सलाहकार सेवाओं को बेहतर रूप देने के लिए फसल, मौसम, मिट्टी की गहरी समझ पैदा करना, वर्षा जल की बचत और समेकित पोषण प्रबंध। इन सबके लिए सतत प्रयास की आवश्यकता है। साथ ही मिश्रित खेती, अंतरा फसलीकरण तथा संघटित कृषि प्रणालियों को अपनाना चाहिए। उदाहरण के लिए पशुधन, कुक्कुट पालन, मत्स्य पालन, मधुमक्खी पालन को बढ़ावा देना चाहिए।

विभिन्न फसलों के लिए विभिन्न जलवायु संबंधी परिस्थितियां, तापमान तथा दीप्तिकाल (Photo Period) की आवश्यकता होती है जिससे उनकी समुचित वृद्धि हो और वे अपना जीवन चक्र पूरा कर सकें। कुछ ऐसी फसलें जिन्हें हम वर्षा ऋतु में उगाते हैं, वे खरीफ फसलें कहलाती हैं। रबी की फसल मुख्यतः नवंबर से अप्रैल तक लगाई जाती है जिसमें धान, सोयाबीन, अरहर, मक्का, मूंग, उड़द आती हैं। गेहूं, चना, मटर, सरसों तथा अलसी रबी की फसलें हैं।

फसल उत्पादन में सुधार की प्रक्रिया में प्रयुक्त गतिविधि को तीन वर्गों में बांटा गया है–

- फसल की किस्मों में सुधार (Improvement in Crop Varieties)
- फसल उत्पादन प्रबंधन (Crop Production Management)
- फसल सुरक्षा प्रबंधन (Crop Protection Management)

1. फसलों की किस्मों में सुधार

फसलों के अच्छे उत्पादन के लिए अच्छी किस्म का चयन (Improved Crop Varieties) करना जरूरी होता है। फसल की किस्मों के लिए विभिन्न उपयोगी गुण, जैसे रोग

टिप्पणी

प्रतिरोधक क्षमता, उर्वरक के प्रति अनुरूपता, उत्पादन की गुणवत्ता और उच्च उत्पादन का चयन प्रजनन द्वारा कर सकते हैं। फसलों की किस्मों को संकरण विधि द्वारा आनुवंशिक गुण डालकर उन्नत किस्म बनाई जाती है। फसलों में ऐच्छिक गुण डाले जा सकते हैं। यह संकरण अंतराकिस्मीय (विभिन्न किस्मों में) अंतरा स्पीशीज (एक ही जीन्स की दो विभिन्न किस्मों में) अथवा अंतरावंशीय (विभिन्न जेनरेशन) में हो सकता है। इसके फलस्वरूप आनुवंशकीय रूपांतरित फसल प्राप्त होती है।

किन्तु नये प्रभेदों को अपनाने से पहले यह आवश्यक है कि फसलों की किस्म विभिन्न परिस्थितियों में, जो विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग होती है, अच्छा उत्पादन दे सके। बीच उसी किस्म के होने चाहिए जो अनुकूल परिस्थितियों में अंकुरित हो सकें।

कृषि प्रणालियों तथा फसल उत्पादन मौसम, मिट्टी की गुणवत्ता तथा पानी की उपलब्धता पर निर्भर करता है। चूकि मौसम का पूर्वानुमान लगाना कठिन है इसलिए ऐसी अनेक किस्में अधिक उपयोगी हैं जो विविध जलवायु परिस्थितियों में भी उग सके। किस्मों में सुधार के लिए निम्न कारक हैं–

- **उच्च उत्पादन**– प्रति एकड़ फसल की उत्पादकता बढ़ाना (Increase Productivity)।
- **उन्नत किस्में**– फसल उत्पादन की गुणवत्ता (Improved Crop Varieties) प्रत्येक फसल हेतु अलग होती है। दाल में प्रोटीन की गुणवत्ता, तिलहन में तेल की गुणवत्ता और फल तथा सब्जियों का संरक्षण जरूरी है।
- **जैविक तथा अजैविक निरोधकता**– जैविक (रोग, कीट तथा नेमेरोड) तथा अजैविक (सूखा, क्षारता, जलाक्रांति, गरमी, ठंड तथा पाला (Biotic and abiotic resistance)) इन परिस्थितियों में फसल का उत्पादन कम हो सकता है। इस परिस्थितियों को सहन कर सकने वाली किस्में फसल उत्पादन में सुधार ला सकती है।
- **परिपक्वता समय में परिवर्तन**– फसल के उगने से लेकर कटाई तक कम से कम समय लगना (Least maturity period of Crops), आर्थिक रूप से अच्छा है। इससे किसान प्रतिवर्ष अपने खेतों में कई फसलें लगा सकता है। कम समय होने के कारण फसल उत्पादन में धन भी कम खर्च होता है।
- **व्यापक अनुकूलता**– व्यापक अनुकूलता (Wide Compatibility) वाली किस्मों का विकास करना विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों में फसल उत्पादन को स्थायी करने में सहायक होगा। एक ही किस्म को विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न जलवायु में उगाया जा सकता है।

2. फसल उत्पादन प्रबंधन

कृषि प्रधान देश भारत में कृषि छोटे–छोटे खेतों से लेकर बहुत बड़े फार्मो तक में होती है। बिना लागत उत्पादन, अल्प लागत उत्पादन तथा अधिक लागत उत्पादन प्रणालियां इसमें सम्मिलित हैं। कृषि के अंतर्गत फसल उत्पादन प्रबंधन (Crop production management) अतिमहत्वपूर्ण पक्ष है।

टिप्पणी

फसल की वृद्धि के लिए पोषक पदार्थों की आवश्यकता होती है। पौधों को पोषक पदार्थ हवा, पानी तथा मिट्टी से प्राप्त होते हैं। हवा से कार्बन तथा ऑक्सीजन, पानी से हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन एवं शेष अन्य पोषक पदार्थ मिट्टी से प्राप्त होते हैं। इन पोषकों की कमी के कारण पौधों की शारीरिक प्रक्रियाओं सहित जनन, वृद्धि तथा रोगों के प्रति प्रभाव पड़ता है। अधिक उत्पादन के लिए मिट्टी में खाद तथा उर्वरक के रूप में इन पोषकों को मिलाना जरूरी है। उर्वरक में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा अधिक होती है तथा यह मिट्टी को अल्प मात्रा में पोषक प्रदान करते हैं। उर्वरक में कार्बनिक पदार्थों की अधिक मात्रा मिट्टी की संरचना में सुधार करती है। उर्वरक बनाने में हम जैविक कचरे का उपयोग करते हैं। इससे उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग की आवश्यकता नहीं होगी। इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण में सहयोग मिलेगा। उर्वरकों को निम्न वर्गों में विभाजित किया जाता है–

1. **कम्पोस्ट तथा वर्मी कम्पोस्ट** : कम्पोस्टीकरण प्रक्रिया में कृषि अपशिष्ट पदार्थ जैसे– गोबर, सब्जी के छिलके एवं कचरा, जानवरों का परित्यक्त चारा, घरेलू कचरा, सीवेज कचरा, खरपतवार आदि को गड्ढे में डाला जाता है। इस प्रकार बैक्टीरिया द्वारा विघटित कार्बनिक अवशेषों को कम्पोस्ट (Compost) खाद कहते हैं। यदि कम्पोस्ट को केचुओं द्वारा पौधों तथा जानवरों के अपशिष्ट पदार्थों के शीघ्र विघटन प्रक्रिया द्वारा बनाया जाता है तो इसे वर्मी कम्पोस्ट (Vermi Compost) कहते हैं।
2. **हरी खाद** : फसल उगाने से पहले खेतों में कुछ पौधों जैसे– पटसन, मूंग अथवा अन्य फसलें आदि उगा लेते हैं। तत्पश्चात उन पर हल चलाकर खेत की मिट्टी में मिला देते हैं। ये हरी खाद (Green Manure) में बदल जाते हैं जो नाइट्रोजन तथा फॉसफोरस से परिपूर्ण होते हैं जो कि पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक है। उर्वरक का उपयोग बड़े ध्यान से करना चाहिए।

अधिक उत्पादन करने के लिए किसान विभिन्न विधियों का प्रयोग करते हैं। मिश्रित फसल में दो अथवा दो से अधिक फसलों को एक साथ ही एक खेती पर लगाते हैं। जैसे कि– गेहूं–चना अथवा गेहूं–सरसों अथवा मूंगफली–सूर्यमुखी। इससे फसल उत्पादन की संभावना ज्यादा बनती है।

3. फसल सुरक्षा प्रबंधन

खेतों में फसलों को खर–पतवार, कीटों से तथा रोगों से सुरक्षा देनी होती है नहीं तो यह फसलों को काफी नुकसान पहुंचाते हैं। इस प्रक्रिया के तहत अपनाई जाने वाली सभी विधियां फसल सुरक्षा प्रबंधन (Crop protection management) के अंतर्गत आती हैं। खर–पतवार कृषि योग्य भूमि में अनावश्यक पौधे जैसे– गोखक, गाजर घास, मोथ आदि होते हैं। ये भोजन, स्थान तथा प्रकाश के लिए संघर्ष करते हैं और भूमि के पोषक तत्व भी ले लेते हैं जिससे फसलों की वृद्धि रुक जाती है। कई प्रकार के कीट पौधे पर आक्रमण करते हैं। ये मूल तने तथा पत्तियों को काट देते हैं। उनका कोशिकीय रस चूस लेते हैं। तने तथा फलों में छिद्र कर देते हैं जिससे फसल का उत्पादन प्रभावित होता है।

पौधें में रोग बैक्टीरिया, कवक तथा वाइरस जैसे कारकों द्वारा होता है। ये मिट्टी, जल तथा हवा में रहते हैं और इन्हीं माध्यमों से पौधों में फैलते हैं।

टिप्पणी

खर–पतवार, कीट तथा रोगों पर नियंत्रण करके उत्पादन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। इसमें सर्वाधिक प्रचलित विधि पीड़कनाशी रसायन का उपयोग है। इसके अंतर्गत शाकनाशी, कीटनाशी तथा कवकनाशी आते हैं। इनका छिड़काव पौधों पर किया जाता है जिससे पौधों को बचाया जाता है किंतु इससे बहुत सी समस्याएं उत्पन्न हो जाती है। कई पौधे जानवरों के खाने योग्य नहीं रह पाते विषैले हो जाते हैं।

यांत्रिक विधि द्वारा खर–पतवारों को हटाया जाता है। इस प्रकार से पौधों को सुरक्षित रखकर उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. वर्ष 2025 में हमारी खाद्यान्न आवश्यकता लगभग कितने करोड़ टन आंकी गई है?

   (क) 60 (ख) 50

   (ग) 40 (घ) 30

2. फसल उत्पादन में सुधार की प्रक्रिया में प्रयुक्त गतिविधि को कितने वर्गों में बांटा गया है?

   (क) तीन (ख) चार

   (ग) पांच (घ) छह

2.3 किरायेदारी/बटाईदारी भूमि और श्रम

सभी कृषक भूमि के मालिक नहीं होते बल्कि ऐसे भी कृषक होते हैं जो किसी और की भूमि पर कुछ शर्तों के साथ श्रम करते हैं तथा फसल का एक निश्चित भाग प्राप्त करते हैं। कृषि श्रम के सामान्यतः दो स्वरूप प्रचलित हैं– किरायेदारी कृषि प्रणाली (Tenancy Farming System) तथा बटाईदारी कृषि प्रणाली (Sharecropping Farming System)।

किरायेदारी कृषि प्रणाली में किसान अपने स्वयं के औजारों (हल, बैल व अन्य सामान्य कृषि यंत्र) एवं बीज, खाद कीटनाशकों का प्रयोग कर मालिक की (किसी अन्य की) भूमि पर श्रम (खेती) करता है और शर्त अनुसार एक पूर्व निश्चित अनुपात में फसल का विभाजन होता है। इस प्रणाली में कृषक का हिस्सा कुछ अधिक भी हो सकता है।

बटाईदारी कृषि प्रणाली में कृषक एवं उसका परिवार केवल अपना श्रम प्रदान करते हैं अथवा स्थिति अनुसार भूमि मालिक के साथ कृषि में प्रयुक्त संसाधनों एवं खर्च का भी बराबर अनुपात में बंटवारा करते हैं और फसल का भी आधा–आधा भाग (या अन्य पूर्व निर्धारित भाग) प्राप्त करते हैं।

बटाईदार पूरी तरह से इनपुट आपूर्ति और उपकरणों के लिए भूस्वामियों पर निर्भर होते हैं, जबकि काश्तकार किसान आमतौर पर कृषि हेतु आवश्यक सामग्री के मालिक होते हैं तथा जमींदार को खेत और एक घर के किराए का भुगतान करते हैं जिससे वे मालिकों पर कम निर्भर होते हैं।

टिप्पणी

भूमि जोत के अनुसार भारत में किसानों का वर्गीकरण

भूमिहीन किसान (Landless Farmer): ऐसे किसान जिनकी स्वयं की कोई कृषि भूमि न हो जो किसी अन्य की कृषि भूमि पर श्रम (Labour) करते हों।

सीमांत किसान (Marginal Farmer): ऐसे किसान जो 1 हेक्टयेर या उससे कम कृषि भूमि के स्वामी हों।

छोटा किसान (Small Farmer): ऐसे किसान जो 1 से 2 हेक्टेयर कृषि भूमि के मालिक हों।

अर्द्ध–मध्यम किसान (Semi-medium Farmer): ऐसे किसान जो 2 से 4 हेक्टेयर कृषि भूमि के स्वामी हों।

मध्यम किसान (Medium Farmer): ऐसे किसान जो 4 से 6 हेक्टेयर कृषि भूमि के मालिक हों।

बड़ा किसान (Large Farmer): ऐसे किसान जो 6 हेक्टेयर से अधिक कृषि भूमि के स्वामी हों।

भारत वर्ष में काश्तकार खेती एक कृषि उत्पादन प्रणाली है जिसमें एक किरायेदार किसान वह होता है जो एक जमींदार के स्वामित्व वाली भूमि पर श्रम करता है। जमींदार अपनी भूमि का योगदान करता है। जबकि किसान अपने श्रम के साथ–साथ पूंजी और प्रबंधन का अलग–अलग मात्रा में योगदान करता है। अनुबंध के आधार पर किरायेदार मालिक को उत्पाद के लिए निश्चित हिस्से में नगद या फसल उत्पादन के भाग के रूप में भुगतान करता है।

भारत की जनगणना के अनुसार कृषि श्रमिकों का कुल ग्रामीण जनसंख्या से अनुपात 1951 में 32.6% तथा 2001 में 31.% रहा था। यद्यपि कुल जनसंख्या में कृषि श्रमिकों का प्रतिशत इस अवधि में 20% तक नीचे आया है किंतु ग्रामीण जनसंख्या में कृषि श्रमिकों का अनुपात लगभग वैसा ही रहा। यह भारत की बढ़ती जनसंख्या, बढ़ता हुआ शहरीकरण, कृषि संबंधी रोजगार विस्तार की गति, कम से कम शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के लिए कृषि संबंधी रोजगार का स्वरूप आदि के कारण ही संभव हुआ है।

जनगणना कृषि श्रमिकों को दो समूहों में वर्गीकृत करती है अर्थात किसान और कृषि श्रमिक। 2 हेक्टेयर से कम कृषि भूमि के स्वामित्व के किसानों को सीमांत किसान कहा गया है तथा 1 से 2 हेक्टेयर के स्वामित्व वाली कृषि भूमि के व्यक्ति को छोटे किसान कहा गया है। इस प्रकार लगभग 83.3% तक छोटे किसान हैं। चूंकि सीमांत एवं छोटे किसानों के पास कुछ भूमि होती है किंतु उनकी दशा संकटपूर्ण होती है। उन्हें अपने जीवन निर्वाह के लिए मजदूरी या रोजगार पर निर्भर होना पड़ता है।

जनगणना 2011 द्वारा उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार कृषि श्रमिक कुल कृषि श्रमिकों का 46% हैं। इसके अलावा राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) के अनुसार 2004–05 में औसत कृषि श्रमिकों ने रु. 40.00 की औसत दैनिक मजदूरी अर्थात लगभग 700.00 रुपये प्रतिव्यक्ति की मासिक आय से वर्ष में लगभग 209 दिन काम पाया था। किंतु गरीबी रेखा रु. 1800 प्रतिमाह थी अतः एक कृषि परिवार के

टिप्पणी

न्यूनतम 3 सदस्यों के लिए रोजगार पाना अनिवार्य था, वह भी वर्ष में कम से कम 200 दिनों का, ताकि कृषि श्रमिक परिवार अपने आपको गरीबी रेखा के ऊपर बनाए रखने में समर्थ हो। किंतु बहुत से कृषि श्रमिक कई दिनों तक रोजगार से वंचित रहते थे जिससे कृषि परिवार गरीबी रेखा के नीचे अपना जीवन निर्वाह करते थे।

कृषि कार्य में लगे हुए ग्रामीण परिवारों में कृषि श्रमिक परिवारों का गरीबी अनुपात 46.4% उच्चतस्तर पर था। विशेष रूप से किसानों के लिए अनुपात 21.5% काफी कम था किंतु कृषि परिवार के लिए गरीबी अनुपात से उच्चतर भूमि जोतों के साथ कमी आई है। कृषक के भूमिहीन होने के भिन्न–भिन्न वर्गों के गरीबी अनुपात का स्तर तद्नुरूपी 22% था इसमें बड़े किसान 9.8% थे। इस प्रकार परिवारों की दोनों श्रेणियों अर्थात भूमिहीन और भूमिधारक में यह अनुपात 15.2% था। यह कृषि श्रमिक परिवारों के लिए तीन गुना से भी अधिक था। इस प्रकार भूमि जोतों की सीमा भूमि जोतों के आकार द्वारा परिभाषित कृषकों के सभी वर्गों में गरीबी स्तर निर्धारित करने में मुख्य कारक था। इससे स्पष्ट था कि खेती करने वाले कृषकों को स्वामित्व अधिकार प्रदान करने के लिए भूमि सुधार उपायों का प्रभावकारी क्रियान्वयन तथा खेती के लिए आवश्यक विस्तार सेवाओं सहित आदानों की आसान सुलभता बनाने के लिए नीति फोकस करना महत्वपूर्ण है। कृषि श्रमिक अपनी कम साक्षरता और परिणामतः अल्प दक्षता के कारण लगभग पूर्णतः असंगठित या अनौपचारिक सेक्टर श्रमिक बल के अंश होते हैं। कृषि श्रमिकों की इस विशेषता का प्रत्यक्ष परिणाम यह होता है कि उनमें अपने विधिसम्मत अधिकारों के संरक्षण की शक्ति का अभाव होता है। इसमें वे न्यूनतम मजदूरी अधिनियम द्वारा गारंटीशुदा नियत न्यूनतम मजदूरी पाने से भी वंचित रह जाते हैं। कृषि श्रमिकों के इस लक्षण ने राष्ट्रीय सांख्यिकी आयोग (2012) को यह प्रेक्षण करने हेतु बाध्य किया कि भारत के संदर्भ में कृषि कार्यों में लगे हुए लगभग 52% कृषि श्रमिकों को NSSO के रोजगार–बेरोजगार सर्वेक्षण से अलग रखा गया है और विशेषकर अनौपचारिक या असंगठित सेक्टरों की ऐसी विशाल संख्या की उपस्थिति इस प्रकार, व्यक्ति तथा राष्ट्र दोनों के लिए आर्थिक क्षति है। सैद्धांतिक रूप से बल के औपचारिकीकरण की मात्रा ऐसे विकास क्रम से घटने की आशा की जाती है जिसके लिए अधिक पूंजीगत निवेश आवश्यक हो। इसके लिए कृषि में छोटे और सीमांत कृषिकों के लिए पूंजी की उपलब्धता होनी आवश्यक है जिसमें वे प्राप्य प्रौद्योगिकी प्रगति को अधिकाधिक अपनाकर अपनी भूमि पर लाभकारी खेती कर सकें साथ–साथ नीति प्रयासों पर फोकस कर विस्तृत प्रशिक्षण से कृषि में लगे हुए श्रमिकों की प्रौद्योगिकी अंगीकरण क्षमता बढ़ाने पर जोर होना चाहिए।

ब्रिटिश राज में किसानों के पास उन जमीनों का स्वामित्व नहीं था जिन पर वे खेती करते थे। जमीन का मालिकाना हक जमींदारों व जागीरदारों के पास होता था (During British Raj, Ownership of Agricultural Land was only with Zamindars and Jagirdars)। इस कारण स्वतंत्र भारत में सरकार के सामने कई गंभीर मुद्दे उत्पन्न हुए जो चुनौती बन कर खड़े हो गए थे। भूमि पर मध्यस्थों का प्रभाव और कुछ लोगों का स्वामित्व था जिनको स्वयं कृषि कार्य करने में कोई रुचि नहीं थी। भूमि को पट्टे पर देना एक सामान्य घटना थी। भूमि रिकॉर्ड की दशा खराब थी। कई मुकदमे कोर्ट में

टिप्पणी

चल रहे थे। बहुत छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित भारतीय कृषि भूमि, सफल वाणिज्यिक खेती करने के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा थी। जिसके परिणामस्वरूप सीमा एवं भूमि विवादों के रूप में भूमि, पूंजी तथा श्रम का अकुशल उपयोग हुआ।

भूमि पर आश्रित लोगों की संख्या बढ़ने से कृषि उत्पादन में भारी गिरावट आई क्योंकि भूमि सीमित थी। इस गिरावट के लिए भारतीय कृषि भूमि की अनुवर्रता और कृषक की अकुशलता को उत्तरदायी ठहराया गया। किंतु वास्तव में कृषि उत्पादन की कमी का कारण भूमि की अनुर्वरता अथवा कृषक की अकुशलता न होकर कृषि पर बढ़ता हुआ कामगारों का बोझ, कृषि हेतु सिंचाई के साधनों का अभाव तथा किसान के पास पूंजी का अभाव होना था। जैसे–जैसे सत्ता का विस्तार होता गया सरकार का खर्च बढ़ता गया और लगान में वृद्धि के कारण किसान खेती के कार्य से अलग होते गए। खेती पिछड़ने लगी। देश की आर्थिक स्थिति बिगड़ती गई। लगान की अधिकता तथा कृषि उत्पादन के महंगेपन ने किसानों को ऋण के भारी बोझ तले दबा दिया जिससे वह कभी नहीं उबर सका। उसने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऋण का सहारा लिया। लगान की बढ़ती दर तथा किसान की सामाजिक आवश्यकताओं के कारण किसान की ऋण ग्रस्तता बढ़ती गई और किसान की जमीन उसके हाथ से निकल कर साहूकारों, जमींदारों के पास जाने लगी। हालांकि सरकार ने इस प्रकार के हस्तांतरण को रोकने के लिए कुछ कानून बनाए जैसे बंगाल काश्तकारी अधिनियम–1859, मद्रास काश्तकारी अधिनियम 1889, दक्कन कृषि सहायता अधिनियम, मध्यप्रदेश काश्तकारी अधिनियम आदि। ये कानून अधिक प्रभावी सिद्ध नहीं हो पाए और किसानों की स्थिति में कोई सुधार नहीं आया। ब्रिटिश सरकार ने कृषि का वाणिज्यीकरण (To grow only Commerical Crops like– Indigo, Jute, Cotton etc.) कर दिया अर्थात उन फसलों का उत्पादन हो जिनका प्रयोग बाजार विनिमय के लिए हो सके, चाहे कृषक के दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति न हो। इस प्रकार कृषि के मूलभूत स्वरूप में परिवर्तन करके कुछ खास किस्मों को जैसे बंगाल में केवल जूट की खेती, पंजाब में केवल गेहूं और कपास की खेती पर अधिक बल दिया गया। और बनारस, बिहार, बंगाल, मध्य भारत तथा मालवा में अफीम के व्यापार के लिए पोस्त की खेती को बढ़ावा मिला।

कृषि का वाणिज्यीकरण होने से भारतीय किसानों एवं गांवों की तस्वीर बदलने लगी। भारत के गांव तेजी से निर्धन होने लगे। किसान का पूरा परिवार रात–दिन पश्रिम करने के बाद भी ऋण लेकर लगान चुकाता तथा चारों ओर निर्धनता और भुखमरी का बोलबाला था। किसान बड़ी संख्या में सूदखोरों एवं साहूकारों के चंगुल में फंस गया था।

कृषि वाणिज्यीकरण के कुछ प्रमुख प्रभाव इस प्रकार हैं–

1. **गांव में पूंजी की आवश्यकता**– कृषि के वाणिज्यीकरण के कारण भारतीय गांवों की वस्तु विनिमय क्षमता तथा आत्मनिर्भरता समाप्त हो गई तथा गांवों में दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूंजी की अनिवार्यता हो गई।
2. **कृषकों की निर्धनता में वृद्धि**– कृषि के वाणिज्यीकरण से व्यापारी वर्ग तथा ईस्ट इंडिया कंपनी को बहुत लाभ होने लगा किंतु किसानों की निर्धनता में वृद्धि

टिप्पणी

हुई। इसका मुख्य कारण व्यापारियों की छल–कपट की नीति थी। वे खेत में खड़ी फसलों को सस्ते दामों में खरीद लेते थे। किसान अपनी तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, फसल मंडी में न ले जाकर खेत में ही बेच देता था। ऐसे सोदे में व्यापारी फसल की बहुत कम कीमत तय करता था इस कारण किसानों की निर्धनता बढ़ती चली गई।

3. **आकालों की भयावहता में वृद्धि**– कृषि के वाणिज्यीकरण के कारण फसलें औद्योगिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उगाई जाती थीं। जूट एवं कपास की खेती में वृद्धि होने से खाद्यान्नों की भारी कमी हो गई और अकाल पड़ने लगे। किसान अपने परिवार के लालन–पालन के लिए अपनी जमीनों को बेचने लगा। खाद्यान्न के दाम इतने अधिक बढ़ाये गए कि लोगों के लिए खरीदना असंभव हो गया। कई लोग भूख से, कई महामारी से तड़प–तड़प कर मर गए।

4. **कृषकों में विद्रोह**– नगदी फसलों की खेती के कारण किसानों का शहरों में आना–जाना बढ़ गया, जिसके कारण आई जागरूकता से किसानों ने अपने शोषणकारियों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। कृषक विद्रोह बढ़ने लगे। 1857 में दक्कन में मराठा किसानों ने साहूकारों के विरुद्ध बगावत की। 1876 में बंगाल में बटाईदारों का आर्थिक संकट बढ़ने पर उन्होंने लगान देने से मना कर दिया। 1885 में बंगाल काश्तकारी अधिनियम पारित किया गया।

5. **नवीन आर्थिक–सामाजिक वर्गों का उदय**– ब्रिटिश सरकार ने भारतीय सामंती व्यवस्था को समाप्त करके जमींदार, छोटे काश्तकार, खेतिहर मजदूर और नवीन आर्थिक सामाजिक वर्गों को जन्म दिया। नई लगान व्यवस्था ने भी भारतीय ग्रामीण सामाजिक संबंधों पर गहरा प्रभाव डाला। परंपरागत रूप से भारतीय ग्रामीण समुदाय के सदस्यों में परस्पर संबंधों का निर्धारण जातिगत संबंधों, धार्मिक आधार, परंपरा या रीति–रिवाज पर आधारित था। ब्रिटिश कानूनों तथा आर्थिक नीतियों ने परंपरागत, सामाजिक व जातीय संबंधों को शिथिल कर दिया। ब्रिटिश आर्थिक नीति के फलस्वरूप जो सामाजिक–आर्थिक वर्ग अस्तित्व में आए उनमें सबसे नीची सीढ़ी पर निम्न वर्ग था।

6. **भूमिहीन एवं श्रमिक वर्ग का उदय**– ब्रिटिश कृषि नीति, आर्थिक नीति व लगान प्रणाली के फलस्वरूप छोटे किसानों की जमीन उनके अधिकार से निकल कर साहूकारों के पास पहुंचने लगी जिससे भारतीय किसान भूमिहीन होकर खेतिहर श्रमिकों में बदलने लगे। खेतिहर श्रमिकों की संख्या लगातार बढ़ने लगी जिससे समस्त खेतिहर जनसंख्या के लगभग आधे लोग इसी वर्ग में आ गए। 1875 ई. में देश में भूमिहीन कृषकों की संख्या 80 लाख थी जो 1901 ई. में बढ़कर 350 लाख तथा 1921 ई. में 390 लाख हो गई।

7. **विश्वव्यापी मंदी की मार**– भारत का किसान कृषि के वाणिज्यीकरण से पहले विश्वव्यापी मंदियों के दौर से बेअसर रहता था किंतु अब उनकी प्रतिस्पर्धा विश्व भर के किसानों से थी। इसलिए उसका भी मंदी की चपेट में आना स्वाभाविक था। भारत में 1928–29 की मंदी के दौर से पहले 10 अरब 34 करोड़ रुपये मूल्य की पैदावार होती थी, जो 1933 ई. में घट कर केवल 4 अरब 75 करोड़ रुपये मूल्य की रह गई।

टिप्पणी

NSSO का अनुमान है कि भारत में 2004–2005 में कुल 256 मिलियन कृषि कामगारों में कृषि श्रमिकों की संख्या 34% (87 मिलियन) है। कृषि श्रमिकों को कार्य की घटिया दशा में विभेद किया जाता है और परिणामतः ये घोर गरीबी से ग्रस्त होते हैं। इस दशा में सरकार ने उनकी मजदूरी और स्वरोजगार अवसर बढ़ाने के लिए समय–समय पर कई कार्यक्रम प्रारंभ किए। समय–समय पर संचालित मूल्यांकन अध्ययनों ने उनकी सफलता तथा श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए कई नए उपाय किए। स्वतंत्रता के बाद पिछले छह दशकों में शुरू किए गए इन उपायों के बावजूद अभी भी कृषि कामगार पर्याप्त काम तलाशने तथा हाथ के काम के लिए सांविधिक न्यूनतम मजदूरी प्राप्त करने की मजबूरी झेल रहे हैं।

कृषि श्रमिकों के प्रकार

कृषि श्रमिकों को निम्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **पारिवारिक श्रमिक**– इस श्रेणी में वे छोटे कृषक होते हैं जो आर्थिक रूप से कमजोर होते हैं और मजदूरी देने में असमर्थ होते हैं। ये छोटे किसान बुआई, निराई व कटाई के सीजन में मजदूरी पर काम करते हैं। जब किसी कार्य को जल्दी पूरा करना पड़ता है और श्रमिकों की अधिक संख्या में आवश्यकता होती है तो ऐसे समय में पारिवारिक श्रमिक भी मजदूरी करने लगते हैं।
2. **मजदूरी पर काम करने वाले श्रमिक**– इस श्रेणी को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं– संगठित मजदूर व संलग्न श्रमिक। संलग्न श्रमिक कुछ समय या पूरे समय के लिए मालिकों से अनुबंध पर काम करते हैं जबकि आकस्मिक श्रमिक जरूरत पड़ने पर काम पर आते हैं। आकस्मिक श्रमिक दैनिक मजदूर होते हैं। ये कम समय के लिए मजदूरी करते हैं। इनका अनुबंध मालिकों के साथ मौखिक होता है। यह अनुबंध तिमाही, छमाही व वार्षिक होता है। मजदूरी पर काम करने वाले श्रमिकों को मिलनेवाला वेतन आकस्मिक श्रमिकों से कम होता है।
3. **बंधुआ मजदूर**– भारत में इस श्रेणी में आने वाले श्रमिक सबसे निचले पायदान पर आते हैं। इसके अंतर्गत कोई व्यक्ति अपने कर्ज को अदा करने के लिए किसी परिवार के सदस्य या किसी मालिक का बंधक बनकर काम करता है। वह व्यक्ति तब तक उस घर में श्रमिक के तौर पर काम करता है जब तक उसका कर्ज अदा न हो जाए।

कृषि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि के कारण

1. **जनसंख्या में वृद्धि** : जनसंख्या बढ़ने के कारण कृषि क्षेत्र पर दबाव बढ़ा है। इसकी सबसे बड़ी वजह निर्भर व्यक्तियों की संख्या में भारी वृद्धि होना है जबकि जमीन का क्षेत्रफल वही रहा है।
2. **कुटीर उद्योग व ग्रामीण हस्तकला शिल्प की कमी** : अंग्रेजों के शासन काल के दौरान भारत में कुटीर उद्योग व ग्रामीण हस्तशिल्प कला में भारी गिरावट आई। इसके बावजूद आधुनिक उद्योग धंधे इसका स्थान नहीं ले पाए। इसलिए ऐसे श्रमिकों को कृषि क्षेत्र में आना पड़ा।

टिप्पणी

3. **अलाभकारी कंपनी** : कृषि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि का यह भी सबसे बड़ा कारण रहा है। इसलिए ऐसे श्रमिकों को कृषि क्षेत्र में आना पड़ा।

4. **कर्ज का बोझ बढ़ना** : छोटे किसान साहूकारों के कर्ज में फंसते चले गए, जिसके कारण उनकी जमीन उनके हाथ से चली गई। इस तरह वे साहूकारों के चंगुल से बाहर नहीं आ सके और उनको मजबूरन कृषि श्रमिक बनना पड़ा।

5. **मुद्रा का प्रचलन व विनिमय का बढ़ना**– मुद्रा का प्रचलन और विनिमय दरों का बढ़ना भी कृषि श्रमिकों की संख्या में बढ़ोत्तरी का कारण है। पैसों के लिए लोग जमींदारों की जमीन पर कार्य करते हैं जिसके बदले उन्हें पैसा मिलता था क्योंकि नई कृषि एवं आर्थिक नीतियों के कारण परंपरागत वस्तु विनिमय प्रणाली का प्रचलन बहुत ही कम हो गया था।

अपनी प्रगति जांचिए

3. जनगणना कृषि श्रमिकों को कितने समूहों में वर्गीकृत करती है?

(क) चार (ख) तीन

(ग) दो (घ) पांच

4. बंगाल काश्तकारी अधिनियम कब पारित किया गया?

(क) 1885 में (ख) 1880 में

(ग) 1985 में (घ) 1890 में

2.4 कृषि कानून और ग्रामीण सामाजिक संरचना

भारत के सामाजिक–आर्थिक ढांचे में कृषि की महत्ता को इस तथ्य से समझा जा सकता है कि देश की अधिकांश जनसंख्या की आजीविका कृषि पर निर्भर है। कुल सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में कृषि क्षेत्र का योगदान केवल 18 प्रतिशत है जबकि 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या इस पर निर्भर है जिसके फलस्वरूप कृषि क्षेत्र में प्रति व्यक्ति आय कम है। इससे यह भी पता चलता है कि कृषि क्षेत्र और गैर–कृषि क्षेत्र में प्रति व्यक्ति आय के बीच बड़ी असमानता है। अतः उन मसलों का समाधान करना आवश्यक है, जो किसानों की आय के स्तरों पर प्रभाव डालते हैं।

विगत में कृषि अनुसंधान, शिक्षा और विस्तार को मजबूत बनाने के साथ ही बीज, खाद और बिजली जैसे जरूरी आगतों की सामयिक और पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए अनेक कदम उठाए गए। इसके अतिरिक्त, अनेक बड़ी और लघु सिंचाई परियोजनाएं भी कार्यान्वित की गई। 1960 के दशक के प्रारंभ में उत्पादकता बढ़ाने और किसानों को लाभ पहुंचाने के लिए कृषि विकास हेतु एक एकीकृत कार्यक्रम आरंभ किया गया था।

वर्ष 2000 के दौरान भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय कृषि नीति अनुमोदित की गई थी जिसका लक्ष्य प्राकृतिक संसाधनों के प्रभावी उपयोग और अन्य उपायों के माध्यम से एक दीर्घावधिक आधार पर कृषि में 4 प्रतिशत अधिक वार्षिक वृद्धि दर हासिल करना

टिप्पणी

था। तथापि, दसवीं योजना (2002–03 से 2006–07) के दौरान प्राप्त वार्षिक वृद्धि दर औसतन केवल 2.3 प्रतिशत के आसपास ही रही। दूसरी ओर गैर–कृषि क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक तेजी से बढ़ा।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, उत्पादन के साथ–साथ किसानों के आर्थिक कल्याण पर अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। उत्पादन और वृद्धि के अलावा कृषि नीति का एक प्रमुख निर्धारक सामाजिक–आर्थिक आयाम भी होना चाहिए। अतः इस नीति का उद्देश्य, उन प्रवृत्तियों और कार्यों को प्रेरित करना है जिनके फलस्वरूप कृषि प्रगति का आकलन करने पर किसान परिवारों की आय में सुधार हो, न केवल उनकी उपभोग आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बल्कि उनकी कृषि से संबद्ध कार्यकलापों में निवेश की क्षमता को बढ़ाने के लिए भी।

उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु नीति पनर्निर्धारण की आवश्यकता है जिसके अंतर्गत किसानों के सशक्तीकरण हेतु परिसंपत्ति सुधार के लिए भूमि, जल, पशुधन, मत्स्यकी, जैव संसाधन, पशु जैनेटिक संसाधनों की स्थिति एवं स्तर में वृद्धि करनी होगी।

सहायक सेवाओं के अंतर्गत विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, कृषि–जैव सुरक्षा, कृषि मौसम विज्ञान, जलवायु परिवर्तन, आदान और सेवाएं, ऋण और बीमा, सहकारी समितियां विस्तार, प्रशिक्षण और ज्ञान संपर्कता, सामाजिक सुरक्षा, कृषि मूल्य, विपणन और व्यापार जैसी सभी सेवाओं में वृद्धि एवं विस्तार करना आवश्यक है।

कृषि संबंधित सभी नीतियों एवं योजनाओं को किसानों की विशेष श्रेणियों जैसे– जनजातीय किसान चरवाहे, बागान किसान, द्वीपसमूह किसान एवं शहरी किसानों तथा खेती की विशेष श्रेणियों जैसे– आर्गेनिक खेती, हरित खेती, जेनेटिकली संशोधित (GM) फसलों, संरक्षित (ग्रीनहाउस) खेती तथा विशेष क्षेत्रों जैसे– कठिनाई ग्रस्त क्षेत्र, वृहद् जैव–विविधता वाले क्षेत्रों एवं भावी युवा किसानों के समग्र विकास को लक्षित करना चाहिए।

प्रत्येक भारतीय गांव का एक इतिहास होता है। मूल्यों और विचारों की एक व्यवस्था होती है। भारतीय गांवों की सामाजिक संरचना की प्रकृति को समझने के लिए गांवों के आंतरिक संबंधों, समूहों, गांवों के समुदायों के रूप में समझना होगा तथा गांवों की सामाजिक संरचना को संपूर्ण भारतीय समुदाय के संदर्भ में अध्ययन करना होगा क्योंकि एक गांव अपनी अनेक स्थानीय आवश्यकताओं, जैसे– धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि की पूर्ति गांव स्तर पर पूरी करता है। अतः लघु स्तर पर अनेक हिस्सों में गांव का अध्ययन करके गांवों के विभिन्न पक्षों एवं विशेषताओं को जानकर उनके आधार पर भारतीय गांवों के बारे में सामान्यीकरण प्रस्तुत कर सकते हैं। इस प्रकार के एकाधिक अध्ययन के अभाव में गांवों की सामाजिक संरचना का स्पष्ट चित्रण करना कठिन होता है तथा कृषि संबंधित नियमों–कानूनों का भी ग्रामीण सामाजिक संरचना पर गहरा प्रभाव पड़ता है। (The rules and laws related to agriculture also have a deep impact on the rural social structure.)

राबर्ट रेडफील्ड ने भारत में ग्रामीण सामाजिक संरचना का उल्लेख करने के लिए परिवार नातेदारी, धर्म, जाति, शिखा, सत्ता एवं अर्थव्यवस्था आदि आधारों को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

टिप्पणी

डॉ. दुबे ने इनके अतिरिक्त मूल्य व्यवस्था को भी भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना को समझने के लिए आवश्यक माना है। अन्य विद्वानों ने इन्हीं आधारों में कुछ संशोधन करते हुए यही विचार व्यक्त किए हैं। डॉ. दुबे का विचार है कि गांवों की सामाजिक संरचना का अध्ययन करने के लिए एक गांव को विभिन्न रूपों में इस प्रकार विभाजित करना होगा जिससे इन विभिन्न रूपों का समुचित रूप से अध्ययन करके इन्हें सरल रूप में प्रस्तुत किया जा सके।

ग्रामीण संरचना को समझने के लिए डॉ. दुबे ने निम्न दृष्टिकोणों को प्रमुख स्थान दिया है।

1. भारतीय गांव एक विशिष्ट, पूर्ण, पृथक इकाई के रूप में।
2. भारतीय गांव, बड़े समुदाय में एक छोटी संबंधित इकाई के रूप में।

भारत के गांवों के अनेक प्रकार हैं। कई गांव ऐसे हैं जहां केवल एक ही जाति, अथवा जनजाति के लोग निवास करते हैं तो कई गांव ऐसे हैं जहां विभिन्न जातियां एवं विभिन्न जनजातियां साथ–साथ निवास करती हैं। जातियों एवं जनजातियों की विभिन्नता एवं सह–उपस्थिति ग्रामीण सामाजिक संरचना को प्रभावित करती है। जिस गांव में एक ही जाति अथव जनजाति रहती है उस गांव की अपेक्षा बहुजाति एवं जनजातियों के साथ–साथ निवास करने वाले गांव की सामाजिक संरचना अधिक जटिल हो जाती है। वहां जनजातियों की व्यवस्था एवं उनमें जाति प्रथा की कुभावना देखने को मिलती है।

ग्रामीण निर्धनता

भारत में लाखों परिवार अलग–अलग स्तर का जीवनयापन करते हैं। ज्यादातर ग्रामीण औसत दर्जे का जीवन व्यतीत करते हैं। उनके पास पर्याप्त भोजन एवं वस्त्रों का अभाव होता है। वर्तमान समय में औद्योगिक क्रांति ने गरीब स्तर और अमीर स्तर में आर्थिक विषमता को उत्पन्न कर दिया है। आज संपूर्ण देश आर्थिक दृष्टि से संपन्न (अमीर) एवं आर्थिक दृष्टि से असंपन्न (गरीब) दो भागों में बंट गया है। जीवनयापन करने की मूल भौतिक आवश्यकताएं अन्न, वस्त्र एवं घर हैं। सामाजिक दृष्टि से निर्धन व्यक्ति वह है जिसको पेट भरने को अन्न नहीं मिलता है, पहनने को पर्याप्त वस्त्रों की कमी है तथा रहने के लिए घर नहीं है। या जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के साधनों की कमी, गरीबी अथवा निर्धनता है। आज भारत की प्रति व्यक्ति आय 500 अमेरिकी डॉलर है। विश्व के समृद्धतम देश की प्रति व्यक्ति आय 5000 अमेरिकी डॉलर है। भारत की आबादी का एक बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करता है।

गरीबी उन चीजों की जीवन में कमी है जो एक व्यक्ति और उनके आश्रितों को स्वस्थ एवं संतुष्ट रखने के लिए आवश्यक हैं। उन्हें जीवन की आवश्यकताएं, सुविधाएं एवं मनोरंजन के पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं होते हैं। कहीं न कहीं उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कमी होती है।

जब उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति उनके रहने के वर्तमान स्थान पर पूर्ण नहीं हो पाती है तब ग्रामीण अपने निवास स्थान को छोड़ कर स्थायी अथवा अस्थायी रूप से दूसरे उस स्थान में निवास करने लगता है जहां उसकी आवश्यकता की पूर्ति के

टिप्पणी

पर्याप्त साधन होते हैं। इस प्रक्रिया को प्रवासी प्रवृति या प्रवासन (Migration) कहते हैं अर्थात प्रवासी दो शब्दों से मिलकर बनता है– प्रवासी एवं प्रवृत्ति अर्थात मूल स्थान को छोड़कर जाना एवं कहीं अन्य जगह पर बस जाना तथा बार–बार मूल स्थान पर आते–जाते रहना। प्रवृत्ति का आशय स्वभाव या आदत से है। इस प्रकार प्रवासी प्रवृत्ति का अर्थ मूल स्थान को छोड़ कर कहीं अन्यत्र बस जाना तथा मूल स्थान से निरंतर संबंध बनाये रखने की आदत से है। ग्रामीण नगरीय सातत्य इसी अवधारणा से संबंधित है।

प्रवासी प्रवृत्ति को चार भागों में बांट सकते हैं–

1. **दैनिक प्रवास**– जैसा कि स्पष्ट है कि गांवों से शहरों की ओर वह प्रवास है जो प्रतिदिन समान रूप से होता है जो गांव शहरों के समीप होते हैं वहां के निवासी नौकरी, व्यापार, शिक्षा या अन्य कारणों से प्रायः रोजाना गांव से शहरों की ओर जाते हैं और अपना कार्य नियत समय पर पूर्ण करके शाम तक घर लौट जाते हैं। इसे दैनिक प्रवासन (Daily Migration) कहते हैं।
2. **मौसमी प्रवास**– इस प्रकार का प्रवास किसी विशेष मौसम (Seasonal Migration) में ही होता है। जैसे ही वह मौसम समाप्त होता है प्रवासी प्रवृत्ति भी समाप्त हो जाती है और प्रवासी अपने मूल निवास पर लौट आता है। जैसे फसल के समय तथा अन्य मौसमी कार्यों के प्रवासी मजदूर एक स्थान से दूसरे स्थान पर बहुतायत से जाते हैं। जब ग्रामीण लोग कृषि कार्य से मुक्त हो जाते हैं तो वापस मूल स्थान में आ जाते हैं।
3. **आकस्मिक प्रवास**– इस प्रकार का प्रवास उपरोक्त दैनिक एवं मौसमी प्रवास से भिन्न होता है। कभी–कभी कुछ विशेष परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण इस प्रकार का प्रवास करना पड़ता है, जैसे– बीमारी, मुकदमेबाजी, सामाजिक और वार्षिक उत्सव तथा अन्य प्रकार की परिस्थितियां भी हो सकती हैं। इसे आकस्मिक प्रवासन (Causal Migration) कहते हैं।
4. **स्थायी प्रवास**– इस प्रकार के प्रवास में ग्रामीण गांवों को पूर्णतः छोड़ कर उस नए स्थान पर बस जाता है जहां उसकी आवश्यकता की पूर्ति होती है। उसे रोजगार के नये अवसर मिलते हैं जिसमें नौकरी पाना, शिक्षा पाना, पदोन्नति अथवा चुनाव जैसे अवसर भी हो सकते हैं।

ग्रामीण खेतिहर मजदूरों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है–

1. भूमिहीन मजदूर
2. सीमांत मजदूर

भूमिहीन मजदूर एवं सीमांत मजदूर दोनों ही श्रेणियों का मुख्य साधन कृषि कार्य एवं श्रम है।

भूमिहीन मजदूरों को दो भागों में बांटा जा सकता है– (1) स्थायी (2) अस्थायी।

स्थायी श्रमिक ऐसे परिवार से बंधे रहते हैं जिसके पास ज्यादा कृषि भूमि होती है। अस्थायी श्रमिक वे छोटे किसान हैं जिनके पास बहुत थोड़ी भूमि होती है अतः वे दूसरों की भूमि पर मजदूरी करते हैं या दूसरों की भूमि को ठेके पर लेकर खेती करते

हैं या बंटाई पर खेती करते हैं। खेतिहर मजदूर, किसान व छोटे किसान मिलकर कुल ग्रामीण परिवारों के 72.2 प्रतिशत भाग का निर्माण करते हैं। ये सभी गांव के गरीब परिवार होते हैं।

टिप्पणी

सन् 1961 में देश में 3.15 करोड़ खेतिहर मजदूर एवं 9.95 करोड़ किसान थे। 1981 की जनगणना के अनुसार देश में 5.6 करोड़ खेतिहर मजदूर थे। 1971 की जनगणना के अनुसार देश में 7.8 करोड़ खेतिहर मजदूर थे जबकि वर्तमान में इनकी संख्या बढ़कर 10.6 करोड़ हो गई है। 1990–91 में देश में कुल जोतों का 59 प्रतिशत सीमांत किसान, 17 प्रतिशत लघु किसान, 13.2 प्रतिशत अर्धमध्यम किसान, 7.2 प्रतिशत मध्यम तथा 1.6 प्रतिशत बड़े किसान थे। इस प्रकार खेतिहर श्रमिक जिनमें भूमिहीन भी शामिल हैं सीमांत किसान एवं छोटे किसान मिलकर ग्रामीण निर्धन वर्ग का निर्माण करते हैं। ग्रामीण वर्ग व्यवस्था में सबसे निम्न स्थान खेतिहर एवं कृषि मजदूरों का है और गांवों में इनकी संख्या सबसे अधिक है। ये लोग दूसरों की कृषि भूमि पर मजदूरी करके अपना जीवनयापन करते हैं।

खेतिहर एवं भूमिहीन मजदूरों को दी गई मजदूरी के आंकड़ों से यह ज्ञात होता है कि देश के कुछ भागों में जैसे, हरियाणा, केरल, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पंजाब को छोड़कर कृषि मजदूरों को अधिसूचित, न्यूनतम मजदूरी भी नहीं मिलती है। इन राज्यों में लिंग भेद के कारण स्त्रियों को अधिसूचित न्यूनतम मजदूरी के अनुसार मजदूरी नहीं दी जाती है।

खेतिहर या भूमिहीन मजदूरों की दयनीय आर्थिक स्थिति के बहुत से अन्य कारण भी हैं। उनकी कम मजदूरी और निम्न आर्थिक स्थिति के कारण निम्नानुसार हैं–

1. **निम्न सामाजिक स्थिति**– ज्यादातर कृषि श्रमिक उपेक्षित एवं दलित जातियों के सदस्य हैं। उनमें कभी भी दबंग बनने का साहस नहीं रहा। उनकी स्थिति मूक दर्शकों जैसी है।
2. **असंगठित मजदूर**– मजदूर अधिकतर अनपढ़ हैं एवं उनमें जागरूकता की कमी है। वे गांवों में बिखरे हुए हैं। साहूकार और जमींदार उन्हें संगठित भी नहीं होने देते हैं।
3. **मौसमी रोजगार**– कृषि मजदूरों को सारा वर्ष लगातार कार्य नहीं मिलने से मजदूरी भी नहीं मिल पाती है। खेतिहर एवं भूमिहीन मजदूरों की कम आय और निम्न आर्थिक स्थिति के लिए यह मुख्य कारण है।
4. **कृषि व्यवसायों में भिन्न कार्यों की कमी**– गांवों में कृषि से भिन्न व्यवसायों की कमी भी कृषि मजदूरों की कम मजदूरी और निम्न आर्थिक दशा के लिए जिम्मेदार है।
5. **ऋणग्रस्तता**– कृषि मजदूर किसी न किसी प्रकार के ऋण से अवश्य ही ग्रस्त है। साधारणतः ये मजदूर अपने भू–स्वामियों से ही ऋण लेते हैं और बदले में उन्हें अपने भूस्वामी हेतु कम मजदूरी में कार्य करना स्वीकारना पड़ता है।
6. **प्रवासी प्रवृत्ति**– भारतीय मजदूरों में प्रवासी प्रवृत्ति पाई जाती है। इसके पीछे प्रमुख कारण है कि जब मजदूर को अपने गांव में पर्याप्त मजदूरी नहीं मिलती है तब वह शहर के कारखानों में, दुकानों पर, मिलों में कार्य करने के लिए जाता

टिप्पणी

है। जहां पर उसका शोषण होना संभव हो सकता है और उसे घर का किराया, पानी, बिजली का अतिरिक्त भार भी वहन करना होता है साथ ही गांव के संयुक्त परिवार से एकल परिवार में आने के कारण स्वयं को एवं उसके परिवार को कई प्रकार के संघर्षों का प्रतिदिन सामना करना पड़ता है।

कारखानों में, मिल में जब माल की आपूर्ति बढ़ जाती है तब मजदूरों की मजदूरी बढ़ जाती है। किंतु जब माल की आपूर्ति कम होती है तब उनकी मजदूरी कम कर दी जाती है। छंटाई कर दी जाती है। तब मजदूर परिवार के सभी पुरुष, महिलाओं और बच्चों को अपनी आजीविका कमाने के लिए काम पर जाना पड़ता है।

इस प्रकार से कृषि समस्याएं हमारे लिए एक चुनौती हैं जिससे संपूर्ण ग्रामीण सामाजिक संरचना प्रभावित होती है। कृषि मजदूरों की समस्याओं को हल करने के लिए कृषि पर आश्रित उद्योगों का बड़ा योगदान हो सकता है। अतः उन उद्योगों का विकास करना चाहिए जिससे कि कृषि मजदूर खाली समय में इन उद्योगों में कार्य करके अपनी जीविका चला सके और अपने आय में वृद्धि करके जीवन स्तर में सुधार ला सके। सभी राज्यों में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम लागू है जिसके तहत मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी देने का प्रावधान है किंतु इस अधिनियम का पालन नहीं होने के कारण कम मजदूरी दी जाती है साथ ही कृषि मजदूरों के कार्य के घंटे भी निर्धारित किए जाने चाहिए ताकि कभी मालिक उन घंटों के अतिरिक्त कार्य लेता है तो उस अतिरिक्त कार्य की मजदूरी देने की व्यवस्था भी होनी चाहिए। गरीब कृषि मजदूरों हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में मकानों का निर्माण करके उन्हें उचित व्यवस्था देने का प्रावधान होना चाहिए। ग्रामीण रोजगार केंद्रों को विकसित किया जाना अत्यंत आवश्यक है। कृषि मजदूरों में शिक्षा का व्यापक प्रसार उनकी बहुत सी समस्याओं को हल करने में अपना योगदान दे सकता है। वे अपने भूस्वामियों के शोषण से बच सकते हैं, उचित मजदूरी प्राप्त कर सकते हैं, अपने अधिकारों को पढ़ कर जान सकते हैं और देश के आर्थिक विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

कृषि मजदूर संगठन की स्थापना की जानी चाहिए। सारे मजदूरों को संगठित होकर अपने संगठन का निर्माण करना चाहिए जिससे उनका शोषण बंद हो सके। वे एक साथ मिलकर अपनी बात रखने के काबिल हो सकें तथा सरकार से अपने लिए कल्याणकारी योजनाओं को लागू करवा सकें।

कृषि संबंधित कानून एवं नीतियां

ग्रमीण मजदूरों की समस्याओं के निवारण हेतु सरकार द्वारा कई प्रयास किए गए जिसमें सरकार ने निम्नलिखित कदम उठाए हैं–

- बंधुआ मजदूर प्रथा का अंत
- भूमिहीन मजदूरों के लिए भूमि की व्यवस्था
- कृषि श्रमिक सहकारिता का संगठन
- कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकास
- ऋण मुक्ति कानून

1. **बंधुआ मजदूर प्रथा का अंत**– गांवों में भूमिहीन मजदूरों की एक बड़ी संख्या ऐसी है जो बंधुआ मजदूरों के रूप में कार्य करती थी। जुलाई 1975 में तत्कालीन

टिप्पणी

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने 20 सूत्री कार्यक्रम के अंतर्गत बंधुआ मजदूरों को मुक्त कराया और यह व्यवस्था गैरकानूनी घोषित की गई। केंद्रीय श्रम मंत्रालय ने एक अध्यादेश जारी करके बंधुआ मजदूरी प्रथा को समाप्त कर दिया।

2. **भूमिहीन मजदूरों के लिए भूमि की व्यवस्था**– सरकार ने जोतों की सीमा का निर्धारण करके अतिरिक्त भूमि भूमिहीन किसानों में बांटने की व्यवस्था की तथा भूदान–ग्रामदान आंदोलन आदि से प्राप्त भूमि को भूमिहीन ग्रामीण कृषक मजदूरों में बांट दिया।

3. **कृषि मजदूर सहकारिता संगठन**– लघु एवं सीमांत कृषकों, ग्रामीणों तथा मजदूरों को सुविधाएं देने के लिए कृषि मजदूर सहकारी समितियां बनाई गई हैं। ऐसी समितियों द्वारा नहरों एवं तालाबों की खुदाई, सड़कों के निर्माण, स्टाप डेम निर्माण आदि का ठेका लेकर ग्रामीण मजदूरों के लिए रोजगार के कई अवसर उपलब्ध किए जा रहे हैं।

4. **कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकास**– कृषि पर जनसंख्या के भार को कम करने के लिए सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में कई छोटे–छोटे कुटीर एवं लघु उद्योगों के विकास को महत्व दिया है।

5. **ऋण मुक्ति कानून**– मजदूरों हेतु ऋण मुक्ति कानून बनाने के लिए उत्तर प्रदेश तथा कई अन्य राज्यों ने अध्यादेश के माध्यम से कानून बनाया है। इस कानून के अनुसार जिन मजदूरों की वार्षिक आय 2400 या इससे कम है उनको पुराने ऋण से मुक्त कर दिया गया है। सन् 1975 में छोटे भूमिहीन किसानों व कारीगरों की महाजनों के ऋण से मुक्ति की घोषणा की गई।

कृषि संबंधित कानूनों एवं नीतियों का ग्रामीण सामाजिक संरचना पर प्रभाव

सरकार ने अनेक सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामीण भारत में अनेक विकास एवं परिवर्तन किए हैं। भारतीय गांवों में परिवर्तनशील कार्यों का विश्लेषण निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत देखने को मिलता है–

1. **परिवार एवं बंधुत्व व्यवस्था में परिवर्तन**– ग्रामीण रोजगार के नए अवसरों और ग्रामीणों के शहरों की ओर प्रवास से परिवारों की संरचना पर अभूतपूर्व प्रभाव पड़ता है। संयुक्त परिवार का यह परंपरागत रूप (जहां कई पीढ़ियां एक साथ कई वर्षों से निवास करती थीं जिनका साझा संपत्ति, साझा निवास स्थान और साझी रसोई के आधार पर जीवन यापन हो रहा था) आज बदल रहा है। इसके स्थान पर एकाकी परिवारों का चलन काफी प्रचलित हो गया है।

   बंधुत्व का स्वरूप भी ढीला पड़ा है। संबंध बहुत लचीले हो गए हैं। विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बंधुत्व व्यवस्था भारतीय गांवों में एक सामाजिक ताने–बाने के रूप में अधिक सक्रिय है। उदाहरण– इन संबंधों को नौकरी पाने, पदोन्नति या किसी सरकारी कार्यालय में कोई काम करवाने या चुनाव जीतने के लिए अधिक उपयोग में लाया जा रहा है।

2. **जाति संरचना में परिवर्तन**– साधारणतः अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं कमजोर वर्गों के लिए चलाए जा रहे कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप

टिप्पणी

जाति व्यवस्था में अनेक परिवर्तन हुए हैं। निम्न जातियों में अपनी जाति के प्रति चेतना जागी है। मध्यम श्रेणी की जातियां राजनीतिक दृष्टि से अधिक सक्रिय हो रही हैं। उच्च श्रेणी की जातियों का परंपरागत प्रभुत्व कम होता जा रहा है और उनकी प्रभुता को मध्यम श्रेणी की जातियों से चुनौती मिल रही है। क्षेत्रीय आधार पर जाति प्रभुता ग्रहण करने लगी है जो कि क्षेत्र विशेष में संख्या के आधार पर या आर्थिक व राजनैतिक सत्ता के आधार पर शक्तिशाली है। चुनाव के समय भी वह जाति संगठन वोट बैंक के रूप में सक्रिय हो जाता है।

3. **नए वर्गों का उदय**– परंपरागत रूप से भारतीय गांवों में भूस्वामियों, व्यापारियों, कृषकों एवं भूमिहीन कृषि मजदूर के वर्ग थे किंतु इनके बीच संबंध मालिक और आसामी संबंध प्रतिमान के आधार पर थे। भूमि सुधार कार्यक्रम के परिणामस्वरूप कुछ नए हित समूहों का निर्माण होता जा रहा है जो वर्ग चेतना के आधार पर अधिक कार्यशील हो रहा है, जैसे– युवा संगठन मंच, महिला सभा, कृषक संघ, मजदूर संघ आदि।

4. **शक्ति व सत्ता की संरचना में परिवर्तन**– परंपरागत रूप से भारतीय गांवों में शक्ति और संरचना एक बंद व्यवस्था के रूप में विकसित हो रही है जहां शक्ति पद क्रम में एक क्रम से दूसरे क्रम में गतिशीलता करना बहुत ही मुश्किल है। इसके अतिरिक्त संयोजन की स्थिति भी दिखाई देती है अर्थात उच्च जाति ही उच्च वर्ग है और वही शक्ति के सर्वोच्च पर पदासीन है। परंतु पंचायती राज के लागू हो जाने से, सावभौमिक वयस्क मताधिकार मिलने से तथा विकास के अन्य कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप यह परंपरागत शक्ति टूटने लगी है जिसका लाभ सभी वर्गों को हुआ है।

5. **कृषि विविधीकरण पर सरकार का जोर**– उन्नत बीज, उन्नत खाद और सिंचाई के उपलब्ध नए साधनों ने भारतीय गांवों में हरित क्रांति को बढ़ाया है। हरियाणा, पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु इस विविधीकरण में अग्रणी हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से आधुनिक कृषि यंत्रों का उपयोग करके और नकद फसल बोने का प्रयास ही ग्रामीण कृषि व्यवस्था को मजबूत बनाने में सक्षम हुआ है। फसलों के विविधीकरण में फूलों की खेती, डेयरी, मुर्गीपालन, मत्स्य पालन, दलहन और तिलहन की खेती, मधुमक्खी पालन आदि के उत्पादों पर किसानों को अतिरिक्त अच्छी कमाई के अवसर मिलने लगे हैं। फलस्वरूप उनकी आंकाक्षाएं भी बढ़ी हैं। वे समाज के प्रतिष्ठित शक्ति व समृद्धि के पदों को पाने के लिए जागरूक होकर आवाज उठाने लगे हैं जिसके फलस्वरूप सामाजिक संरचना में तनाव, दरार व टूटन की स्थिति निर्मित होने लगी है।

6. **आदर्शों एवं मूल्यों में परिवर्तन**– ग्रामीण संस्कृति भी परिवर्तन के दौर से गुजर रही है। भारतीय गांवों में जहां नियोजन के फलस्वरूप कुछ समृद्धि आई है, हरित क्रांति बढ़ी है वहां भौतिक सुख–सुविधाएं जैसे– सुरक्षा, यातायात, संचार माध्यम, उपभोग की ब्रांडेड वस्तुएं तथा मनोरंजन के साधन अपनाने में ग्रामवासी पीछे नहीं हैं। परिणामस्वरूप गांव का आम आदमी भी जागरूक होता जा रहा है और अपने हित साधने में चतुर होता जा रहा है।

टिप्पणी

कृषि कानून

आजादी के बाद से ही कृषि उत्पादन में वृद्धि, कृषि को आकर्षक बनाने एवं किसानों की आय में वृद्धि हेतु सरकारों ने कृषि नीतियों व कानूनों का निर्माण किया। इसके परिणामस्वरूप भारत अनाज के उत्पादन में आत्मनिर्भर हो पाया। 1990 में भारत ने मुक्त बाजार व्यवस्था की सदस्यता ग्रहण की और उद्योगों में उदारीकरण का दौर शुरू हुआ जिसके अंतर्गत विदेशी पूंजी एवं विशेषज्ञता का प्रवाह भारतीय बाजारों में हुआ। हमारे स्वदेशी उद्योगों ने इस नई मुक्त बाजार व्यवस्था में साहसपूर्वक खड़े होने एवं आगे बढ़ने का प्रयास किया।

मुक्त बाजार व्यवस्था का आग्रह है कि भारतीय कृषि क्षेत्र भी निवेश हेतु मुक्त हो जिससे पूंजी एवं विशेषज्ञता का लाभ कृषि क्षेत्र के किसानों तक भी पहुंचे। इस हेतु सरकारों द्वारा संतुलित मार्ग अपनाया जाना समीचीन होगा। वर्तमान कृषि कानूनों पर कंट्रोल युग की जरूरतों की छाप स्पष्ट दिखाई देती है जब भारत खाद्यानों का प्रमुख आयातक देश था। किंतु आज भारत खाद्यानों के उत्पादन में आत्मनिर्भर ही नहीं बल्कि निर्यातक देशों की श्रेणी में खड़ा हो गया है। अतः स्थिति परिवर्तन होने के साथ ही पुराने कानूनों के स्थान पर नए कानूनों का बनना स्वाभाविक प्रक्रिया ही है।

पारित कृषि अधिनियम

1. आवश्यक वस्तु (संशोधन) अधिनियम, 2020

आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 में भारत में लागू किया गया। तब इस नियम को लागू करने का एक मात्र उद्देश्य उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धता उचित रूप में सुनिश्चित करवाना था। अतः इस कानून के अनुसार आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन, मूल्य और वितरण सरकार के नियंत्रण में था जिससे उपभोक्ताओं को बेईमान व्यापारियों से बचाया जा सके। आवश्यक वस्तुओं की सूची में खाद्य पदार्थ, उर्वरक, दवाइयां, पेट्रोलियम, औषधियां आदि शामिल थे। 23 सिंबर, 2020 को पारित अधिनियम के संशोधन के बाद बने इस कानून में अनाज, दलहन, तिलहन, खाद्य तेल, प्याज और आलू को आवश्यक वस्तुओं से हटा दिया गया।

आवश्यक वस्तु (संशोधन) विधेयक 2020 का उद्देश्य निजी निवेशकों के व्यावसायिक कार्यों में अत्यधिक विनियामक हस्तक्षेप की आशंकाओं को समाप्त करना है। यद्यपि भारत में अधिकतर कृषि वस्तुओं के उत्पादन में व्यापक पैमाने पर इस प्रकार की बर्बादी को रोका जा सकता है।

लाभ

इस विधेयक के माध्यम से सरकार ने विनियामक वातावरण को उदार बनाने के साथ–साथ यह भी सुनिश्चित करने का प्रयास किया है कि उपभोक्ताओं के हित की रक्षा की जाए। संशोधन विधेयक में यह व्यवस्था की गई है कि युद्ध, अकाल, असाधारण मूल्य वृद्धि और प्राकृतिक आपदा जैसी परिस्थितियों में इन कृषि उपजों की कीमतों को नियंत्रित किया जा सकेगा।

इस संशोधन के माध्यम से न केवल किसानों के लिए बल्कि उपभोक्ता और निवेशकों के लिए भी सकारात्मक माहौल का निर्माण होगा और यह निश्चित रूप से हमारे देश को आत्मनिर्भर बनाएगा।

टिप्पणी

इस संशोधन से कृषि क्षेत्र में समग्र आपूर्ति श्रृंखला तंत्र को मजबूती मिलेगी। इस संशोधन के माध्यम से कृषि क्षेत्र में निवेश को बढ़ावा देकर किसान की आय दुगनी करने को बढ़ावा देने की सरकार की प्रतिबद्धता को पूरा करने में भी मदद मिलेगी।

सरकार ने आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 को ऐसे समय में बनाया था जब पूरा देश खपत एवं खाद्य उत्पादन के असामान्य असंतुलन के कारण खाद्यान्नों की कमी का सामना कर रहा था। उस समय भारत अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए अधिकांशतः आयात और अन्य देशों से मिलने वाली सहायता पर निर्भर था।

ऐसे में खाद्य पदार्थों की जमाखोरी और कालाबाजारी को रोकने के लिए वर्ष 1955 में आवश्यक वस्तु अधिनियम लाया गया था किंतु अब परिस्थितियां बदल गई हैं। अब भारत खाद्यान्न उत्पादन की दिशा में आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ गया है अतः इन बदली परिस्थितियों में अधिनियम बदलना आवश्यक है।

2. कृषक (सशक्तीकरण एवं संरक्षण) कीमत आश्वासन और कृषि सेवा पर करार कानून 2020 या ठेका कानून 2020

इस कानून के तहत किसान अपनी भूमि पर बिना कोई पैसा खर्च किए खेती कर सकता है। इसमें कांट्रेक्टर खाद से लेकर बीज, सिंचाई और मजदूरी का सारा खर्च उठाता है और एक तय दाम पर फसल खरीदता है जो भी कंपनी किसान के साथ अनुबंध करती है, उसे कांट्रेक्ट कहते हैं।

लाभ

1. किसानों की खेती के बेहतर रेट मिलेंगे।
2. बाजार में होने वाले रेट के उतार–चढ़ाव का किसान पर असर नहीं होगा।
3. नए तरीकों को सीखने का अवसर होगा।
4. किसानों को खेती में प्रयोग होने वाले आधुनिक फर्टिलाइजर एवं बीज उपलब्ध होंगे।

इस तरह से की जाने वाली खेती के कारण फसलों की क्वॉलिटी और मात्रा में सुधार होगा किंतु कई चुनौतियां भी हैं, जैसे–

1. कांट्रक्ट फार्मिंग के अंतर्गत बड़े खीरददारों के एकाधिकार को बढ़ावा मिलेगा।
2. इस तरह खेती की कम कीमत देकर किसान का शोषण करने की संभावना भी है।
3. बड़े किसानों के मुकाबले छोटे किसानों का कांट्रेक्ट फार्मिंग का लाभ कम मिलेगा।

कृषक कीमत आश्वासन और कृषि सेवा का करार कानून 2020

यह कानून किसी भी किसान के उत्पादन या किसी भी खेत की पैदावार से पहले किसान और खरीददार के बीच एक समझौते के माध्यम से अनुबंध खेती के लिए एक ढांचा है।

एग्रीमेंट फार्मिंग– यह अधिनियम कृषि उपज के उत्पादन या किसी खेत की पैदावार से पहले किसान और खरीददार के बीच कृषि समझौता प्रदान करता है।

टिप्पणी

खेती समझौता की न्यूनतम अवधि– यह एक फसल के मौसम या पशुधन के एक उत्पादन चक्र के लिए होगा।

कृषि समझौते की अधिकतम अवधि– इसकी अधिकतम अवधि पांच वर्ष होगी यदि किसी कृषि उपज का उत्पादन चक्र लंबा है और पांच वर्ष से आगे जा सकता है तो कृषि समझौते की अधिकतम अवधि किसान और खरीददार द्वारा पारस्परिक रूप से तय की जा सकेगी।

कृषि मूल्य का निर्धारण– कृषि उपज का मूल्य निर्धारण और मूल्य निर्धारण प्रक्रिया समझौते में उल्लेखित होनी चाहिए। भिन्नता के अधीन कीमतों के लिए एक गारंटी कृत मूल्य और गारंटी मूल्य के लिए एक स्पष्ट संदर्भ समझौते में निर्दिष्ट होना चाहिए।

विवाद का निपटारा– इस कानून के अंतर्गत विवादों के निपटारे के लिए सुलह बोर्ड उपविभागीय मजिस्ट्रेट और अपीलीय प्राधिकरण की व्यवस्था की गई है।

3. कृषि उत्पादन विपणन समिति (संशोधन) अधिनियम 2020

कृषि उत्पादन विपणन समिति को लेकर कृषि उपज वाणिज्य एवं व्यापार अध्यादेश 2020 को जून में मंजूरी दी गई।

अध्यादेश के लागू हो जाने से किसानों के लिए एक सही माहौल तैयार हो सकेगा जिसमें उन्हें अपनी सुविधा के हिसाब से कृषि उत्पादन खरीदने और बेचने की आजादी होगी। इस अध्यादेश से राज्य के भीतर व बाहर दोनों ही जगह ऐसे बाजार के बाहर भी कृषि उत्पादों का व्यापार सुगम हो जाएगा और किसानों को दाम भी अच्छे प्राप्त होंगे और साथ ही दूसरी ओर कम उपज वाले क्षेत्रों में उपभोक्ताओं को भी ज्यादा कीमत नहीं चुकानी होगी।

अध्यादेश में कृषि उत्पादों के सुगम कारोबार को सुनिश्चित करने के लिए प्लेटफार्म बनाए जाने का भी प्रस्ताव है। इस अधिनियम के अनुसार राज्य को भूगोल और अन्य किसी उपबाजारों के बाधार पर विभिन्न बाजारों में विभाजित किया जाता है। बाजार समितियों द्वारा प्रतिबंधित इन बाजारों का गठन राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है। मार्केट कमेटी में 10–20 सदस्य होते हैं जो सरकार द्वारा मनोनीत होते हैं। कृषि उपज से संबंधित विभिन्न खरीद और वितरण गतिविधियों को करने के लिए विभिन्न कमीशन एजेंटों या व्यापारियों को जिम्मेदारी दी जाती है और यह जिम्मेदारी बाजार समितियों की होती है।

किसान अपने कृषि उत्पाद केवल इन कमीशन एजेंटों को या तो पर्सनल रिलेशन के माध्यम से या नीलामी की प्रक्रिया के माध्यम से भेज सकता है। थोक व्यापारी और खुदरा विक्रेता केवल इन एजेंटों या व्यापारियों से कृषि उपज खरीदने के लिए मजबूर होते हैं।

सरकार और कुछ विशेषज्ञों ने इस कानून पर अपात्ति जताई है। उनका कहना है कि यह कानून देश की संघीय व्यवस्था का उल्लंघन करता है। भारतीय संविधान ने राज्य विधानसभाओं को मंडियों और मेलों को संचालित करने का अधिकार दिए हैं। संविधान की 7वीं अनुसूची में राज्य सूची की 28वीं प्रविष्टि में इसका वर्णन है। उनका

कहना है कि चूंकि एपीएमसी कृषि मंडी संचालित करता है इसलिए केंद्र सरकार को उनमें दखल नहीं देना चाहिए।

कृषकों के एक सीमित वर्ग ने उपर्युक्त कृषि कानूनों से असहमति जताई है। उनकी भावनाओं का सम्मान करते हुए केंद्र सरकार ने फिलहाल इन कृषि कानूनों को वापस ले लिया है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. किसने मूल्य व्यवस्था को भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना को समझने के लिए आवश्यक माना है

   (क) रेडफील्ड ने (ख) डॉ. दुबे ने

   (ग) मार्क्स (घ) क्रोबर ने

6. प्रवासी प्रवृत्ति को कितने भागों में बांट सकते हैं?

   (क) छह (ख) तीन

   (ग) पांच (घ) चार

2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (क)
3. (ग)
4. (क)
5. (ख)
6. (घ)

2.6 सारांश

प्रत्येक जीवधारी को भोजन की आवश्यकता होती है। भोजन से हमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन तथा खनिज लवण प्राप्त होते हैं, जिनके द्वारा जीवों के शरीर का विकास, वृद्धि तथा स्वास्थ्य वृद्धि होती है। पौधे तथा जंतु दोनों ही हमारे भोजन के प्रमुख स्रोत हैं किंतु अधिकांश भोज्य पदार्थ हमें कृषि एवं पशुपालन से प्राप्त होते हैं। भारत में कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए काफी प्रयास लंबे समय से करते आ रहे हैं क्योंकि भारत की जनसंख्या बहुत अधिक है। भारत देश की जनसंख्या लगभग 1 बिलियन से अधिक है। इसमें लगातार वृद्धि हो रही है। भारत में पहले से ही अत्यधिक स्थान पर खेती होती है। इसलिए कृषि के लिए और अधिक भूमि की उपलब्धता संभव नहीं है। अतः फसल एवं पशुधन के उत्पादक की क्षमता को बढ़ाना आवश्यक है। सन् 2025 में हमारी खाद्यान्न की आवश्यकता 30 करोड़ टन के करीब आंकी गई है। इसे पूरा करने का मतलब है कि हर साल कृषि उत्पादन की 4 प्रतिशत की वृद्धि दर बनाए रखना जो कि इतना सरल नहीं है।

टिप्पणी

भारत वर्ष में काश्तकार खेती एक कृषि उत्पादन प्रणाली है जिसमें एक किरायेदार किसान वह होता है जो एक जमींदार के स्वामित्व वाली भूमि पर श्रम करता है। जमींदार अपनी भूमि का योगदान करता है। जबकि किसान अपने श्रम के साथ–साथ पूंजी और प्रबंधन का अलग–अलग मात्रा में योगदान करता है। अनुबंध के आधार पर किरायेदार मालिक को उत्पाद के लिए निश्चित हिस्से में नगद या फसल उत्पादन के भाग के रूप में भुगतान करता है।

भारत की जनगणना के अनुसार कृषि श्रमिकों का कुल ग्रामीण जनसंख्या से अनुपात 1951 में 32.6ः तथा 2001 में 31.ः रहा था। यद्यपि कुल जनसंख्या में कृषि श्रमिकों का प्रतिशत इस अवधि में 20ः तक नीचे आया है किंतु ग्रामीण जनसंख्या में कृषि श्रमिकों का अनुपात लगभग वैसा ही रहा। यह भारत की बढ़ती जनसंख्या, बढ़ता हुआ शहरीकरण, कृषि संबंधी रोजगार विस्तार की गति, कम से कम शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के लिए कृषि संबंधी रोजगार का स्वरूप आदि के कारण ही संभव हुआ है।

जनगणना कृषि श्रमिकों को दो समूहों में वर्गीकृत करती है अर्थात किसान और कृषि श्रमिक। 2 हेक्टेयर से कम कृषि भूमि के स्वामित्व के किसानों को सीमांत किसान कहा गया है तथा 1 से 2 हेक्टेयर के स्वामित्व वाली कृषि भूमि के व्यक्ति को छोटे किसान कहा गया है। इस प्रकार लगभग 83.3ः तक छोटे किसान हैं। चूंकि सीमांत एवं छोटे किसानों के पास कुछ भूमि होती है किंतु उनकी दशा संकटपूर्ण होती है। उन्हें अपने जीवन निर्वाह के लिए मजदूरी या रोजगार पर निर्भर होना पड़ता है।

प्रत्येक भारतीय गांव का एक इतिहास होता है। मूल्यों और विचारों की एक व्यवस्था होती है। भारतीय गांवों की सामाजिक संरचना की प्रकृति को समझने के लिए गांवों के आंतरिक संबंधों, समूहों, गांवों के समुदायों के रूप में समझना होगा तथा गांवों की सामाजिक संरचना को संपूर्ण भारतीय समुदाय के संदर्भ में अध्ययन करना होगा क्योंकि एक गांव अपनी अनेक स्थानीय आवश्यकताओं, जैसे– धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि की पूर्ति गांव स्तर पर पूरी करता है। अतः लघु स्तर पर अनेक हिस्सों में गांव का अध्ययन करके गांवों के विभिन्न पक्षों एवं विशेषताओं को जानकर उनके आधार पर भारतीय गांवों के बारे में सामान्यीकरण प्रस्तुत कर सकते हैं। इस प्रकार के एकाधिक अध्ययन के अभाव में गांवों की सामाजिक संरचना का स्पष्ट चित्रण करना कठिन होता है तथा कृषि संबंधित नियमों–कानूनों का भी ग्रामीण सामाजिक संरचना पर गहरा पड़ता है।

अनेक वर्षों से भारत में कृषि अर्थ व्यवस्था डगमगाती जा रही है अर्थात गहरे संकट में है। यह बहुत ही दुखदपूर्ण है कि अपनी संकटपूर्ण स्थिति को दुनिया के सामने प्रस्तुत करने के लिए पिछले करीब ढाई दशक से पांच लाख से ज्यादा किसानों ने आत्महत्या का रास्ता अपनाया। लोकतंत्र में चुनाव के समय जब सरकार बदल रही थी तो नई सरकार से कृषक अपनी हालत को बेहतरी के कदमों की उम्मीद कर रहा था। तमिलनाडु के किसानों ने अपने मरे हुए किसान भाई–बंधु की अस्थियां और नरमुंडे लेकर संसद के सामने प्रदर्शन किया। कर्नाटक के किसानों ने भी अपना विरोध प्रदर्शित किया। महाराष्ट्र के पचास हजार किसानों ने नासिक से मुंबई तक पैदल चल कर अपना विरोध का प्रदर्शन किया। और फिर सारे देश के करीब 1 लाख किसानों ने पिछले वर्ष दिल्ली में एकत्रित होकर सरकार के सामने अपनी मांगों की दुहाई दी। इन

सारी घटनाओं के जवाब में सरकार ने कोविड काल में किसानों के लिए तीन नए कानून प्रस्तुत किए जो बात सुधार की करते हैं लेकिन दरअसल इनके द्वारा सरकार ने बहुअंतर्राष्ट्रीय कंपनियों को मुनाफे देने और भारत की खेती को और अधिक संकट में डालने का काम किया है।

टिप्पणी

2.7 मुख्य शब्दावली

- **अधिकांश** : अधिकतर, ज्यादातर।
- **भोज्य** : खाने योग्य।
- **अंधाधुंध** : बेहिसाब, अत्यधिक।
- **अनुसंधान** : खोज।
- **बुनियादी** : मूल।

2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. हमारे भोजन के मुख्य स्रोत क्या हैं?
2. एक किरायेदार किसान किसे कहते हैं?
3. कृषि उत्पादन में गिरावट के क्या कारण हैं?
4. राबर्ट रेडफील्ड ने भारत में ग्रामीण सामाजिक संरचना का उल्लेख करने के लिए किन आधारों को महत्वपूर्ण स्थान दिया है?
5. ग्रामीण खेतिहर मजदूरों को किन दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. फसल उत्पादन में सुधार की प्रक्रिया में प्रयुक्त गतिविधियों की विवेचना कीजिए।
2. कृषि वाणिज्यीकरण के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
3. कृषि श्रमिकों को किन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है और उनकी संख्या में वृद्धि के क्या कारण हैं?
4. ग्रामीण निर्धनता की समीक्षा कीजिए।
5. सरकार द्वारा कोविड काल में किसानों के लिए प्रस्तुत किए गए तीन नए कानूनों का विश्लेषण कीजिए।

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

MacIver, R.M and C. Page. *Society: An Introductory Analysis*. New York: Macmillan.

Bottmore, T.B. *Sociology — A Guide to Problems and Literature.* Delhi: S. Chand.

टिप्पणी

Davis, Kingsley. *Human Society.* New York: Macmillan.

Horton, Paul. B, and Chester, L. Hunt, *Sociology.* New York: McGraw-Hill.

Hadden W. Richard. *Sociological Theory — An Introduction to the Classical Tradition.* Canada: Board View Press.

Spencer, H. *Study of Sociology*. Michigan: University of Michigan Press

Rao, M.S.A.(Eds), *Urban Sociology in India: Reader and Source Book*. New Delhi: Orient Longman, New Delhi.

Shivaramakrishan, K.C. Amitabh Kundu and B.N. Singh, 2005. *Oxford Hand Book of Urbanisation in India.* New Delhi: Oxford University Press, New Delhi.

Hadden W. Richard. *Sociological Theory — An Introduction to the Classical Tradition.* Canada: Board View Press.

Singh, Y. *Indian Sociology: Social Conditioning and Emerging Concerns*. Delhi: Vistaar.

इकाई 3 ग्रामीण समाज : स्थानीय स्वशासन, विकास कार्यक्रम एवं एजेंसियां

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय

3.1 उद्देश्य

3.2 ग्रामीण समाज हेतु योजनाबद्ध परिवर्तन : पंचायती राज, स्थानीय स्वशासन

- 3.2.1 योजनाबद्ध परिवर्तन
- 3.2.2 पंचायती राज एवं स्थानीय स्वशासन

3.3 सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा ग्रामीण विकास की रणनीतियां

- 3.3.1 सामुदायिक विकास कार्यक्रम
- 3.3.2 ग्रामीण विकास की रणनीतियां

3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

3.5 सारांश

3.6 मुख्य शब्दावली

3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

भारत की वर्तमान संवैधानिक शासन व्यवस्था का मूल विकास अंग्रेजी शासन काल में पाया जाता है। भारत में व्यापार करने आयी ब्रिटिश कम्पनी ''ईस्ट इण्डिया कम्पनी'' ने सन् 1600 में ही भारत में अपने पैर पसार लिये थे जब महारानी एलिजाबेथ के सन् 1600 के आज्ञापत्र के तहत, इस कम्पनी को भारत में एक मुख्य गवर्नर तथा साधारण सभा द्वारा निर्वाचित 24 अन्य गवर्नरों की एक समिति द्वारा संचालित किया जाता था। इस कम्पनी की शक्तियों को ब्रिटेन के संसदीय कानूनों द्वारा समय–समय पर बढ़ाया जाता रहा तथा सन् 1857 में इसने भारत की पूरी शासन व्यवस्था स्वयं ही अपने हाथ में ले ली। सन् 1857 से 1947 का 90 वर्ष का समय भारत में अनेक प्रकार की स्थानीय स्वशासन प्रणालियों की स्थापना का समय था। भारत की वर्तमान ग्राम पंचायत एवं नगर पालिका का गठन एवं विकास की बुनियाद इसी गणतांत्रिक प्रक्रिया का एक निरंतर भाग है। भारत की वर्तमान गणतंत्र पर आधारित स्वशासन प्रणाली अचानक ही प्रकट नहीं हो गई वरन् इसकी स्थापना में हजारों लाखों भारतीय नागरिकों का बलिदान एवं प्रयास लगे हुए हैं। भारतीय सुधारकों एवं राजनीतिक नेताओं के अथक प्रयासों से इसका वर्तमान स्वरूप सामने आ रहा है।

यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जिस भारतीय गणतंत्र को स्थापित करने के लिए लाखों लोगों ने दिन–रात एक करके प्रयास किये थे वे तभी सार्थक हो सकते हैं जब भारतीय जनता को अपने संविधान की मूलभूत जानकारी हो। संविधान वह दस्तावेज है जिसके अंतर्गत भारत में शासन एवं नागरिकों के अधिकार एवं कर्तव्य दोनों को ही संवैधानिक रूप से स्पष्ट किया गया है। भारत के संघीय (Federal) ढांचे में किस व्यक्ति की क्या भूमिका होगी एवं वह व्यक्ति अपनी भूमिका को किस प्रकार प्राप्त करते हैं इसका

टिप्पणी

स्पष्ट निर्देश है। इस व्यवस्था में किसी एक व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति का शोषण करने तथा उस पर शासन करने का अधिकार नहीं दिया गया है वरन् पूरे समाज के सभी व्यक्तियों द्वारा एक समान रूप से व्यवहार करने की अनुशंसा की गई है।

इस इकाई में हम भारत में स्थानीय एवं व्यवस्थापिकाओं के विकास, ग्राम सभा, न्याय पंचायत एवं जिला परिषद के संदर्भ में अध्ययन करेंगे।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भारत में स्थानीय स्वशासन की पृष्ठभूमि को समझ पाएंगे;
- मेहता समिति की रिपोर्ट के बाद प्रजातंत्रीय विकेन्द्रीयकरण की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- ग्राम सभा, न्याय पंचायत, ग्राम समिति एवं जिला परिषद के बारे में जान पाएंगे।

3.2 ग्रामीण समाज हेतु योजनाबद्ध परिवर्तन : पंचायती राज, स्थानीय स्वशासन

कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ है अतः भूमि व्यवस्था तथा कृषि का विकास अत्यंत अहम मुद्दे हैं। रोजगार और आय के अंश में कृषि का योगदान सबसे ज्यादा है।

3.2.1 योजनाबद्ध परिवर्तन

भारतीय भूमि व्यवस्था में काफी दोष थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय यह आवश्यकता महसूस की गई कि कृषि, जोकि भारतीय अर्थव्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है, में बिना सुधार किए उत्पादन नहीं बढ़ाया जा सकता। अतः भूमि सुधार कार्यक्रम आरंभ किया गया। इस कार्यक्रम में निम्नलिखित कार्य किए गए-

1. मध्यस्थों एवं जमींदारों का उन्मूलन
2. काश्तकारी व्यवस्था में सुधार
3. जोतों का अधिकतम सीमा-निर्धारण तथा
4. कृषि का पुर्नगठन

यद्यपि इन कार्यक्रमों की गति बहुत अधिक नहीं रही, परंतु फिर भी भारतीय कृषि भूमि व्यवस्था में इनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता।

कृषि का विकास अपने-आप में बहुत सारी जटिलताएं लिए हुए था। हरितक्रांति के दौरान कुछ राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा तमिलनाडु में पैदावार क्रांतिकारी स्तर तक बढ़ी, किंतु कुछ राज्य तो हरितक्रांति के प्रभाव से बिल्कुल अछूते ही रह गए। नई कृषि युक्ति का प्रभाव उत्पादन आय वितरण तथा ग्रामीण रोजगार पर हर राज्य में अलग-अलग था। यंत्रीकरण के बावजूद ग्रामीण रोजगार में कमी नहीं आई।

भारत में खाद्यान्नों के उत्पादन एवं उत्पादकता में राज्यवार विषमताएं विद्यमान हैं। उत्तर प्रदेश, जिसके पास कृषि क्षेत्र का 16.5 प्रतिशत था, ने देश के सकल खाद्यान्न

उत्पादन में 21.4 प्रतिशत का योगदान दिया, जबकि पंजाब के पास कुल कृषि क्षेत्र का 4.6 प्रतिशत था फिर भी इसने कुल खाद्यान्न उत्पादन में 10.6 प्रतिशत का योगदान दिया। खाद्यान्नों के उत्पादन के साथ ही साथ व्यावसायिक फसलों के उत्पादन में भी पर्याप्त क्षेत्रीय विषमता देखने को मिलती है। 2017-18 के आंकड़ों के अनुसार देश में तीन-चौथाई से अधिक आलू का उत्पादन उत्तर प्रदेश (30.33 प्रतिशत), पश्चिमी बंगाल (24.92 प्रतिशत), बिहार (15.09 प्रतिशत) तथा पंजाब (5.01 प्रतिशत) में होता है।

भूमि व्यवस्था का अर्थ उस व्यवस्था से है जिसके अनुसार भूमि का स्वामित्व अधिकार एवं दायित्व निर्धारित किए जाते हैं।

एक आदर्श भूमि व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिसमें निम्न गुण हों-

1. भूमि जोतने वाले का स्वामित्व
2. उचित मात्रा में लगान अदायगी
3. भूमि के हस्तांतरण की स्वतंत्र व्यवस्था
4. जोतों की निर्धारित सीमा

स्वतंत्रता के समय भारत में भूमि व्यवस्था

स्वतंत्रता के समय सन् 1947 में भारत में विभिन्न प्रकार की भूमि व्यवस्था पायी जाती थीं जिनको तीन प्रमुख व्यवस्थाओं में बांटा जा सकता है–

1. रैयतवारी
2. महलवारी
3. जमींदारी

ऐसा अनुमान है कि कुल कृषि क्षेत्र का 52 प्रतिशत भाग रैयतवारी में, 40 प्रतिशत भाग जमींदारी में व शेष महलवारी व अन्य व्यवस्थाओं में था।

1. **रैयतवारी**–इस प्रणाली में भूमि पर स्वामित्व राज्य का होता था किंतु व्यवहार में प्रत्येक रजिस्टर्डधारी (रैयत) स्वामी होता था। जब तक वह भूमि पर राज्य को नियमित रूप से कर देता रहता था उसे बेदखल नहीं किया जा सकता था। उसको भूमि को काम में लेने, उसे बेचने या हस्तांतरित करने या किसी अन्य प्रकार से उपयोग में लाने का अधिकार होता था। भूमि पर मालगुजारी का निर्धारण राज्य द्वारा 20-30 वर्ष के पश्चात् भूमि की उर्वरा शक्ति तथा उपज के अनुसार तय किया जाता था।
2. **महलवारी**–इस प्रणाली में सरकार द्वारा पूरे वर्ष के लिए एक रकम मालगुजारी के रूप में तय कर दी जाती थी। जिसको देने का उत्तरदायित्व गांवों के सभी भूमि वाले स्वामियों का होता था, जिन्हें सहभागी कहते थे और लाभ की भूमि को महाल कहते थे। जो भूमि गांव में खाली होती थी उस पर ग्राम समाज का अधिकार होता था। गांव का लंबरदार मालगुजारी एकत्रित करता था जिसके लिए उसको कमीशन मिलता था।
3. **जमींदारी**–इस प्रणाली में जमींदार भूमि का स्वामी माना जाता था तथा भूमि संबंधी सभी अधिकार उसी के हाथ में होते थे। सरकार से कृषक का सीधा संबंध नहीं

टिप्पणी

होता था, बल्कि एक मध्यम वर्ग के माध्यम से होता था जिसे जमींदार कहते थे। इस प्रकार भूमि को जोतने वालों का भूमि में स्वामित्व नहीं होता था। जमींदार द्वारा उन कृषकों को हटा दिया जाता था जो कम लगान देते थे और उनकी भूमि उन व्यक्तियों को दे दी जाती थी, जो अधिक लगान देते थे। इससे किसानों के मन में अस्थिरता रहती थी। इस प्रकार जमींदारी प्रथा में निम्न दोष पाए जाते हैं–

i. **लगान में वृद्धि**- जमींदार भूमि उन व्यक्तियों को ही दे देते थे जो अधिक लगान देने को तत्पर रहते थे। इसका परिणाम यह होता था कि लगान में बराबर वृद्धि ही होती जाती थी।

ii. **कृषि का पतन**- भूमि के संबंध में कृषक को स्थायी अधिकार न मिलने के कारण वह भूमि की गुणवत्ता में वृद्धि हेतु प्रयास नहीं करता था, जिस के परिणामस्वरूप कृषि का पतन होता था।

iii. **जमींदारों द्वारा शोषण**- अधिकांश जमींदार अपने कृषकों से अधिक लगान लेकर उसका शोषण करते थे साथ ही नजराना, बेगार व उपहार भी लेते थे। कृषकों द्वारा इसका विरोध करने पर उनको भूमि से बेदखल कर दिया जाता था।

iv. **सरकारी आय में स्थिरता–** जमींदारी प्रथा में सरकार की दृष्टि से सबसे बड़ा दोष यह था कि सरकार को तो केवल निर्धारित राशि ही मिलती थी जबकि जमींदार अपने लिए मनमाने ढंग से खूब आय प्राप्त करते थे।

v. **मध्यस्थों की संख्या में वृद्धि–** जमींदार भूमि को स्वयं नहीं जोतते थे। वे कृषि कार्य हेतु भूमि कृषकों को देते थे। और फिर बड़े कृषक छोटे कृषकों को देते थे। इस प्रकार सरकार व कृषक इन दोनों के बीच कई मध्यस्थ पैदा हो गए।

vi. **भूमि के उप-विभाजन में वृद्धि**- एक ओर तो जनसंख्या बढ़ने से कृषि भूमि की मांग बढ़ गई, दूसरी ओर जमींदारों को एक कृषक के स्थान पर कई कृषकों को भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े देने से अधिक आय होती थी। अतः उन्होंने भूमि के उप-विभाजन में वृद्धि की जिससे कुल उत्पादन में कमी होने लगी।

vii. **समाज में असमानता**- जमींदारी प्रथा से जमींदार संपन्न हुए तथा और अधिक संपन्न होने लगे थे, जबकि कृषक दरिद्र से और अधिक दरिद्र होने लगे थे।

भूमि सुधार का अर्थ एवं उद्देश्य

भूमि सुधार का अर्थ दो प्रकार से लगाया जाता है- संकुचित तथा विस्तृत।

संकुचित अर्थ

भूमि सुधार से अर्थ छोटे कृषक एवं कृषि श्रमिकों के लाभ के लिए भूमि स्वामित्व के पुनः वितरण से है।

विस्तृत अर्थ

भूमि सुधार से अर्थ किसी संगठन या भूमि व्यवस्था की संस्थागत व्यवस्था में होने वाले प्रत्येक परिवर्तन से है।

भूमि सुधार निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है-

1. **उत्पादन में वृद्धि–** भूमि सुधार कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य कृषि उत्पादन को बढ़ाना है। यह उत्पादन वृद्धि सहकारी खेती, चकबंदी, गहन खेती आदि के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।
2. **सामाजिक न्याय–** भूमि सुधार का दूसरा उद्देश्य सामाजिक न्याय है जिससे कि भूमिहीनों एवं वास्तविक काश्तकारों को भूमि मिल सके।
3. **राजनीतिक उद्देश्य–** इसके अंतर्गत ग्रामीण जन समूह को अपने पक्ष में करने के लिए अनेक योजनाएं बनायी जाती हैं।

भारत में भूमि सुधार

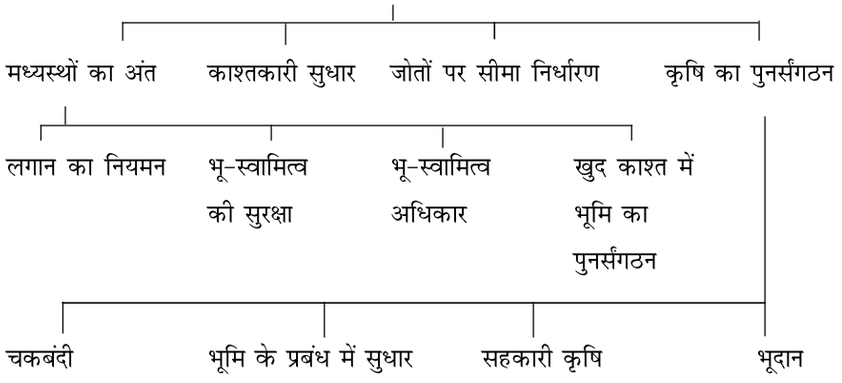

भारत में भूमि सुधार की आवश्यकता एवं महत्व

1. **कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए–** स्वतंत्रता के समय एवं उसके पश्चात् भारत में कृषि पदार्थों की बड़ी भारी कमी थी। अतः इस बात की आवश्यकता महसूस की गई कि कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए भूमि सुधार कार्यक्रम लागू किए जाएं।
2. **नियोजित विकास के लिए–** देश में नियोजित विकास को बढ़ावा देने के लिए यह आवश्यकता महसूस की गई कि नियोजित विकास भूमि सुधार के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।
3. **सामाजिक न्याय एवं समानता के लिए–** सामाजिक न्याय दिलाने के लिए यह उचित समझा गया कि आधिक्य को भूमिहीनों में वितरित कर दिया जाए।
4. **गैर-कृषि उद्योगों के विकास के लिए–** भारत में भूमि सुधार की आवश्यकता इस कारण भी पड़ी कि उद्योगों के विकास के लिए धन एवं कच्चा माल कृषि से मिल सकता है।

भारत में भूमि सुधार के लिए उठाए गए कदम

भारत में भूमि सुधार के लिए काफी प्रयत्न किए गए जिन्हें 4 कार्यक्रमों के माध्यम से लागू किया गया। इन कार्यक्रमों का वर्णन नीचे दिया गया है।

मध्यस्थों एवं जमींदारों का उन्मूलन

भूमि सुधार प्रयत्नों में सबसे पहला प्रयत्न मध्यस्थों व जमींदारों की समाप्ति (Elimination of Middlemen and Zamindars) के लिए किया गया। इस संबंध में मद्रास में 1948 में, बंबई एवं आंध्र प्रदेश में 1949-50 में, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश व असम में 1951 में,

टिप्पणी

पंजाब, राजस्थान व उड़ीसा में 1952 में तथा हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक व पश्चिमी बंगाल में 1954-55 में संबंधित अधिनियम पारित किए गए।

विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा जमींदारी उन्मूलन के लिए जो अधिनियम बनाए गए उनमें निम्न विशेषताएं थीं-

i. **जमींदारों का उन्मूलन एवं क्षतिपूर्ति–** जम्मू एवं कश्मीर राज्य को छोड़कर शेष सभी राज्यों में जमींदारों के अधिकारों का उन्मूलन कर दिया गया है और इसके बदले में उनको मुआवजा या क्षतिपूर्ति दे दी गयी है।

ii. **क्षतिपूर्ति का आधार–**जमींदारों की क्षतिपूर्ति का आधार अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग रखा गया, जैसे उत्तर प्रदेश में आधार शुद्ध संपत्ति रखा गया था, जबकि असम, राजस्थान एवं मध्यप्रदेश में 'शुद्ध आय' था। कुछ राज्यों में बड़े जमींदारों को निम्न दर से तथा छोटे जमींदारों को ऊंची दर से क्षतिपूर्ति की गई। कुछ राज्यों में क्षतिपूर्ति तो एक सी दर से की गई, लेकिन छोटे जमींदारों को पुनर्वास हेतु अतिरिक्त अनुदान दिए गए।

iii. **क्षतिपूर्ति का भुगतान–** क्षतिपूर्ति का भुगतान कुछ राज्यों द्वारा पूर्णत: नकदी में किया गया। उन्होंने अपने राज्यों में जमींदारी उन्मूलन कोष की स्थापना की।

iv. **वैयक्तिक कृषि के लिए भूमि रखने की छूट–** विभिन्न अधिनियमों में यह व्यवस्था भी की गई कि जो जमींदार जितनी भूमि स्वयं जोतते हैं उसे उनके पास ही छोड़ दिया जाए।

v. **सामान्य भूमि पर राज्य सरकारों का अधिकार–** जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् गांव में जो सामान्य भूमि (जैसे बंजर भूमि, वन, हाट की भूमि, चरागाह की भूमि आदि) बची उस पर राज्य सरकारों का अधिकार हो गया।

vi. **लगान देने का दायित्व–** इन अधिनियमों में यह व्यवस्था भी की गई थी कि जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् काश्तकार या आसामी अपनी भूमि पर लगान सीधा ही सरकार को देगा और लगान देने की उसकी स्वयं की जिम्मेदारी होगी।

vii. **जमींदारी पुन: पनपने पर प्रतिबंध–** इसके लिए अधिनियमों में यह व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक काश्तकार के लिए भूमि को स्वयं ही जोतना अनिवार्य होगा, लेकिन विधवा, फौज में कार्य करने वाले सैनिक वर्ग, बंदी व रोग से पीड़ित व्यक्ति अपनी भूमि को लगान पर दूसरों को उठा सकते हैं।

काश्तकारी व्यवस्था में सुधार

जमींदारी उन्मूलन के अंतर्गत यह छूट दी गई कि विधवाएं, अव्यस्क, सैनिक या असमर्थ लोग अपनी भूमि को दूसरों को जोतने के लिए दे सकते हैं। इसे पट्टेदारी कहते हैं। इस व्यवस्था में सुधार की आवश्यकता को महसूस करते हुए कुछ और प्रयत्न भी किए गए, और अंतत: इसमें अनेक सुधार हुए-

1. **लगान का नियमन**- लगान नियमन के कानून बनने से पूर्व पट्टेदार को सामान्यत: कुल उपज का आधा भाग भूमि के मालिक को लगान के रूप में देना पड़ता था। अत: प्रथम योजना में इस बात की सिफारिश की गई कि ऐसा लगान कुल उपज के 20 से 25 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। बाद में विभिन्न राज्यों ने इस संबंध में भिन्न-भिन्न अधिनियम बनाए जिनके अनुसार लगान की

उचित दर पंजाब एवं हरियाणा में 33.5 प्रतिशत, तमिलनाडु में सिंचित भूमि का 40 प्रतिशत तथा शुष्क भूमि का 25 प्रतिशत, आंध्र में सिंचित भूमि का 30 प्रतिशत व सूखी भूमि का 25 प्रतिशत भाग निर्धारित किया गया। जम्मू एवं कश्मीर में लगान की दर 25 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक है।

2. **पट्टे की सुरक्षा–** राज्यों ने पट्टे की सुरक्षा के लिए अधिनियम पारित किए हैं। इन अधिनियमों को बनाते समय इन बातों का ध्यान रखा गया है कि-
   - बड़े पैमाने पर पट्टेदारों की बेदखली न हो।
   - भूमि के मालिकों को स्वयं काश्त के लिए ही भूमि पुनः प्राप्ति की अनुमति हो।
   - भूमि को पुनः प्राप्त करने पर पट्टेदार के पास निश्चित न्यूनतम भूमि अवश्य रहने दी जाए।

   इस प्रकार बिहार, गुजरात, केरल, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, उड़ीसा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र के अधिनियमों में यह व्यवस्था है कि भूमिपति को पट्टेदारों से पट्टे वापस लेते समय कुछ भूमि अवश्य छोड़नी होगी।
3. **पट्टेदारों को स्वामित्व अधिकार**- कई राज्यों में पट्टेदारों को स्वामित्व अधि कार दिलाने के लिए वैधानिक व्यवस्था की गई है जिसके अंतर्गत पट्टेदार निध र्रित क्षतिपूर्ति के बाद भूमि पर स्वामित्व अधिकार प्राप्त कर सकता है। इस संबंध में अभी आंध्र प्रदेश, बिहार, हरियाणा, जम्मू एवं कश्मीर, पंजाब व असम में ऐसे अधिनियम नहीं हैं।
4. **पट्टेदारी व्यवस्था में सुधार का प्रभाव**- पट्टेदारी व्यवस्थाओं में सुधार के अच्छे परिणम निकले हैं, जिससे 124.2 लाख काश्तकारों को लाभ हुआ है।

जोतों का अधिकतम सीमा निर्धारण

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भूमि सुधार कार्यक्रमों के अंतर्गत जोतों की अधिकतम सीमा (Land Ceiling) का निर्धारण किया गया है। ऐसा करने के चार उद्देश्य हैं-

1. बड़े भूखंडों को उचित आकार के खंडों में बदलना जिससे कि उनका प्रबंध उचित प्रकार से हो सके तथा उत्पादन बढ़ाया जा सके
2. अधिशेष भूमि को भूमिहीनों में बांटकर सामाजिक न्याय करना
3. अधिक व्यक्तियों को रोजगार सुविधाएं उपलब्ध करवाना
4. अधिशेष बंजर भूमि पर कृषकों, कारीगरों व शिल्पकारों को घर बनाने की सुविधा देना

लेकिन अभी हाल ही में केंद्रीय सरकार ने राज्यों को सलाह दी है कि वे अधिकतम सीमाओं का पुनः निर्धारण करें।

अधिकतम जोत सीमा निर्धारण के लाभ

1. **असमान वितरण में कमी**- अधिकतम जोत निर्धारण से भूमि के असमान वितरण में कमी होती है।
2. **समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना में सहायक**- यह नियम केंद्रीयकरण की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करते हैं और समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना में सहायता देते हैं तथा राजनीतिक जागृति की आकांक्षाओं को पूरा करते हैं।

टिप्पणी

3. **सहकारी कृषि को प्रोत्साहन**- बड़ी-बड़ी जोतें (खेत) समाप्त होने से समानता का वातावरण पैदा होता है जिसमें कृषकों में पारस्परिक सहयोग का विकास होता है।
4. **रोजगार में वृद्धि**- अधिकतम जोत नियमों के लागू होने से लघु व मध्यम जोतें ही रह जाती हैं। जिससे श्रम प्रधान तकनीकों का प्रयोग बढ़ जाता है और रोजगार में वृद्धि होती है।
5. **गहन खेती**- अधिकतम जोत एक व्यक्ति के पास भूमि की मात्रा को कम कर देती है जिसके फलस्वरूप एक कृषक आय बढ़ाने के लिए गहन खेती को प्रोत्साहित करता है।
6. **चकबंदी को प्रोत्साहन**- अधिकतम जोत नियम कृषि आय में समानता लाते हैं।
7. **कृषि आय का समान वितरण**- अधिकतम जोत निर्धारण से कृषि उत्पादन को प्रोत्साहन मिलता है।
8. **वर्ग संघर्ष में कमी**- भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित करने से वर्ग संघर्ष में कमी होती है जिससे सहकारी भावना का विकास होता है।
9. **भूमिहीन कृषकों को लाभ**- भूमि की सीमा निर्धारण के बाद सरकार को जो भूमि बड़े किसानों से मिलती है उसे वह भूमिहीन कृषकों में बांट देती है।

अधिकतम जोत सीमा निर्धारण की हानियां

1. **बड़े पैमाने पर कृषि करने के लाभों से वंचित**- सबसे प्रमुख तर्क यह है कि अधिकतम जोत निर्धारण कानून बड़े खेतों को छोटे-छोटे खेतों में बदल देता है जिसके परिणामस्वरूप समाज बड़े पैमाने पर कृषि करने के लाभों से वंचित रह जाता है।
2. **एक-सा सीमा निर्धारण करने में कठिनाई**- भूमि की उर्वराशक्ति तथा उस पर सिंचाई की सुविधाएं भिन्न-भिन्न हैं। साथ ही भूमियों की विभिन्न श्रेणियां भी हैं। अत: एक व्यावहारिक कठिनाई सामने आती है कि सभी क्षेत्रों में कृषि भूमि की एक सी अधिकतम सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती है।
3. **कृषि एवं गैर-कृषि आयों में विषमताएं–** अधिकतम जोत सीमा अधिनियमों के संबंध में एक तर्क यह दिया जाता है कि यदि भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित की जाती है तथा गैर-कृषि भूमि जैसी भूमि की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जाती है तो इससे आयों में विषमताएं पैदा हो जाती हैं।
4. **भूमिहीन कृषकों की समस्या का समाधान न होना–** सरकारी आंकड़ों के अनुसार भारत में 7.5 करोड़ भूमिहीन कृषक हैं जिन्हें अधिकतम जोत सीमा अधिनियमों के लागू होने से मात्र 98.5 लाख एकड़ भूमि प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार भूमिहीन कृषकों की बड़ी संख्या होने के कारण उनकी समस्या का उचित समाधान नहीं हो सकता है।
5. **विपणन योग्य अधिशेष की कमी–** अधिकतम जोत सीमा अधिनियम लागू होने से खेत छोटे-छोटे हो जाते हैं जिससे कृषक के पास विपणन योग्य अधिशेष कम रह जाता है। नियमों के लागू होने से जितनी भूमि जोती जाती है उतनी ही नियमों के लागू होने के बाद भी जोती जाएगी।

टिप्पणी

6. **क्षतिपूर्ति की रकम–** अधिकतम जोत सीमा निर्धारण के फलस्वरूप यदि किसान से अतिरिक्त भूमि ले ली जाएगी तो उसे क्षतिपूर्ति देनी होगी, जिसकी रकम करोड़ों व अरबों रुपयों में होगी जिसे राज्य सरकारें देने में कठिनाई महसूस करेंगी।
7. **असंतोष में वृद्धि–** यदि अधिकतम जोत सीमा निर्धारण किया जाता है तो इससे बड़े किसानों में असंतोष होता है जो इस प्रजातांत्रिक युग में उचित नहीं है। साथ ही एक गांव में एक से भूमि लेकर दूसरे को देने से भी असंतोष में वृद्धि होती है।

उप-विभाजन एवं अपखंडन का अर्थ

भूमि के उप-विभाजन से अभिप्राय किन्हीं कारणों से भूमि को दो या अधिक व्यक्तियों में बांटने से है। यह विभाजन उत्तराधिकार नियमों या अन्य किन्हीं कारणों से हो सकता है।

अपखंडन का अर्थ किसान की भूमि का एक ही स्थान पर न होकर अनेक स्थानों पर छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में बिखरा होना है।

उप-विभाजन एवं अपखंडन के लिए उत्तरदायी घटक

भूमि के उप-विभाजन (Sub-division) तथा अपखंडन (Fragmentation) के लिए बहुत से कारक जिम्मेदार होते हैं, जिनमें से मुख्य कारक निम्नलिखित हैं–

1. **उत्तराधिकार नियम :** भारत में उत्तराधिकार के नियम से भी जोतों के उपविभाजन तथा अपखंडन में वृद्धि होती है। पिता की मृत्यु के बाद जब भू संपत्ति का उत्तराधिकारियों में विभाजन होता है तो जोतों के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाते हैं।
2. **भूमि पर जनभार में वृद्धि :** भारत में जनसंख्या तीव्रगति से बढ़ रही है। अनुमान है कि प्रतिवर्ष 1 करोड़ व्यक्ति बढ़ जाते हैं। जिनमें से आधी वृद्धि कृषि भूमि पर होती है लेकिन कृषिभूमि के क्षेत्र में कोई महत्त्वपूर्ण वृद्धि नहीं होती है, इसका परिणाम यह होता है कि कृषि पर जनसंख्या का भार बढ़ जाता है जिससे उप-विभाजन तथा अपखंडन की प्रवृत्ति को बल मिलता है।
3. **भूमि के प्रति लगाव :** भारतीय कृषकों में पैतृक भूमि के प्रति काफी मोह पाया जाता है जिसके कारण वे पैतृक भूमि को, चाहे भूमि का छोटा ही टुकड़ा क्यों न हो, पाने के इच्छुक रहते हैं। साथ ही सामाजिक धारणाओं एवं रुढ़िवादिताओं ने इसमें आग में घी का काम किया है इससे भूमि के उप-विभाजन एवं विखंडन को बल मिलता है।
4. **महाजनों एवं साहूकारों की भूमिका :** भारतीय ग्रामों में छोटे किसानों को साहूकार से ही ऋण मिल पाता है जिसे पाने के लिए उसे अपनी भूमि उनके पास गिरवी रखनी होती है। प्रायः किसान ऋण का भुगतान नहीं कर पाते और इस प्रकार भूमि को साहूकार हथिया लेते हैं। परिणामस्वरूप कालांतर में इसे छोटे-छोटे टुकड़ों में बेच देते हैं। इस प्रकार जोतों का उप-विभाजन और अपखंडन होता है।
5. **बंटाई प्रथा :** के.एन. राज के अनुमान के अनुसार इस समय भी लगभग 45-50 प्रतिशत भूमि किसी न किसी प्रकार की पट्टेदारी के अंतर्गत है और इसमें से काफी भूमि बंटाई पर है। प्रायः जमींदार अपनी भूमि बटाई पर किसी एक काश्तकार को न देकर बहुत से काश्तकारों को दे देते हैं। इससे परिचालन जोतों के टुकड़े हो जाते हैं।

टिप्पणी

6. **कुटीर उद्योगों का पतन :** भारत कुटीर एवं ग्रामोद्योगों के लिए काफी प्रसिद्ध रहा है। परंतु मशीनों से बनी वस्तुओं से प्रतियोगिता के कारण इन लघु उद्योगों का पतन हो गया है और उनके पास बेरोजगारी से बचने के लिए सिवाय भूमि में हिस्सा पाने के कोई और चारा नहीं रहा है। इस प्रकार यहां भूमि का उप-विभाजन व अपखंडन इस कारण भी होता है।

7. **संयुक्त परिवार प्रणाली का ह्रास :** भारत में आरंभ से ही संयुक्त परिवार प्रणाली बड़ी लोकप्रिय थी और घर के सभी सदस्य मिलकर कृषि क्रियाएं करते थे। लेकिन पाश्चात्य संस्कृति एवं शिक्षा के प्रभाव से व्यक्तिवाद की भावना को बढ़ावा मिला जिसके परिणामस्परूप संयुक्त परिवार प्रणाली का ह्रास होता जा रहा है और भूमि के बंटवारे की प्रवृत्ति प्रबल होती जा रही है।

8. **किसानों की अज्ञानता एवं अशिक्षा :** किसानों की अज्ञानता व अशिक्षा भी भूमि के उप-विभाजन तथा अपखण्डन के लिए उत्तरदायी है। वे अपनी अज्ञानता के कारण इससे उत्पन्न होने वाले गंभीर दोषों से अनभिज्ञ रहते हैं और भूमि के उप-विभाजन व अपखण्डन पर जोर देते हैं।

जोतों के उप-विभाजन एवं अपखंडन के दोष

1. **कृषि विकास में रुकावट :** डा. जैर.ए. अहमद के अनुसार छोटी जोतें समृद्धिशाली कृषि के विकास में बाधा डालती हैं क्योंकि वैज्ञानिक उपकरणों एवं उत्तम प्रकार के बीजों का इनमें उपयोग नहीं किया जा सकता।

2. **भूमि का अपव्यय :** जोतें अनेक छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट जाने पर प्रत्येक खेत पर मेढ़ या बाड़ लगाने की आवश्यकता पड़ती है इसमें साधनों का अपव्यय तो होता ही है, साथ ही 3-4 प्रतिशत भूमि भी व्यर्थ हो जाती है।

3. **देखभाल में कठिनाई :** छोटे-छोटे भूखंड होने से सभी भूखंडों की पर्याप्त देखभाल नहीं हो पाती है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादकता का स्तर गिर जाता है।

4. **प्रछन्न बेरोजगारी :** छोटी जोतों पर परिवार के सभी सदस्यों के लिए पर्याप्त काम नहीं होता। परंतु अन्य रोजगार के अभाव में सभी लोग इन छोटे-छोटे खेतों से बंधे रहते हैं। इस प्रकार गांव में प्रछन्न बेरोजगारी स्थायी-रूप ले लेती है।

5. **आधुनिक तकनीक के प्रयोग में बाधक :** छोटे-छोटे खेतों पर आधुनिक उपकरणों तथा आधुनिक तकनीक का प्रयोग नहीं किया जा सकता फलस्वरूप उत्पादकता का स्तर निम्न रहता है।

6. **भूमि की उवर्राशक्ति का ह्रास :** यदि भूमि को बिना जोते कभी-कभी छोड़ दिया जाए तो उसमें उवर्राशक्ति बनी रहती है लेकिन यदि उस पर बराबर खेती होती रहे तो उसकी उर्वराशक्ति कम होने लगती है। उप-विभाजन तथा विखंडन के कारण खेत छोटे-छोटे हो जाते हैं जिससे जीवन निर्वाह के लिए निरंतर खेती करना आवश्यक हो जाता है।

7. **पारस्परिक विवाद :** छोटे-छोटे खेत ग्रामीण समाज में आपसी विवाद का कारण बनते हैं। अधिकतर गांवों में बाड़ एवं मेढ़ झगड़ों का कारण होती हैं। पर्याप्त देखरेख न होने से एक-दूसरे के खेत में पशु चराना, दूसरों की फसल की चोरी कर लेना इत्यादि झगड़ों को बढ़ावा मिलता है।

8. **श्रम व अन्य साधनों का अपव्यय :** भूमि के अपखंडन तथा उप-विभाजन से श्रम तथा अन्य साधनों का अपव्यय होता है। क्योंकि किसान के द्वारा इन सभी साधनों को एक खेत से दूसरे खेत पर, दूसरे से तीसरे पर ले जाना होता है इस प्रकार यह समय तथा साधनों का दुरूपयोग है।
9. **सिंचाई में कठिनाई :** छोटे-छोटे खेतों में सिंचाई की व्यवस्था करने में कठिनाई होती है और किसान के लिए यह संभव नहीं होता कि सभी खेतों पर ट्यूबैल का निर्माण करा सके। यदि एक बार ट्यूबैल का निर्माण हर खेत पर कराया भी जाए तो यह साधनों का दुरूपयोग होगा।
10. **भूमि के स्थायी सुधार में बाधक :** उप-विभाजन तथा विखंडन के कारण किसान सभी खेतों पर स्थायी सुधार नहीं कर पाते हैं।

कृषि भूमि का पुनर्गठन

भूमि सुधार कार्यक्रमों के अंतर्गत भूमि का पुनर्गठन (Restructuring of Land) भी किया गया है जिसके लिए तीन उपायों को काम में लिया गया है–

1. **चकबंदी–** चकबंदी (Land Consolidation) वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा स्वामित्वधारी कृषकों को उनके इधर-उधर बिखरे हुए खेतों के बदले में इसी किस्म के कुल उतने ही आकार के एक या दो खेत लेने के लिए राजी किया जाता है। इसमें एक कृषक के बिखरे हुए खेतों को एक स्थान पर दे दिया जाता है। यह चकबंदी दो प्रकार से की जा सकती है-

   (अ) ऐच्छिक चकबंदी (Optional Land Consolidation)

   (ब) अनिवार्य सकबंदी (Mandatory Land Consolidation)

   इस समय ऐच्छिक चकबंदी गुजरात, मध्यप्रदेश, पश्चिमी बंगाल में लागू है। आंध्र प्रदेश, अरुणाचल, मिजोरम, मणिपुर, मेघालय, त्रिपुरा, नागालैंड, तमिलनाडु व केरल में चकबंदी संबंधी कानून नहीं हैं, लेकिन शेष सभी राज्यों में अनिवार्य चकबंदी लागू है।
2. **सहकारी खेती–** सहकारी खेती (Cooperative Farming) से अर्थ, कृषकों के द्वारा सहकारिता के सिद्धांतों के आधार पर संयुक्त रूप से कृषि करने से है। भारत में सभी भूमि सुधारों का अंतिम लक्ष्य सहकारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की स्थापना करना है। इसलिए पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारी खेती पर काफी जोर दिया गया है। इस समय देश में लगभग 9700 सहकारी समितियां कार्य कर रही हैं जिनके पास 5.7 लाख हेक्टेयर भूमि है तथा जिसके सदस्यों की संख्या 3.5 लाख है।
3. **भूदान–** भूदान (Land Donation) से आशय-यह भूमि सुधार कार्यक्रम ऐच्छिक है और इसके जन्मदाता आचार्य विनोवा भावे थे। यहां भूदान से अर्थ स्वेच्छा से भूमि के दान से है। इसके उद्देश्य बताते हुए आचार्य भावे ने कहा कि यह 'न्याय तथा समानता पर आधारित है कि भूमि पर सभी का अधिकार है।' इस भू-आंदोलन की शुरुआत 18 अप्रैल, 1951 को आंध्र प्रदेश के पोचमपल्ली नामक गांव में हुई थी जहां आचार्य भावे के समक्ष एक हरिजन ने यह समस्या रखी कि उसके साथियों के पास खेती करने के लिए भूमि नहीं है। इसी अवसर पर आचार्य भावे के सुझाव पर एक कृषक श्री रामचंद्र रेड्डी ने 70 एकड़ भूमि इस

टिप्पणी

प्रकार के हरिजनों को देने की घोषणा की। तभी से यह आंदोलन चलाया गया। आचार्य भावे ने अगले पांच वर्षों में 5 करोड़ एकड़ भूमि इस प्रकार एकत्रित करने का लक्ष्य पूरा करने का संकल्प किया था, लेकिन अभी तक कुल 42 लाख एकड़ भूमि ही प्राप्त की जा सकी है। इसमें से 8.8 लाख एकड़ भूमि ही वितरित की जा सकी है। आंदोलन के सूत्रधार आचार्य भावे की मृत्यु हो जाने के कारण अब इस आंदोलन में कोई प्रगति होने की संभावना प्रतीत नहीं होती है।

4. **भू-स्वामित्व का रिकार्ड–** भूमि सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत भूमि स्वामित्व के रिकार्ड (Land Ownership Records) को अद्यतन करने व उसको उचित प्रकार से रखने के लिए भी प्रयास किए गए हैं। आंध्र प्रदेश, हरियाणा, जम्मू एवं कश्मीर, गुजरात, पंजाब, राजस्थान, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र एवं पश्चिमी बंगाल के रिकार्ड अद्यतन हैं, जबकि शेष राज्यों में भी इन्हें अद्यतन किया जा रहा है।

भूमि सुधार कार्यक्रमों का मूल्यांकन

भारत में पिछले वर्षों में भूमि सुधार के कई कार्यक्रम बड़े उत्साह से प्रारंभ किए गए हैं, जिनके अंतर्गत जमींदारी उन्मूलन, अधिकतम जोत निर्धारण, चकबंदी, सहकारी खेती, लगान नियम एवं पट्टे की सुरक्षा की व्यवस्था की गई है। इससे भूमि सुधार में प्रशंसनीय प्रगति हुई है। भारत में भूमि सुधार को लेकर हाल के अधिनियम संख्यात्मक दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। इतने अधिनियम कहीं भी नहीं बनाए गए हैं। ये अधिनियम लाखों, करोड़ों कृषकों पर प्रभाव डालते हैं और भूमि के विशाल क्षेत्रों को अपने दायरों में सम्मिलित करते हैं लेकिन ऐसा सुधार होने पर भी भूमि सुधार कार्यक्रमों की प्रगति धीमी रही है। भारत के भूमि सुधार कार्यक्रमों को लागू करने में कुछ कमियां रही हैं जिनको लेकर इसकी आलोचनाएं हुई हैं, तथा भूमि सुधारों की अत्यंत धीमी गति निराशजनक है। अत: ऐसे में भूमि सुधार कार्यक्रमों का मूल्यांकन (Evaluation of Land Reform Programs) महत्वपूर्ण हो जाता है।

भूमि सुधार कार्यक्रमों की आलोचनाएं

1. **भूमि सुधार कार्यक्रमों में भिन्नता–** भूमि सुधार कार्यक्रमों का प्रभावशाली ढंग से क्रियान्वयन नहीं किया गया है। जिसके परिणामस्वरूप समाज या सरकार को विशेष लाभ नहीं हुआ है। इस संबंध में प्रो. गुन्नार मिर्डल ने अपनी पुस्तक 'Asian Drama' में लिखा है, 'भूमि सुधार कानून जिस ढंग से क्रियान्वित किए गए हैं उससे सामान्यत: उनकी भावनाओं और अभिप्राय को हताश होना पड़ा है। उन्होंने आगे लिखा है कि भूमि संबंधी कानूनों के पास हो जाने से काश्तकारों में बेदखली की एक लहर सी दौड़ गई है और तथाकथित 'खुदकाश्त' के लिए भूमि का पुनर्ग्रहण किया गया है। खुदकाश्त की भूमि पर बटाईदार व कृषि श्रमिक कार्य करते हैं। सीमा निर्धारण से बचने हेतु अनियमित व अवैधानिक हस्तांतरण किए गए हैं जिससे अतिरिक्त भूमि नगण्य मात्रा में ही मिल पाई है। इसके कारण–

   अ. जमींदारों ने इन पेचीदे कानूनों में से कमियां निकालकर बचने के रास्ते अपना लिए हैं।

   ब. राजनीतिक दबाव का इस्तेमाल भी कानून की अवहेलना करने के लिए किया गया प्रतीत होता है।

स. भूमि सुधार कानूनों को क्रियान्वित करने वाले अधिकारियों द्वारा भूमि संबंधी रिकार्ड में परिवर्तन किए गए हैं।

2. **जाली सहकारी कृषि समितियां**- बड़े भूमि स्वामियों ने भूमि सुधार कार्यक्रम लागू होने से अपना बचाव करने के उद्देश्य से सहकारी समितियां बना ली हैं इसमें से अधिकांश सहकारी समितियां जाली हैं।
3. **ऊंचे लगान**- भूमि सुधारों के फलस्वरूप काश्तकारों पर लगान ऊंची दर से लगाया गया है जिससे किसानों को उत्पादकता बढ़ाने की प्रेरणा नहीं मिली है।
4. **भूमि संबंधी आलेखों का अपूर्ण होना**- भूमि सुधार कार्यक्रमों में दूसरी अड़चन भूमि संबंधी प्रलेखों का अपूर्ण होना है जिससे स्वामित्व निर्धारण में कठिनाई होती है।
5. **भूमि सुधार कानूनों का धीमा क्रियान्वयन**- इन भूमि सुधार कानूनों का क्रियान्वयन तेज गति से न होने के कारण जमींदारों व अन्य निहित स्वार्थ वालों को इन कानूनों से बचने का पूरा-पूरा कानूनी समय या अवसर मिल जाता है और वे कानून के अनुसार अपनी जोत कर लेते हैं।
6. **भूमि सुधारों के एकीकृत कार्य का अभाव**- भूमि सुधार के कई कार्यक्रम हैं, जैसे चकबंदी, अधिकतम जोत कानून, सहकारी कृषि आदि। इनमें तालमेल बैठाने की आवश्यकता है जिसकी कोई चेष्टा नहीं की गई है।

भूमि सुधार कार्यक्रमों की सफलता के लिए सुझाव

1. **नवीन रिकार्ड तैयार किया जाए**- भूमि के संबंध में नवीन रिकार्ड तैयार किया जाए जिससे कि स्वामित्व के प्रश्न पर मतभेद न हो सके।
2. **कुशल प्रशासनिक मशीनरी की स्थापना**- राज्य, जिला व तहसील स्तर पर कुशल प्रशासनिक मशीनरी की स्थापना की जाए।
3. **खेतीहर श्रमिकों के संघ की स्थापना**- इन खेतिहर श्रमिकों व बंटाई वालों के संगठन बनाए जाएं तथा उनके प्रतिनिधियों को भूमि सुधार कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में शामिल किया जाए।
4. **वित्तीय संसाधनों का प्रबंध**- जिन नये कृषकों को भूमि मिले इनके लिए वित्तीय संसाधनों का प्रबंध किया जाना चाहिए।
5. **निर्धारित कार्यक्रमानुसार क्रियान्वयन**- योजना आयोग ने सुझाव दिया है कि भूमि सुधार कानूनों को सफल बनाने के लिए उन्हें निर्धारित कार्यक्रमानुसार क्रियान्वित किया जाना चाहिए।
6. **लागू करने की विधियों को सरल बनाना**- भूमि सुधार कानूनों की कानूनी विधियों को सरल बनाया जाना चाहिए जिससे कि कानून बिना अड़चन ठीक प्रकार से कार्य कर सके।

आधुनिक भूमि सुधार कार्यक्रमों का भारतीय कृषि पर प्रभाव

1. **कृषि उत्पादन में वृद्धि**- भूमि सुधार कार्यक्रमों के अपनाने से जोतों की चकबंदी हुई है। भविष्य में उन्हें छोटा होने से रोका गया है तथा किसानों को स्वामित्व अधिकार मिले हैं। पट्टेदारों को बेदखल होने से बचाया है। इन सभी का प्रभाव यह पड़ा है कि किसान में आत्मविश्वास जागा है जिससे उसने कृषि उत्पादन बढ़ाने में कमी नहीं छोड़ी है।

2. **कृषि में यंत्रीकरण को बढ़ावा**- भूमि सुधार कार्यक्रमों के फलस्वरूप कृषि में यंत्रीकरण को बढ़ावा मिला है क्योंकि किसान का खेत जब चकबंदी व अन्य उपायों से एक स्थान पर हो गया और उसे स्वामित्व अधिकार मिल गया तो उसको यंत्रों का उपयोग करने का अवसर मिल गया।
3. **भूमिहीन कृषकों को भूमि**- भूमि सुधार कार्यक्रमों के कारण भूमिहीन कृषकों अर्थात् खेतिहर मजदूरों को खेती करने के लिए भूमि मिल गई है जिससे कृषि उत्पादन बढ़ाने में सहायता मिली है।
4. **बहुफसली कार्यक्रम को बढ़ावा**- पहले किसान एक या दो फसलें ही करता था लेकिन भूमि सुधार होने से उसे भूमि का स्वामित्व मिल गया जिससे वह उस भूमि का अधिकतम उपयोग करने के उद्देश्य से बहुफसली कार्यक्रम अपना रहा है।
5. **सहकारी कृषि को प्रोत्साहन**- सहकारी कृषि से अर्थ खेती की उस प्रणाली से है जिसमें कृषक अपने छोटे-छोटे खेतों एवं साधनों को एकत्रित कर संयुक्त रूप से खेती करते हैं और उपज से प्राप्त आय का वितरण भूमि के अनुपात एवं श्रम के आधार पर कर लेते हैं।
6. **नगदी फसलों में वृद्धि**- भूमि सुधार कार्यक्रमों के फलस्वरूप किसान को न केवल स्वामित्व के अधिकार मिले हैं बल्कि उनकी आय में भी वृद्धि हुई है।
7. **कृषि से सरकारी आय में वृद्धि**- भूमि सुधार से कृषकों का सीधा संबंध सरकार से हो गया है जिससे मिलने वाले लगान से सरकार की आय में वृद्धि हुई है।

अल्पविकसित देशों में कृषि

अल्पविकसित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जहां निर्धनता के दुश्चक्र के कारण उपलब्ध साधनों का समुचित प्रयोग नहीं होने पाता। प्रतिव्यक्ति आय कम होती है तथा लोगों का जीवन स्तर नीचा रहता है। ये अर्थव्यवस्थाएं दो भागों में बंटी होती है एक क्षेत्र तो संपन्न होता है परंतु दूसरा क्षेत्र बिल्कुल अविकसित होता है और यह निर्वाह क्षेत्र होता है इस क्षेत्र की समस्त जनसंख्या कृषि पर आधारित होती है। इस क्षेत्र की कृषि परंपरागत होती है। अविकसित देशों की कृषि (Agriculture in Underdeveloped Countries) की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. **कृषि पर निर्भरता**- अल्पविकसित अर्थव्यवस्था जैसे भारत की कृषि को 'मानसून का जुआ' कहा जाता है, यदि किसी वर्ष पर्याप्त वर्षा नहीं होती या सूखा पड़ जाता है तो कृषि उत्पादन बहुत कम रह जाता है। इसके विपरीत यदि अतिवृष्टि या ओलावृष्टि हो जाए तो भी कृषि उत्पादन काफी कम हो जाता है।
2. **कृषि की निम्न उत्पादकता**- भारत में कृषि पदार्थों का प्रति एकड़ उत्पादन अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है। ऐसी स्थिति अकेले भारत की ही नहीं है, वरन् सभी अल्पविकसित देशों की है।
3. **जीविका का प्रमुख साधन**- वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार कार्यशील जनसंख्या का लगभग 63.7 प्रतिशत भाग कृषि पर आधारित है, इसी प्रकार अन्य अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं का भी लगभग 60 से 70 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र में रोजगार पाता है।

4. **भूमि का असमान वितरण**- सभी अल्पविकसित देशों में भूमि के वितरण में पर्याप्त विषमताएं हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में केवल 10 प्रतिशत व्यक्तियों के पास कुल कृषि योग्य भूमि का 51.7 प्रतिशत स्वामित्व है, जबकि दूसरी ओर 10 प्रतिशत कृषक ऐसे हैं जिनके पास कृषि योग्य भूमि का केवल 0.18 प्रतिशत भाग है, इतना ही नहीं ग्रामीण क्षेत्र के लगभग 14 प्रतिशत लोग भूमिहीन हैं।
5. **जीवन निर्वाह के लिए खेती**- हमारे सामाजिक जीवन में कृषि जीवन की एक पद्धति है। व्यक्ति इसलिए खेती नहीं करता कि उसके पास जीवनयापन का कोई अन्य साधन नहीं है। कृषि उपज का अधिकांश भाग वह प्रयोग में ले लेता है। वस्तुतः वह कृषि इसी अभिप्राय से करता है कि उसके परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाए। वाणिज्यीकरण की ओर वह विशेष ध्यान नहीं देता।
6. **कृषि की अल्पविकसित अवस्था**- निरंतर प्रयासों के बावजूद अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं की कृषि आज भी पिछड़ी हुई है।
7. **अनार्थिक जोतें**- अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में कृषि बहुत छोटे-छोटे खेतों पर की जाती है। इन जोतों का आकार ही छोटा नहीं होता बल्कि ये बिखरी हुई भी होती हैं।
8. **मिश्रित खेती**- मिश्रित खेती इन अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं की प्रमुख विशेषता होती है। मिश्रित खेती के अंतर्गत किसान एक खेत में एक से अधिक फसलें बोता है।
9. **मौसमी बेरोजगारी**- अल्पविकसित अर्थव्यस्थाओं में किसानों को वर्षभर रोजगार नहीं मिलता। भारतीय किसान वर्ष में 140 से लेकर 270 दिन तक बेकार रहते हैं, इस कारण कृषि में अर्द्ध-बेरोजगारी तथा अदृश्य बेरोजगारी की समस्या रहती है।
10. **श्रम प्रधान तकनीक**- चूंकि अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में श्रम की अधिकता होती है इसलिए इनमें कृषि में श्रम प्रधान तकनीक अपनाई जाती है।
11. **खाद्यान्न फसलों की प्रमुखता**- भारतीय कृषि में खाद्यान्न फसलों की अधिकता रहती है। देश के कुल कृषि के 75 प्रतिशत भाग में खाद्यान्न तथा 25 प्रतिशत भाग में व्यापारिक फसलों का उत्पादन होता है।
12. **परंपरागत तकनीक**- अल्पविकसित अर्थव्यस्थाओं में कृषि में अभी तक परंपरागत तकनीक का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि आधुनिक युग में आधुनिक एवं नवीन तकनीक का काफी विकास हुआ है तथापि इन अर्थव्यस्थाओं में आज भी खुरपी और हल का प्रयोग किया जाता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत जैसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में कृषि अपनी विशिष्टताओं के साथ एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

हरित क्रांति : भारतीय कृषि में नवीन रणनीति

हरित क्रांति (Green Revolution) भारतीय कृषि में लागू की गई उस विकास विधि का परिणाम है जो 1960 के दशक में पारंपरिक कृषि को आधुनिक तकनीक द्वारा प्रतिस्थापित किए जाने के रूप में सामने आई। चूंकि कृषि क्षेत्र में यह तकनीक यकायक आई, तेजी से इसका विकास-विस्तार हुआ और थोड़े समय में ही इतने आश्चर्यजनक परिणाम निकले कि देश के योजनाकारों, कृषि विशेषज्ञों तथा राजनीतिज्ञों ने इस अप्रत्याशित

प्रगति को ही हरित क्रांति की संज्ञा प्रदान कर दी। हरित क्रांति की संज्ञा इसलिए भी दी गई कि क्योंकि इसके परिणामस्वरूप भारतीय कृषि निर्वाह स्तर से ऊपर उठकर आधिक्य स्तर पर आ चुकी है।

टिप्पणी

1960-70 के दशक के मध्य के पश्चात् भारत में पारंपरिक कृषि व्यवहारों का प्रतिस्थापन आधुनिक तकनीक एवं फार्म व्यवहारों से किया जा रहा है। पारंपरिक कृषि देशी आगतों पर निर्भर करती है। इसमें कार्बनिक खादों, साधारण हलों एवं अन्य पारंपरिक पुराने कृषि औजारों एवं बैलों का प्रयोग होता है, इसके विपरित आधुनिक कृषि तकनीक में रासायनिक खादों, कीटनाशकों, उन्नत बीजों, कृषि मशीनरी, विस्तृत सिंचाई, डीजल एवं विद्युत शक्ति आदि का प्रयोग सम्मिलित है। 1966 के पश्चात् देश में आधुनिक कृषि आगतों के प्रयोग में 10% की वार्षिक चक्रवृद्धि दर से वृद्धि हुई है। इसी दौरान पारंपरिक आगतों के प्रयोग में प्रतिवर्ष एक प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

नई कृषि नीति के अंतर्गत उन्नत बीजों, रासायनिक खादों आधुनिक मशीनों के अधिक से अधिक प्रयोग को प्रोत्साहित किया गया। इसके साथ ही सिंचाई सुविधाओं, बहुफसली कार्यक्रम, कीटनाशकों के प्रयोग में इजाफा किया गया तथा कृषि आगतों यथा-उर्वरकों, कीटनाशकों, कृषि मशीनरी से संबंधित उद्योगों का तीव्र विकास हुआ। कृषि यंत्रीकरण के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में डीजल तथा विद्युत का प्रयोग बढ़ा है। चौथी पंचवर्षीय योजना में नवीन कृषि रणनीति, जो कि हरित क्रांति के नाम से प्रसिद्ध हुई, के दौरान खाद्यान्न उत्पादन में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई और कृषि में व्याप्त हताशा समाप्त हुई तथा कृषि एक लाभप्रद व्यवसाय बन गई।

कृषि के यंत्रीकरण से अभिप्राय है, कृषि की भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं के लिए, जिनके लिए अब तक मानव या पशुशक्ति का प्रयोग किया जाता रहा था, बिजली, तेल या अन्य किसी प्रकार की शक्ति की सहायता से संचालित मशीनों का प्रयोग करना। कृषि की दृष्टि से, इसका अर्थ न केवल हल चलाने, फसल काटने तथा दाना निकालने के लिए मशीनों का प्रयोग ही है, अपितु सिंचाई, कृषि उत्पादों को खेत पर इधर-उधर ले जाने, इन्हें खेतों से मंडी तक ले जाने, कृषि के उत्पादन साधनों को मंडी से खेतों तक लाने, पशुओं के लिए चारा काटने, पीसने तथा मिलाने, फसलों पर छिड़काव करने आदि जैसे कार्यों के लिए मशीनों या यंत्रों का प्रयोग भी यंत्रीकरण या मशीनीकरण की श्रेणी में आता है।

कृषि के मशीनीकरण की प्रगति हरित क्रांति के पश्चात बहुत तेज हो गयी थी। हरित क्रांति से पहले मशीनों की कोई आवश्यकता ही नहीं थी, क्योंकि कृषि में उत्पादन फलन बिल्कुल गतिहीन था तथा पारंपरिक साधनों की सहायता से उत्पादन बढ़ने की इतनी संभावना नहीं थी कि किसानों को खेतों के लिए मशीनों का प्रयोग करना पड़े। मशीनों के प्रयोग पर आने वाली लागत इनके द्वारा लाई जाने वाली उत्पादन में वृद्धि की तुलना में अधिक लगती थी। इस समय जो मशीनें प्रयोग में लाई गई थीं उनके प्रयोग का उद्देश्य कुछ और ही था जैसे कि भूमि सुधारों के कानून से बचना।

हरित क्रांति के कारण श्रम की मांग बढ़ गई थी तथा उनके वेतनों में वृद्धि होने लगी थी। श्रम की इस कमी से निपटने के लिए मशीनों का प्रयोग अनिवार्य हो गया। हरित क्रांति के पश्चात्, जहां बड़े किसानों ने अपनी मशीनों की संख्या को बढ़ाया, वहीं मध्यम वर्ग के किसानों ने पहली बार मशीनों का प्रयोग किया। हरित क्रांति के पश्चात् मशीनों के प्रयोग में अन्य क्षेत्रों की तुलना में हरित क्रांति वाले राज्य आगे थे।

भारतीय अर्थव्यवस्था में मशीनीकरण के पक्ष में दिए गए तर्क : किसी देश के आर्थिक विकास के लिए कृषि क्षेत्र तथा औद्योगिक क्षेत्र दोनों के ही विकास की आवश्यकता होती है, परंतु फिर भी कृषि क्षेत्र के विकास को प्राथमिकता देने की आवश्यकता होती है, क्योंकि इस क्षेत्र के विकास की धीमी गति, औद्योगिक क्षेत्र के विकास में भी एक अड़चन बन सकती है। यंत्रीकरण या मशीनों का प्रयोग कृषि के विकास में (Machanization or Use of Machines in the development of Agriculture) सहायक सिद्ध हो सकता है, इस विषय में निम्नलिखित तथ्य सराहनीय हैं-

1. **बहुफसली कार्यक्रम :** कृषि का मशीनीकरण, बहुफसली कार्यक्रम (Multi Crop Program) के अपनाने में बहुत सहायक हो सकता है। बहुफसली प्रणाली में, एक फसल को काटने के पश्चात् दूसरी फसल के बोने के लिए, समय बहुत कम होता है। इसलिए, उत्पादन की कुछ प्रक्रियाओं को जल्दी-जल्दी सम्पन्न करना आवश्यक हो जाता है। यदि पहली फसल की कटाई तथा दूसरी फसल की बुवाई के लिए मशीनों की सहायता ली जाए, तो इन दोनों प्रक्रियाओं को समय पर पूरा किया जा सकता है, देश के कई भागों में, एक ही वर्ष में दो फसलों को उगाने के कार्यक्रम की सफलता मुख्यतया ट्रेक्टर तथा नलकूपों के प्रयोग के कारण हुई है और यदि नई टैक्नोलोजी के कारण, छोटी अवधि वाली फसलों को पैदा करने की संभावना और बढ़ जाती है, तथा दो के बजाय तीन फसलें भी साल में पैदा की जा सकती हैं, ऐसे कार्यक्रम की सफलता केवल इस बात पर निर्भर करेगी, कि कहां तक प्रत्येक फसल के उत्पादन की भिन्न-भिन्न प्रक्रियाएं और भी थोड़े समय में संपन्न की जा सकती हैं। इस स्थिति में मशीनों की आवश्यकता और बढ़ जाएगी। कृषि आगतों का पूरा लाभ तभी उठाया जा सकता है जबकि मशीनों का व्यापक प्रयोग हो।
2. **बेकार पड़ी भूमि को उपजाऊ बनाने में सहायक :** भारतवर्ष में भूमि का एक बड़ा भाग बंजर पड़ा है, मशीनों की सहायता से ही इसे उपजाऊ बनाया जा सकता है (Make barren land fertile)।
3. **श्रम की कमी की पूर्ति :** भारत एक श्रमप्रधान देश है, अतः यहां श्रम की बहुतायत है। फिर भी, इसके कुछ उपखंडों में, जैसे कि राजस्थान में श्रम की कमी है तथा इस कारण, वहां कृषि की भिन्न-भिन्न प्रक्रियाएं संतोषजनक ढंग से पूरी नहीं होतीं। ऐसे उपखंडों में मशीनों का प्रयोग आवश्यक हो गया है (To fill the labor shortage) ।
4. **भूमि का संरक्षण :** कृषि उत्पादन को ऊंचे स्तर पर रखने के लिए न केवल बंजर भूमि को खेती के योग्य बनाना होगा, अपितु जो भूमि इस समय खेती के अधीन है, उस भूमि के उपजाऊपन को भी बनाए रखना होगा। यह उपजाऊपन, बाढ़ आदि के कारण, प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। भूमि की ऊपरवाली उपजाऊ पट्टी या तो पानी में बह जाती है, या फिर खेत में पानी के काफी समय तक खड़ा रहने के कारण, खराब हो जाती है। भूमि के उपजाऊपन (Conservation of land) को बनाए रखने के लिए मशीनों का प्रयोग बहुत ही लाभकारी है।
5. **भूमिगत जल का प्रयोग :** सिंचाई के लिए, भूमि के नीचे वाले जल (Underground Water) का, एक बड़े पैमाने पर प्रयोग करने के लिए, बिजली या तेल से चलाए जाने वाले नलकूपों की व्यवस्था अनिवार्य है। भूमि के नीचे वाले जल का प्रयोग

टिप्पणी

अब इसलिए आवश्यक हो गया है, क्योंकि वर्ष 1965-66 के पश्चात् नहरों द्वारा उपलब्ध कराये गये जल की मात्रा में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई है।

6. **उत्पादन लागत में कमी :** कृषि यंत्रीकरण उत्पादन लागत में कमी (Reduction in production cost) करता है। यह बात कई अनुसंधानों से निष्कर्ष के रूप में कही गयी है। राष्ट्रीय एकता परिषद के नमूना सर्वेक्षण के अनुसार ट्रैक्टेयर से खेती करने की प्रति हैक्टर लागत 100 रु. आती है, जबकि वही काम यदि बैलों की सहायता से किया जाता है तो लागत 160 रु. आती है इस प्रकार यांत्रिक कृषि के अतर्गत व्यय कम होता है।

7. **गैर-कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसर :** मशीनीकरण के कारण कृषि क्षेत्र में बेरोजगारी पैदा हो सकती है, परंतु मशीनीकरण के कारण बेरोजगार हुए श्रमिकों में से कई, इन नये व्यवसायों में काम पा लेंगे (Employment opportunities in non-farming sector) ।

यंत्रीकरण से हानियां

अब तक हमने उन विद्वानों के तर्कों का वर्णन किया जो कि यंत्रीकरण के पक्षधर हैं, लेकिन उन लोगों की भी कमी नहीं है, जो मानते हैं कि यंत्रीकरण भारतीय कृषि के हित में नहीं है (disadvantages of Mechanization)। यहां हम उनके द्वारा दिए गए तर्कों की व्याख्या कर रहे हैं–

1. **जोतों का अनार्थिक आकार :** भारत में जोतों का आकार बहुत छोटा है (Uneconomical Size of Holdings) तथा यह मशीनों के प्रयोग में बाधक साबित होता है। जोतों का आकार न केवल छोटा ही है अपितु ये कई भागों में बंटी हुई है तथा प्रत्येक भाग एक-दूसरे से कुछ दूरी पर स्थित है। कोई भी किसान जिसकी जोत का आकार दो या तीन एकड़ से अधिक नहीं है, एक ट्रैक्टर, कटाई की मशीन या दाना निकालने वाली मशीन नहीं खरीदेगा। संसार के विकसित देशों में, जहां कृषि में मशीनों का प्रयोग हो रहा है जोतों के आकार बहुत बड़े हैं जैसे, अमेरिका में जोतों का औसत आकार वर्ष 1988 में 453 एकड़, कनाडा में 572 एकड़ (1986), यू.के. में 268 एकड़ (1988) था। दूसरी ओर भारत में जोतों का औसत आकार 1991 में केवल 3.92 एकड़ था। 2001-02 में भारत में जोतों का आकार और भी कम हो गया था। उस वर्ष यह केवल 3.66 एकड़ था।

2. **बेरोजगारी बढ़ने की संभावना :** भारत में पहले से ही बेरोजगारी की समस्या काफी गंभीर है तथा कृषि के मशीनीकरण से यह समस्या और भी चिंताजनक हो जाएगी (Unemployment likely to rise)। श्रमिक जो कृषि क्षेत्र में मशीनों के प्रयोग के कारण विस्थापित हो जाएंगे हो सकता है वे गैर-कृषि क्षेत्र में आसानी से रोजगार न पा सकें। संसार के विकसित देशों में यंत्रीकरण इसलिए सफल हुआ क्योंकि वहां श्रम की कमी थी और इसके साथ ही गैर-कृषि क्षेत्र काफी विकसित हो रहा था। भारत में स्थिति इसके एकदम विपरित है। फिर कृषि के यंत्रीकरण के कारण काफी ज्यादा पशुश्रम भी विस्थापित हो जाएगा।

3. **किसानों की दयनीय स्थिति :** भारतीय किसान अधिकांशत: निर्धनता के दुष्चक्र में फंसे हुए हैं (Pathetic condition of farmers), जो अपने जीवन का निर्वाह मुश्किल से करते हैं, इस स्थिति में क्या वे मशीन को खरीद सकते हैं?

4. **पेट्रोल, डीजल की ऊंची कीमतें :** भारत में पहले ही पेट्रोलियम पदार्थ बाहर से आयात करने पड़ते हैं (Higher cost of petrol and diesel), कृषि के मशीनीकरण के कारण इसका खर्च और बढ़ जाएगा तथा स्थिति गंभीर हो जाएगी।

5. **किसानों की अज्ञानता :** यंत्रीकरण तब ही सफल हो सकता है, जबकि किसान इसके प्रति जागरुक हों तथा मशीनों की कार्यविधि को भली-भांति जानते हों। परंतु भारतीय किसान अधिकाशः अशिक्षित हैं, इसीलिए मशीनों के लाभ-हानि के विषय में अनभिज्ञ हैं (Farmers are ignorant)।

भारत सरकार ने भी कृषि के यंत्रीकरण में कई प्रकार से सहायता की है। सरकार ने न केवल कृषि में प्रयोग की जाने वाली मशीनों के प्रयोग को प्रोत्साहित किया है, अपितु किसानों को ऐसी मशीनों को खरीदने के लिए उचित दरों पर ऋण उपलब्ध कराने की भी व्यवस्था की है, साथ ही सरकार ने इन मशीनों को चलाने के लिए प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की है। सरकार ने मशीनों की मरम्मत के लिए ग्रामीण स्तर पर केंद्र खोले हैं।

अतः अंत में कहा जा सकता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि यन्त्रीकरण के प्रयोग की काफी संभावनाएं हैं। परंतु यंत्रीकरण इस उद्देश्य से किया जाना चाहिए ताकि उत्पादन तथा रोजगार दोनों में वृद्धि हो। कृषि उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि के लिए एक तरफ वर्तमान उपकरणों तथा तकनीक में सुधार लाने की आवश्यकता है, तो दूसरी तरफ भारतीय कृषि के अनुकूल नए यंत्रों तथा तकनीक का प्रबंध किया जाना भी आवश्यक है।

भारत में कृषि क्षेत्र में उत्पादकता बढ़ाने के लिए पहला संगठित प्रयास 1960-61 में गहन कृषि जिला कार्यक्रम के लिए चुने गए सात जिलों के लिए पायलट परियोजना के रूप में किया गया था। इस प्रयोग में मिली सफलता से उत्साहित होकर अक्टूबर 1965 में इस नीति को 'गहन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम' के अंतर्गत चुने गए 114 जिलों में लागू किया गया। भारत सरकार को दूसरे देशों की सफलताओं से कृषि विकास की संभावनाओं का पता चला। भारतीय कृषि अनुसंधान केंद्रों ने भी मक्का, बाजरा और ज्वार की संकर किस्में खोज निकालीं। इनके द्वारा फसलों की प्रति हैक्टेअर उपज में वृद्धि करना संभव हुआ। नई कृषि नीति की सफलता के लिए आवश्यक था कि सिंचाई की नियंत्रित व्यवस्था के साथ-साथ रासायनिक उर्वरकों, संकर बीजों और कीटनाशकों का उपयोग किया जाए। नई कृषि युक्ति को 1966 में एक पैकेज कार्यक्रम के रूप में शुरू किया गया और इसे अधिक उपज देने वाली किस्मों के कार्यक्रम की संज्ञा दी गई। नई कृषि युक्ति के परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में काफी वृद्धि हुई है। इसे हरित क्रांति नाम दिया गया।

हरित क्रांति का ग्रामीण रोजगार पर प्रभाव

कृषि उत्पादन, विशेषतया गेहूं तथा चावल के उत्पादन में, बहुत वृद्धि हुई थी, परंतु इसके साथ ही हरित क्रांति ने श्रम की मांग में भी वृद्धि की। इसका मुख्य कारण था उन्नत बीजों तथा उर्वरक के प्रयोग पर आधारित कृषि की नवीन टैक्नोलॉजी का स्वरूप। इस टैक्नोलॉजी के अंतर्गत सिंचाई की सुविधाओं, उर्वरक तथा कीटनाशक दवाइयों के अधिक प्रयोग की आवश्यकता थी तथा इन सब के प्रयोग के लिए अधिक श्रम की आवश्यकता थी। पौधों के प्रतिरोपण, अपतृणों को हटाने के लिए अधिक श्रम की आवश्यकता थी। उत्पादन बढ़ जाने के कारण, फसलों की कटाई के समय भी अधिक श्रम की आवश्यकता थी। नई टैक्नोलॉजी के अंतर्गत एक ही वर्ष में एक से अधिक फसलों को उगाए जाने की योजना

थी। इस कारण भी श्रम की मांग में बहुत वृद्धि हुई। नवीन तकनीक के अंतर्गत मशीनों का प्रयोग काफी बढ़ गया था। वह ग्रामीण रोजगार पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता था। परंतु विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि यंत्रीकरण ने ग्रामीण रोजगार को ज्यादा प्रभावित नहीं किया था। जहां ट्रैक्टर के प्रयोग से एक ओर श्रमिकों की मांग कम हो जाती, वहीं फसल की कटाई आदि के समय श्रम की मांग बढ़ जाती। कहने का मतलब यह है कि नवीन टैक्नोलॉजी को अपनाने से जिसका उद्देश्य न केवल प्रत्येक फसल की उत्पादकता को बढ़ाना है, अपितु एक वर्ष में दो फसलों को और यदि हो सके तो तीन फसलों को उगाना है, यदि मशीनों का प्रयोग भी किया जाता है तो भी रोजगार बढ़ सकता है।

हनुमंत राव ने पंजाब के एक अध्ययन में बताया कि फसल के उत्पादन में वृद्धि के कारण श्रम की मांग, टैक्टर के होते हुए भी बढ़ गई थी। इसी प्रकार के निष्कर्ष अन्य अर्थशास्त्रियों जैसे भल्ला, त्यागी तथा वी.के.आर.वी. राव के अध्ययनों से सामने आए हैं। पंजाब तथा हरियाणा में जहां कि हरित क्रांति आई थी, कृषि श्रमिक (पुरुष तथा स्त्री) के वेतनों में वृद्धि, देश के अन्य भागों में, इसी प्रकार की वृद्धि की तुलना में अधिक थी।

हां, एक अन्य बात जरूर देखने में आई कि कृषि क्षेत्र में महिला श्रमिकों की पुरुष श्रमिकों की तुलना में, अधिक वृद्धि का मुख्य कारण यह है कि कृषि की उन प्रक्रियाओं में जहां महिलाएं काम करती हैं, अब भी मशीनों का अधिक प्रयोग नहीं होता है जैसे फसलों का बीजना, पौधों को एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर लगाना तथा फसलों की कटाई। परंतु पुरुष श्रमिक कृषि संबंधी अन्य व्यवसायों में भी कार्य करते हैं, इसलिए उनकी आय में वृद्धि दर महिला श्रमिकों की अपेक्षा अधिक थी।

अत: निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि वर्ष 1982-83 तक हरित क्रांति वाले क्षेत्रों में कृषि में अतिरिक्त श्रमिकों को रोजगार मिला था (Green Revolution has increased rural employment opportunities)।

हरित क्रांति की उपलब्धियां

नवीन कृषि नीति की उपलब्धियां निम्न प्रकार हैं-

1. **रासायनिक उर्वरकों के उपभोग में तेजी से वृद्धि–** नवीन कृषि नीति के परिणामस्वरूप रासायनिक उर्वरकों के उपभोग की मात्रा में तेजी से वृद्धि हुई है। 1960-61 में रासायनिक खाद का उपयोग प्रति हैक्टेअर 1.9 किलोग्राम होता था जो अब बढ़कर 72 किलोग्राम हो गया है।
2. **लघु सिंचाई योजनाएं–** नवीन कृषि नीति के तीन महत्वपूर्ण अंग हैं- अच्छे बीज, खाद व सिंचाई। इनमें भी लघु सिंचाई को विशेष महत्व दिया गया है।
3. **पौध संरक्षण**- नवीन कृषि नीतियां या हरित क्रांति के अंतर्गत पौध संरक्षण का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है।
4. **बहुफसली कार्यक्रम**- बहुफसली कार्यक्रम का उद्देश्य एक ही भूमि पर वर्ष में एक से अधिक फसल उगाकर उत्पादन बढ़ाना है। 1967-68 में बहुफसली कार्यक्रम 36 लाख हैक्टेअर भूमि में लागू किया गया था, परंतु 1993-94 में इसका क्षेत्रफल बढ़कर 690 लाख हैक्टेअर हो गया है।

टिप्पणी

5. **आधुनिक कृषि उपकरणों का उपयोग**- वर्तमान की कृषि क्रांति में आधुनिक कृषि उपकरणों, जैसे- ट्रैक्टर, थ्रेशर, हारवेस्टर, बुलडोजर आदि ने काफी योगदान दिया है।
6. **कृषि सेवा केंद्र**- तकनीकी व्यक्तियों में व्यावसायिक साहस की क्षमता को विकसित करने के उद्देश्य से कृषि सेवा केंद्र स्थापित करने की योजना लागू की गई है।
7. **कृषि उद्योग निगम**- सरकारी नीति के अनुसार 17 राज्यों में कृषि उद्योग निगमों की स्थापना की गई है। इन निगमों का कार्य कृषि उपकरण व मशीनरी की पूर्ति तथा उपज के प्रसंस्करण एवं भंडारण को प्रोत्साहन देना है।
8. **विभिन्न निगमों की स्थापना**- हरित क्रांति की सफलता मुख्य रूप से दो बातों पर निर्भर करती है- एक तो अधिक उपज देने वाली किस्में व दूसरे, उत्तम सुध रे हुए बीज। इसके लिए 4000 कृषि फार्म स्थापित किए गए हैं और 1963 में एक निगम– राष्ट्रीय बीज निगम के नाम से स्थापित किया गया है।

कम उत्पादकता होने के कारण

यद्यपि योजनावधि में कृषि उत्पादकता में बहुत सुधार हुआ है तथापि आज भी यह विश्व के विकसित तथा अल्पविकसित दोनों ही प्रकार के देशों की तुलना में कम है (Agricultural prodeucttivity is low)। उत्पादकता कम होने के अनेक कारण हैं जिन्हें हम तीन श्रेणियों में रख सकते हैं।

क. सामान्य कारण (General Reasons)

ख. संस्थागत कारण (Institutional Reasons)

ग. तकनीकी कारण (Technical Reasons)

क. सामान्य कारण

1. **सामाजिक वातावरण**- भारतीय गांवों का सामाजिक वातावरण (Social Environment) कृषि विकास में बाधक समझा जाता है। रूढ़ियों से ग्रस्त अंधविश्वासी, भाग्यवादी एवं अज्ञानी किसान को उत्पादकता के कम स्तर के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है। सतही ढंग से समस्या पर विचार करने पर यह ठीक लगता है।
2. **भूमि पर जनसंख्या का दबाव**- भारत में भूमि पर जनसंख्या का सर्वाधिक दबाव (Population Pressure on Land) है। वस्तुत: गैर-कृषि क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में संतोषजनक वृद्धि न हो पाने के कारण यह लगातार बढ़ता जा रहा है। इससे जोतों के विखंडन की समस्या जन्म लेती है और उत्पादकता कम हो जाती है।
3. **भूमि का अध:पतन**- भारत सरकार द्वारा हाल में लगाए गए एक अनुमान के अनुसार देश की कुल 32 करोड़ 90 लाख हैक्टेअर भूमि में से लगभग आधी भूमि अध:पतन (Degradation of Land) की शिकार है। लगभग 43 प्रतिशत भूमि पर अत्यधिक अध:पतन हो चुका है जिसके परिणामस्वरूप 33-67 प्रतिशत उत्पादकता हानि हो रही है और लगभग 5 प्रतिशत भूमि तो अब कृषि योग्य ही नहीं रह गई है।

टिप्पणी

ख. संस्थागत कारण

1. **भूस्वामित्व प्रणाली**- भारतीय कृषि के अल्पविकास तथा उत्पादिता के नीचे स्तर में सुधार हेतु स्वतंत्रता के बाद मध्यस्थों को समाप्त करने के लिए जो कानून बनाये गए उनके बावजूद भूमि का थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में केंद्रीकरण बना रहा (Inappropriate land ownership system)। वास्तविक खेती करने वालों को जमींदारों से कोई खास भूमि नहीं मिली। आज भी अधिकांश काश्तकारों की पट्टेदारी सुरक्षित नहीं है। उन्हें अनुचित रूप से अधिक लगान देना पड़ता है। स्पष्ट है कि यदि कृषि में निवेश की मात्रा को बढ़ाना है तो किसानों के मार्ग में आने वाली समस्याओं को खत्म करना होगा।
2. **साख एवं विपणन संबंधी सुविधाओं का अभाव**- प्रायः यह मान लिया जाता है कि भारतीय किसान के निर्णय मूल्य प्रेरणाओं द्वारा (Lack of credit and marketing facilities) प्रभावित नहीं होते। भारतीय किसान प्रायः विपणन सुविधाओं के अभाव में अथवा उचित ब्याज पर साख न मिलने पर खेती में जरूरी मात्रा में निवेश नहीं कर पाते हैं।
3. **अनार्थिक जोतें**- भारत में राष्ट्रीय सेंपल सर्वेक्षण के अनुसार 1961-62 में लगभग 52 प्रतिशत जोतें दो हैक्टेअर से कम थीं। 2000-01 में लगभग 82 प्रतिशत जोतें दो हैक्टेअर से कम थीं। ये जोतें न केवल छोटी हैं अपितु बहुत छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटी हैं। इसलिए इन पर आधुनिक टैक्नोलॉजी का प्रयोग नहीं कर सकते (Uneconomic Holdings) ।

ग. तकनीकी कारण

1. **पुरानी कृषि तकनीक**- भारतीय कृषि में पुरानी तकनीक (Ancient farming techniques) प्रयोग की जाती है। इसलिए कृषि की उत्पादकता कम है।
2. **सिंचाई की अपर्याप्त व्यवस्था**- भारत में कृषि के अधीन कुल क्षेत्र के केवल 42.8 प्रतिशत पर सिंचाई की व्यवस्था है और लगभग 57 प्रतिशत भाग आज भी पूर्णरूपेण वर्षा पर आधारित है (Inadequate irrigation system)।

कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ाने के उपाय

कम उत्पादकता के ऊपर बताए गए कारणें से यह भी पता चलता है कि उत्पादकता को कैसे बढ़ाया जाए। उत्पादकता को बढ़ाने के लिए निम्न दिशाओं में प्रयास जरूरी हैं (Measures to increase agricultural production and productivity)-

1. **भूमि सुधारों का कार्यान्वयन**- कृषि उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए भूमि सुधार कार्यक्रमों को प्रभावशाली ढंग से लागू किया जाना आवश्यक है (Implementation of land reforms)। इसके लिए ऐसी व्यवस्था की जाए कि कृषि जोत का आकार बहुत छोटा न रहे और उत्पादकता बढ़ सके।
2. **नवीन कृषि तकनीकों का व्यापक प्रयोग**- कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए नवीनतम तकनीक का प्रयोग आवश्यक है (Extensive use of innovative farming techniques)। इसके लिए खेतों पर इन तकनीकों का प्रदर्शन किया जाए जिससे प्रेरित होकर किसान इन तकनीकों को अपनाए। इसके विशेषज्ञों द्वारा किसानों को उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

टिप्पणी

3. **सिंचाई सुविधाओं का विस्तार**- कृषि की वर्षा पर निर्भरता को कम किया जाना चाहिए। फसल सघनता में वृद्धि के लिए कृषि सिंचाई की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए (Expansion of irrigation facilities)।
4. **कृषि आदानों की उचित व्यवस्था**- कृषि उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए किसानों को रासायनिक खादों, उन्नत किस्म के बीजों, कीटनाशक एवं खरपतवार नाशक औषधियों को उचित समय एवं उचित मूल्य पर उपलब्ध कराया जाए (Proper arrangement of agricultural inputs)।
5. **विपणन व्यवस्था में सुधार**- कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के लिए यह भी आवश्यक है कि वर्तमान विपणन व्यवस्था के दोषों को दूर किया जाए (Marketing system improvement)।
6. **यंत्रीकरण**- भारत में जनाधिक्य है इसलिए यहां कृषि का यंत्रीकरण बेरोजगारी पैदा कर सकता है इसलिए केवल महत्वपूर्ण यंत्रों का ही उपयोग किया जाना चाहिए और छोटे किसानों को भी किराए पर इन यंत्रों व उपकरणों को लेने की व्यवस्था होनी चाहिए (Arrangement for taking equipments on rent)।
7. **साख-व्यवस्था में सुधार**- किसान नवीन तकनीक को तभी अपना सकता है जब उसके पास पर्याप्त मात्रा में धन हो। किसानों को पर्याप्त मात्रा में पूंजी उपलब्ध कराने के लिए यद्यपि सरकारी साख-समितियों के माध्यम से प्रयास किए गए हैं, परंतु देखा गया है कि इन समितियों से भी बड़े किसान ही लाभ उठाते हैं। अत: छोटे किसानों के हितों को भी ध्यान में रखा जाए (Improvement in credit system)।
8. **जनसंख्या का कम दबाव**- कृषि पर लगातार बढ़ रहे जनसंख्या के भार को कम करने के लिए कुटीर उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन देना चाहिए (Less pressure on land)।
9. **वैज्ञानिक खेती**- खेती वैज्ञानिक (Scientific farming) ढंग से की जानी चाहिए ताकि बहु-फसली कार्यक्रमों का विस्तार करके कृषि उत्पादन को बढ़ाया जा सके।
10. **कृषि पदार्थों के मूल्यों में स्थिरता**- कृषि मूल्यों में स्थिरता (Stability in agricultural prices) कृषक को अपनी खेती में पर्याप्त मात्रा में विनियोग करने के लिए प्रोत्साहित करती है। इसके लिए सरकार को बुवाई से पहले ही फसलों के न्यूनतम मूल्य घोषित कर देने चाहिए।
11. **कृषि विकास कार्यक्रमों में समन्वय**- कृषि उत्पादकता में वृद्धि के लिए सरकार एवं गैर-सरकारी संस्थाओं के द्वारा जो विभिन्न कार्यक्रम अपनाए जा रहे हैं उनमें उचित समन्वय एवं सहयोग होना चाहिए (Coordinating agricultural development programs)।
12. **कृषि अनुसंधान**- देश में कृषि अनुसंधान (Agricultural Research) को बढ़ावा दिया जाना चाहिए और अनुसंधान परिणामों को किसानों तक पहुंचाना चाहिए ताकि उन्हें अपनाकर वे उत्पादकता बढ़ा सकें।
13. **फसल बीमा योजना का विस्तार**- कृषि फसलों की सफलता प्रकृति की अनुकूलता पर निर्भर करती है, प्रकृति अनिश्चित होती है, इसलिए फसल बीमा

टिप्पणी

योजना को विस्तार से लागू किया जाना चाहिए (Extension of crop insurance scheme)।

हरित क्रांति की निरंतरता के लिए सुझाव (Suggestions for Sustainability of Green Revolution)

हरित क्रांति को सफल एवं निरंतर बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं-

1. **सिंचाई के साधनों का विकास**- सिंचाई के विकास के लिए सरकार को छोटे तथा सीमांत किसानों को कम दर पर ऋण देने चाहिए ताकि वे भी पंपसेट आदि लगा सकें (Development of Irrigation)।
2. **छोटे कृषकों को भी हरित क्रांति का भागीदार बनाया जाए**- छोटे किसानों को भी हरित क्रांति क्षेत्र में लाया जाए (Small farmers should also be made partners of Green Revolution)। इसके लिए सरकार को चाहिए-
   (i) भूमि सुधार कार्यक्रमों को तेजी से लागू किया जाए।
   (ii) किसानों को साख सुविधाएं दी जाएं।
   (iii) छोटे यंत्रों को किराए पर लेने की सुविधा भी होनी चाहिए।
   (iv) छोटे किसानों को सहकारी कृषि समितियों में शामिल होने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए।
3. **व्यापारिक फसलों को कृषि क्रांति में शामिल करना**- अभी तक खाद्यान्नों को ही हरित क्रांति में शामिल किया गया है। इसमें व्यापारिक फसलों जैसे कपास, पटसन, गन्ना, तिलहन आदि को भी शामिल किया जाना चाहिए (Inclusion of commercial crops in the agricultural revolution)।
4. **एकीकृत फार्म नीति**- हरित क्रांति के लिए एकीकृत फार्म नीति (Integrated farming policy) अपनाई जानी चाहिए, जिससे कि फार्म तकनीक व आदानों के मूल्यों के संबंध में एक उचित नीति अपनाई जा सके तथा किसानों को उन्नत बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवाइयां तथा कृषि उपकरण उचित मूल्य तथा उचित समय पर मिल सकें।
5. **कृषि वित्त की सुविधा**- हरित क्रांति से लाभ उठाने के लिए आवश्यक है कि किसानों को वित्तीय सुविधाएं दी जाएं (Agricultural Finance Facility)।
6. **संस्थागत परिवर्तनों को प्रोत्साहन**- संस्थागत प्रोत्साहन जैसे- भूमि सुधार आदि को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है (Encourage institutional change)।
7. **ग्रामीण रोजगार अवसरों में वृद्धि**- हरित क्रांति में मशीनों का प्रयोग होता है। इससे कुछ किसानों के बेरोजगार हो जाने की संभावना हो जाती है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों का विद्युतीकरण किया जाए ताकि कुटीर उद्योग-धंधों में इन लोगों को रोजगार मिल सके Increase in rural employment opportunities)।
8. **फसलों का बीमा**- प्राकृतिक आपदाओं द्वारा किए नुकसान की भरपाई के लिए फसलों का बीमा करना बहुत जरूरी है (Crop insurance)।

हरित क्रांति भारत की आर्थिक समृद्धि का एक रूप है। इसे और अधिक सफल बनाने के लिए उपरोक्त सभी उपायों को अपनाना चाहिए। हमें अभी बहुत कुछ करना

बाकी है। जब हम दृढ़ निश्चयी होकर सभी उपायों को अपनाएंगे तभी तो समूची अर्थव्यवस्था में एक प्रभावशाली गति आ सकेगी।

3.2.2 पंचायती राज एवं स्थानीय स्वशासन

टिप्पणी

भारत की वर्तमान स्थानीय ग्रामीण शासन व्यवस्था को पंचायती राज (Panchayati Raj–Local self-governnance) कहते हैं। भारत की यह वर्तमान गांव पंचायत व्यवस्था, यूं तो मौर्य काल एवं वैदिक काल में भी अपने मूल एवं स्वतंत्र रूप से कार्य करती थी। परंतु बीच में अनेक व्यवधानों के कारण इसमें अनेक परिवर्तन एवं नये आयाम जुड़ते–घटते गये। ग्राम पंचायतें भारतीय प्राचीन समाज के स्वायत शासन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग रही हैं। आधुनिक प्रजातंत्र की भावना का अर्थ उस व्यवस्था से लिया जाता है, जिसमें, जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा प्रजा के ऊपर शासन किया जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रजातंत्रीय व्यवस्था वह शासन व्यवस्था होती है जिससे कि प्रजा के चुने हुए प्रतिविधियों द्वारा ही शासन व्यवस्था की जाती है।

भारत में सामंती व्यवस्था की समाप्ति एक आवश्यकता बन गई थी जिसका मूल कारण औद्योगिकीकरण था। 1857 के विद्रोह के पश्चात् बार्टल फ्रेयर ने कहा था कि, "प्रशासन से भारतीयों को जोड़ा जाना आवश्यक हो गया है।"

वास्तव में व्यवस्थापिकाओं में भारतीय प्रतिनिधित्व न होने के कारण, ब्रिटिश सरकार भारतीय जनमानस की भावनाओं से अनभिज्ञ रही। इस आवश्यकता को 1773 के रेगुलेटिंग एक्ट तथा 1833 के चार्टर एक्ट में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस कड़ी में 1853 में मद्रास एवं बम्बई के चार जजों को साथ लेकर मुख्य न्यायाधीश एवं सुप्रीम कोर्ट की स्थापना हुई। 1892 में भारतीय परिषद विधेयक को पारित करते हुए लार्ड कर्जन ने कहा था कि इस विधेयक का उद्देश्य भारत सरकार के आधार को विस्तृत करना तथा गैर सरकारी एवं भारतीय तत्वों को प्रशासनिक कार्यों में भाग लेने के अधिक अवसर प्राप्त करवाना है। इसी प्रकार लार्ड डफरिन ने भी भारतीय शासन व्यवस्था में भारतीयों की अधिकाधिक भागीदारी की आवश्यकता बताई। उनका कहना था कि परिषदों के अन्दर लोकप्रिय सदस्यों के प्रवेश को सम्भव बनाये जाने के लिए चुनाव सिद्धांत को अपनाया जाना चाहिए। लार्ड स्वैन का मत था कि भारतीय परिषदों (Council) में कोई भी सुधार, भारतीय जनता के लिए हितकर नहीं हो सकता जब तक कि उसमें भारतीय आम जनता का चुनाव द्वारा चुनकर आना निश्चित नहीं हो जाता।

बाद में सन् 1905 में कर्जन के स्थान पर मिन्टो भारत के वायसराय बने एवं उन्होंने डफरिन के साथ सहमति प्रदान करते हुए भारत में केन्द्रीय एवं प्रांतीय व्यवस्थापिकाओं एवं प्रतिनिधि सभाओं और कार्यकारिणी परिषदों के गठन का मार्ग प्रशस्त किया।

ग्रामीण स्थानीय स्वशासन प्रबंध में नये प्रयोग

भारत में ब्रिटिश राज की समाप्ति के पश्चात् स्थानीय, स्वशासन व्यवस्था में अनेक नये प्रयोग किये गये। इनका मुख्य कारण जिला बोर्ड (District Board) आधारित शासन व्यवस्था की कारगुजारी से स्थानीय स्तर पर नागरिक एवं नेतृत्व सन्तुष्ट नहीं था। इस असन्तुष्टि का कारण स्थानीय शासन का मुख्य तौर पर जनपद स्तर पर होना था। मध्य

टिप्पणी

प्रदेश सरकार ने सन् 1948 में जिला बोर्ड के स्थान पर ''जनपद सभा'' का गठन कर दिया, जिसका प्रारंभिक उद्देश्य स्थानीय प्रशासन के दायित्वों में परिवर्तन करना था, ताकि ग्रामीण स्तर पर प्रशासन व्यवस्था को मजबूती प्रदान की जा सके। तत्पश्चात्, पंजाब, मद्रास एवं आंध्रप्रदेश आदि राज्य सरकारों ने स्थानीय स्तर पर ग्रामीण शासन व्यवस्था के लिए अनेक परिवर्तन के प्रस्ताव पारित किये। इन प्रस्तावों के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित रूप से समझे जा सकते हैं–

- जिला बोर्ड के सभी कार्यों को विकेन्द्रीकृत किया जाएगा।
- इस विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में, जिला बोर्ड द्वारा किये जा रहे प्रशासनिक कार्यों को अनेक स्तरों पर विभाजित कर दिया जाये, जैसे–
  - o उप जिला स्तर पर
  - o तहसील स्तर पर

    या
  - o तालुका स्तर पर

उपरोक्त नई बॉडी (Body) गठित की जाने का यह भी उद्देश्य था कि ये शासन एवं पंचायत स्तर पर, एक ठोस मध्यस्थ का कार्य सम्पादित करें।

- इस प्रकार की इकाइयों को अलग राज्यों में अलग–अलग नाम दिये गये जैसे–
  - o पंजाब–तहसील समिति
  - o आंध्रप्रदेश खण्ड समिति
  - o मद्रास–पंचायत संघ
  - o मध्य प्रदेश–जनपद सभा

इन राज्यों में इन समितियों का उद्देश्य सलाहकार, पर्यवेक्षण, एवं पारस्परिक समन्वय स्थापित करने का था।

- पंजाब राज्य ने स्थानीय सांसदों एवं विधायकों को इन इकाइयों से सम्बन्ध रखने के सिद्धांत को समाप्त कर दिया जबकि आंध्रप्रदेश ने इनका संबंध, जिला स्तर पर जारी रखने का निर्णय लिया।
- सभी इकाइयों में अनुसूचित जाति के अनुभवी लोगों को सम्मिलित किया गया।
- इन इकाइयों में विभिन्न विषयों पर अनेक पृथक समितियां बनाने का प्रावधान कर दिया गया जैसे–
  - o जन स्वास्थ्य
  - o लोक निर्माण
  - o शिक्षा
  - o कृषि
  - o वित्त
- उपरोक्त के अलावा एक विशेष समिति का गठन भी किया गया जो कि इन दोनों के मध्य, समन्वय का कार्य सम्पादित करने का कार्य जनपद एवं ग्रामीण स्तर पर करे।

टिप्पणी

उपरोक्त मॉडल बहुत अधिक सफल नहीं हो पाया। जिसके परिणामस्वरूप सन् 1959 में प्रजातंत्रीय विकेन्द्रीकरण किया गया। इस मॉडल की प्रमुख कमियां निम्न प्रकार से थीं–

- केन्द्र का अधिक नियंत्रण
- अधिकारियों एवं नागरिकों के मध्य सामंजस्य का अभाव
- डिप्टी क्लेक्टर को मुख्य अधिकारी नियुक्त किया गया था जिसका प्रमुख कार्य कर संग्रह करना हो गया जबकि विकास कार्य करने का काम पृष्ठभूमि में चला गया।
- समुचित नेतृत्व का अभाव
- राजनीतिक दखल, अस्थिरता

प्रजातंत्रीय विकेन्द्रीकरण (1959)

वर्ष 1959 भारत के ग्रामीण स्थानीय स्वशासन में प्रमुख स्थान रखता है। मेहता समिति की 1958 की रिपोर्ट आने के पश्चात् भारत में पंचायती राज स्थापित करने की मुहिम शुरू हो गई। मेहता समिति की स्थापना भारत सरकार ने सन् 1958 में की थी। इस समिति का मुख्य उद्देश्य वित्तीय एवं विकास कार्यों की दक्षता के प्रश्न पर जाँच करना था। यह महत्वपूर्ण था कि यह जानकारी सरकार को हो कि स्थानीय संस्थाओं की वित्तीय एवं विकास संबंधी योजनाओं की वास्तविक स्थिति क्या है। इस समिति ने सन् 1958 में ही अपनी रिपोर्ट सरकार को दे दी थी, जिसमें स्थानीय स्तर पर अनेक परिवर्तन करने की शिफारिश भी की गई थी। समति की प्रमुख अनुशंसाएं एवं तहकीकातें निम्न प्रकार से थीं–

- जब तक हम प्रजातंत्रीय संस्थाओं एवं स्थानीय स्तर पर पर्यवेक्षण एवं देख–रेख की व्यवस्था का निर्माण नहीं करते, तब तक हम, विकास के क्षेत्र में स्थानीय हित एवं स्थानीय पहल को जाग्रत नहीं कर सकते।
- स्थानीय स्तर पर पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए।
- स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार उपयुक्त शक्तियां एवं वित्तीय अधिकार दिये जाने की आवश्यकता है।
- स्थानीय हितकारी कार्यक्रम हेतु धन खर्च करने के लिए स्थानीय स्तर पर ही वित्त उपलब्ध करवाया जाए, जिससे कि स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार धन व्यय किया जा सके।
- स्थानीय स्तर पर लोगों का प्रतिनिधित्व बहुत ही निम्न स्तर का है, जिस कारण विकास कार्यों में लोगों का बहुतायत में सहयोग हो ही नहीं पाता है।
- सरकार के कार्यक्रमों को नागरिकों के कार्यक्रमों में परिवर्तित नहीं किया जा रहा है।

उपरोक्त आधार पर मेहता समिति ने एक त्रिस्तरीय पंचायती राजव्यवस्था स्थापित करने की अनुशंसा की जिसके द्वारा स्थानीय स्वशासन पर आधारित शासन को सुनिश्चित किया जा सके। भारत में वर्तमान समय में यही पंचायती राज व्यवस्था अधिकांश राज्यों में लागू है। इस समिति ने ''पंचायती राज'' का पहली बार ''स्थानीय स्वशासन'' के रूप में प्रयोग किया। इसी का परिणाम यह हुआ कि भारत में पंचायती

टिप्पणी

राज का अर्थ ''ग्रामीण स्थानीय स्वशासन'' से ही लिया जाने लगा है। समिति की सिफारिशों के तहत पंचायती राज को लागू करने के लिए निम्नलिखित अनुशंसाएं की गई थीं–

- स्थानीय स्तर का विकास, स्थानीय स्तर पर बनाई गई इकाइयों के द्वारा करवाया जाना निश्चित किया जाए।
- समिति का मानना था कि ग्राम पंचायत इस कार्य के लिए सबसे अच्छी संस्था हो सकती है।
- ग्राम पंचायत में, ग्राम प्रतिनिधियों के पर्यवेक्षण में कुछ सह सदस्यों को विकास कार्यों की जिम्मेदारी दी जानी चाहिए।
- इकाई एवं पंचायत के गठन में चुनाव का प्रावधान किया जाना चाहिए।
- जिला परिषद, शुद्ध रूप से एक वैधानिक संस्था होगी जिसका कार्य समन्वय एवं पर्यवेक्षण कार्य करना होगा।
- ग्रामों के बजट की ग्राम स्तर पर ही ग्राम समितियों के माध्यम से जांच की जाए।
- ग्राम पंचायत के पास अपने स्वयं के आर्थिक संसाधन होने चाहिए।
- ग्राम स्तर पर प्रत्येक गांव विकास करने की एक संस्था के रूप में कार्य करे।
- ग्राम पंचायतों का कार्य निम्नलिखित सुविधाओं की व्यवस्था करना भी होना चाहिए–
  - o जल आपूर्ति
  - o प्रकाश एवं ऊर्जा
  - o साफ–सफाई, गन्दे नाले–नालियां
  - o सड़कों का निर्माण एवं कारखाने आदि

भारत में पंचायती राज को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से निरन्तर प्रयास होते रहे हैं जिनके सुखद परिणामस्वरूप, पंचायतों के कार्य क्षेत्र एवं जनशक्ति में काफी सुधार आया है। स्थानीय ग्रामीण नागरिकों की भागीदारी बढ़ाना ही इस प्रजातांत्रिक व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य निर्धारित किया गया है। यही कारण है कि पंचायती राज संस्थाओं को विकास कार्यों के साथ संलग्न करके ही समझा जाता है एवं तदनुसार लागू भी किया जाता है। भारत में पंचायती राज व्यवस्था को विकास संस्थाओं के साथ जोड़ करके निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया गया है–

- गांव स्तर पर
- ब्लॉक स्तर पर
- जनपद स्तर पर
- राज्य स्तर पर
- केन्द्र

ग्राम स्तर पर, ग्राम सभा एवं पंचायत, वैधानिक मान्यता प्राप्त संस्थाएं होती हैं जो कि सामुदायिक विकास करने के लिए अनेक अन्य संस्थाओं के साथ समन्वय करती हैं ताकि ग्राम समाज का विकास किया जा सके।

ब्लॉक या खण्ड स्तर पर ''खण्ड अधिकारी'' एक तकनीकी टीम के साथ मिलकर ग्राम सभा के सदस्यों के साथ मिलकर सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के बारे में निर्णय करने के लिए अधिकृत होते हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी गांव में किसी सड़क की मरम्मत करनी है तो ग्राम सभा के सदस्य, ग्राम प्रधान के साथ मन्त्रणा करके निर्णय लेते हैं तदुपरांत इस निर्णय से खंड अधिकारी या विकास अधिकारी को इस बारे में बताया जाता है। ग्राम सभा एवं विकास अधिकारी मिलकर इस कार्य को करवाने की रूप रेखा तैयार करते हैं। कार्य में होने वाले खर्च का भी ब्यौरा तैयार किया जाता है। ब्यौरे के अनुसार उपलब्ध वित्त से निर्माण कार्य करने का निर्णय पारित करके कार्य करवाया जाने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

ग्राम स्तर पर स्थानीय स्वशासन की संरचना निम्न प्रकार से होती है–

ग्राम सभा (गांव सभा)	– गांव के सभी निर्वाचक (Voter)
पंचायत (ग्राम काउन्सिल)	– ग्राम स्तर पर आधारित मूल स्वशासी संस्था
पंचायत समिति	– खण्ड या तहसील स्तर पर माध्यमिक स्तर की संस्था (यह 70–80 हजार जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती है।)
जिला परिषद	– जिला स्तरीय संस्था जो पूरे जिले के निर्वाचकों का प्रतिनिधित्व करती है।

भारत के लगभग सभी राज्य, मेहता समिति द्वारा अनुमोदित की गई सिफारिशों के अनुसार त्रिस्तरीय स्वशासी शासन व्यवस्था का पालन कर रहे हैं। हालांकि कुछ राज्यों ने चार स्तरीय व्यवस्था को भी अपने यहां लागू किया है।

मेहता समिति की शिफारिशों के अनुसार, लागू की गई ग्राम स्तर की पंचायती व्यवस्था ने भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्तर पर, स्थानीय नागरिकों को प्रजातंत्रीय ढांचे में सम्मिलित होने के मार्ग को प्रशस्त कर दिया था। इस पंचायती राजव्यवस्था के लागू हो जाने के बाद भारतीय गांवों की स्थानीय सहभागिता में अनेक सार्थक विकास हुए हैं। भारतीय ग्रामीण जनता, जो कि सदियों से पराधीनता में रह रही थी उसे स्वतंत्रता का एक नया आयाम इस व्यवस्था के लागू हो जाने के बाद प्राप्त हुआ है। आज भारतीय ग्रामीण अल्प जागरूकता के साथ भी स्थानीय स्वशासन में भागीदार बनकर स्वयं एवं गांव का विकास कर रहा है।

ग्राम सभा या गांव सभा

पंचायती राज व्यवस्था के प्रथम सोपान पर ग्राम सभा का चयन किया जाता है। ग्राम सभा का चयन उसी गांव के सभी व्यस्क मतदाताओं द्वारा किया जाता है। यह मतदान प्रत्येक गांव में प्रत्येक पांच वर्ष में होता है। अर्थात् एक गांव सभा का कार्यकाल पांच वर्ष का होता है। गांव के मतदाता, अपने ही गांव के व्यक्तियों में से किसी एक के पक्ष में मतदान करते हैं। मतदान की प्रक्रिया में जिस व्यक्ति को सर्वाधिक मत मिलते हैं, उसे निर्वाचित घोषित किया जाता है। निर्वाचन की यह प्रक्रिया राज्य के निर्वाचन आयोग के द्वारा सम्पादित करवाई जाती है। इसमें राज्य सरकार की कोई भूमिका नहीं

टिप्पणी

होती। राज्य सरकार का कार्य व्यवस्था को बनाकर रखना होता है जबकि राज्य निर्वाचन आयोग स्वयं में एक स्वशासी संस्था होती है, जिसका नियंत्रण सरकार के हाथ में नहीं होता है।

ग्राम सभा का चयन

गांव के चुनाव में प्रत्येक पांच वर्ष के पश्चात् ग्राम प्रधान, सरपंच या मुखिया का चयन करवाया जाता है। इसी चुनाव में गांव के पांच सदस्यों का चयन भी किया जाता है। इन पांच सदस्यों को ही पंच कहा जाता है। आजकल इन पंचों को सदस्य या ग्राम सभा सदस्य भी कहा जाता है। इन ग्राम सभा सदस्यों का चयन गांव के ही व्यक्तियों में से गांव के ही वोटरों द्वारा किया जाता है। प्रत्येक चुनाव से पूर्व गांव की वोटर लिस्ट के अनुसार ही व्यक्ति निश्चित करते हैं कि किसको चुनाव में उतरना है। प्रायः गांव भी मुहल्लों या वार्डों के आधार पर अपने–अपने प्रतिनिधि सदस्यों का चयन करते हैं। ये सदस्य कई बार निर्विरोध भी चुने जाते हैं क्योंकि इनका चयन मुहल्ले या वार्ड के लोगों के आपसी सामंजस्य पर निर्भर करता है। यदि वार्ड या मुहल्ले में आपसी समझबूझ अच्छी प्रकार से है तो इन्हें चुनाव की आवश्यकता ही नहीं पड़ती वरन् मनोनीत सदस्य को ही विधिवत चुन लिया जाता है। परन्तु भारत विविधताओं से भरा एक विशाल राष्ट्र है जहां पर किसी एक तथ्य की समानता किसी दूसरे स्थान पर मिलना अत्यंत कठिन कार्य होता है। इसी प्रकार से ग्राम पंचायत का चुनाव भी एक राजनीतिक यंत्र बन जाता है। सत्ता में आने का एक विचार तथा समाज में अर्न्तद्वन्द्वों के कारण ग्राम पंचायतों के चुनाव बेहद रोचक एवं उत्साह से पूर्ण होते हैं।

ग्राम सभा का चयन हो जाने के पश्चात्, ग्राम प्रधान को जिला निर्वाचन कार्यालय के द्वारा निर्वाचित घोषित किया जाता है। यह घोषणा आधिकारिक होती है तथा इस घोषणा को पूर्ण संवैधानिक अधिकार प्राप्त होता है क्योंकि भारत की स्थापित न्याय एवं प्रजातांत्रिक व्यवस्था के अनुसार यह अनुशंसित है कि चुनाव में विजयी उम्मीदवार एक सम्मानित एवं समाज का एक प्रतिनिधि हो जाता है। ग्राम सरपंच का प्रधान के रूप में विजयी घोषित हो जाने के उपरांत, नया प्रधान, पूर्व प्रधान से कार्य भार ग्रहण करने की प्रक्रिया को अपनाते हैं। प्रजातंत्र की यही विशेषता है कि इसमें सभी कुछ पारदर्शी होता है एवं जागरूक व्यक्ति के अधिकारों का हनन नहीं हो सकता है। पूर्व प्रधान, स्थापित नियमों के अधीन रहते हुए अपना पूर्ण कार्यभार नये निर्वाचित प्रधान को सुपुर्द कर देते हैं। इस कार्य भार स्थानान्तरण की प्रक्रिया में ग्राम कार्यालय को पूरी तरह से नये प्रधान को देना होता है। इस कार्य में सभी दस्तावेज, कार्यालय आदेश तथा किये गये कार्यों का ब्यौरा तथा लम्बित कार्यों का ब्यौरा भी सम्मिलित होता है। इस कार्य में सबसे प्रमुख कार्य होता है लेखा–जोखा (Account Register) रजिस्टर का कार्य भार लेना।

ग्राम पंचायत में आय–व्यय का एक रजिस्टर रखा जाता है जिसमें इस बात का पूरा ब्यौरा रहता है कि गांव में आय एवं व्यय का हिसाब किस प्रकार से किया गया। चूँकि ग्राम प्रधान एक जनप्रतिनिधि होता है अतः कोई भी कार्य उसकी स्वयं की सम्पत्ति नहीं होती वरन् वह पूरी सम्पत्ति एवं ब्यौरे का संरक्षक मात्र होता है। अतः कार्य भार ग्रहण करते समय, पूर्व प्रधान से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पद की गरिमा के अनुसार, नये प्रधान को पूरा आय–व्यय का रजिस्टर सही अनुरक्षित स्थिति में उपलब्ध

करवाये। इस लेखा रजिस्टर के आधार पर ही नये प्रधान एवं ग्राम सभा सदस्यों को यह जानकारी होती है कि हमारे गांव में कितना धन आया एवं वह किस प्रकार से खर्च किया गया। पंचायती राज व्यवस्था लागू करने का मूलभूत सिद्धांत यही है कि स्थानीय स्तर पर शासन व्यवस्था चलायी जाये ताकि नागरिकों को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार प्रबंधन का अवसर मिल सके।

ग्राम प्रधान को यह भलीभांति पता होता है कि उनका कार्य काल मात्र पांच ही वर्ष का है एवं पांच वर्ष पश्चात् कोई दूसरा व्यक्ति चुनाव जीत कर आएगा एवं उस नये प्रतिनिधि को पूरा कार्य भार सौंपना पड़ेगा। इसी भय से कोई भी प्रतिनिधि कागजों एवं दस्तावेजों में कोई हेर–फेर नहीं कर पाता। प्रजातंत्र में जवाबदेही को निश्चित करने का यही सर्वोत्तम उपाय होता है कि कोई भी सदस्य, पूर्णकालीन नहीं होता है वरन् एक निश्चित अवधि के लिए ही कार्यालय में होता है। ग्राम पंचायतों की ग्राम सभा के सदस्य, कार्य भार ग्रहण करते समय यह भली–भाँति जानते हैं कि उन्हें पांच वर्ष तक अपना कार्य करना है तथा प्रत्येक पांच वर्ष के पश्चात्, पुनः जनता के दरबार में जाना पड़ेगा। जब जन प्रतिनिधि पुनः जनता के पास जाते हैं तो जनता उससे, उनके कार्यकाल का लेखा–जोखा एवं ब्यौरा भी मांगती हैं। अतः ग्राम सभा का गठन भी प्रजातांत्रिक प्रणाली से होता है जिसमें प्रत्येक सदस्य की पूरी जवाबदेही होती है तथा इन सदस्यों को बाध्यतावश ग्राम की आवश्यकता के अनुसार जनकल्याणकारी निर्णय लेकर कार्य करना पड़ता है अन्यथा पांच वर्ष उपरांत जनता इनसे जवाब मांगती है एवं असंतुष्ट होने पर इन्हें नकार भी देती है।

ग्राम पंचायत के कार्य

ग्राम पंचायत या ग्राम सभा, ग्राम के व्यस्कों के द्वारा चयनित एक समिति मात्र होती है, जिसमें एक सरपंच एवं पांच अन्य सदस्य होते हैं। इन सभी का दायित्व गांव के विकास सम्बन्धी कार्यों को करना होता है। विकास कार्यों में वे सभी कार्य सम्मिलित होते हैं जिनसे कि गांव के व्यक्तियों के जीवन स्तर में सुधार हो सके। इसके अतिरिक्त गांव के व्यक्तियों के मध्य होने वाले आपसी विवादों को भी सुलझाने एवं समझौता करवाने का कार्य भी यही ग्राम सभा या पंचायत करती है।

गांव के व्यक्तियों में ग्राम सभा के गठित हो जाने के बाद एक सुरक्षा एवं आत्मविश्वास की भावना का विकास हुआ है। गांव के व्यक्तियों में यह विश्वास भी प्रगाढ़ हुआ है कि कोई भी व्यक्ति किसी व्यक्ति का अनावश्यक रूप से शोषण नहीं कर सकता वरन् गांव में ही एक ऐसी संस्था है जिसके पास जाकर कोई भी शोषित व्यक्ति न्याय के लिए अपनी गुहार लगा सकता है। न्याय दिलवाने में ग्राम पंचायत की एक महती एवं निर्णयात्मक भूमिका सिद्ध हुई है। भारत जैसे राष्ट्र में जहां पर सदियों से पराधीनता का दौर रहा है एवं सदियों तक सामंती व्यवस्था का बोलबाला रहा है जिसमें शासक वर्ग के द्वारा गरीब एवं असहाय लोगों का एकतरफा शोषण किया जाता रहा था ऐसे में ग्राम पंचायत की भूमिका महत्वपूर्ण है।

वह सामंती व्यवस्था जिसमें, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के व्यक्तियों को समाज में कोई भी सम्भावनात्मक स्थान एवं पद प्राप्त नहीं थे। उस सामन्ती व्यवस्था के पतन में पंचायत एवं पंचायती राज व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान है। ग्राम पंचायत का यह भी कार्य है कि वह अपने गांव में हो रहे सामाजिक न्याय के प्रति जागरूक रहे एवं किसी व्यक्ति को अकारण सताए जाने का विरोध करे ताकि प्रत्येक व्यक्ति को

टिप्पणी

भारतीय जनतंत्र के संविधान में प्रदत्त अधिकारों को दिलवाया जा सके। ग्राम सभा के गठन में इसी बिन्दु को ध्यान में रखकर प्रत्येक समाज के प्रत्येक वर्ग को ग्राम सभा में सम्मिलित करने पर बल दिया गया है।

ग्राम सभा द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों को अनेक आधारों पर वर्गीकृत करके समझा जा सकता है। जैसे न्याय, शोषण, विकास, कृषि विकास, स्वास्थ्य विकास, उद्यमिता विकास, प्रतिभा विकास, स्वयं रोजगार, साक्षरता, निर्धनता आदि।

न्याय सम्बन्धी कार्यों का महत्व

ग्राम पंचायत एक ऐसी स्थानीय संस्था होती है जो गांवों के ही स्थानीय विषयों पर होने वाले विवादों के शांतिपूर्वक निस्तारण हेतु कार्य करती है। उदाहरण के लिए यदि दो ग्रामीणों के मध्य भूमि की सीमा का विवाद हो जाता है तो यह प्रयास किया जाता है कि ग्राम पंचायत स्थानीय स्तर पर, दोनों पक्षों के मध्य वार्ता करवा कर एक ऐसा समाधान निकाल ले कि जिस पर दोनों पक्ष सहमत हो जाएं। भारतीय समाज में यह एक परम्परा रही है कि इस प्रकार के विवादों को गांव के बुजुर्गों एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों के माध्यम से सुलझा लिया जाए। यही परम्परा भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। परंतु समय परिवर्तन एवं गांव स्तर पर राजनीतिक ध्रुवीकरण के कारण, स्थानीय न्याय प्रणाली में भी परिवर्तन हुए हैं। एक समय ऐसा भी था जब गांव के विवाद पूर्णतया गांव में ही सुलझा लिये जाते थे तथा गांव में पुलिस तथा कोर्ट कचहरी नहीं होती थी। उस समय के पंचों के चरित्र एवं पद के प्रति निष्ठा एवं सम्मान का यही कारण था। परंतु शिक्षा के प्रसार के साथ–साथ इस निष्ठा एवं सम्मान में भी परिवर्तन हुए।

आज स्थिति यह है कि सम्बन्धित पक्ष स्थानीय न्यायालय की शरण में जाने में नहीं हिचकते एवं अपने न्याय एवं विवाद को सुलझाने के लिए अपनी पूंजी एवं समय का बहुत बड़ा हिस्सा व्यय कर रहे हैं। भारतीय न्यायालयों में बढ़ते विवादों एवं प्रतिवादों का यही कारण है। यदि भारतीय ग्राम पंचायतें अपने मूल रूप में एवं शुद्धता से कार्य करने लगें तो सभी प्रकार के स्थानीय विवादों का हल स्थानीय स्तर पर ही हो जाएगा। इसके अनेक सुखद परिणाम हो सकते हैं जैसे–

- न्यायालयों में वादों की संख्या में कमी आ जाएगी।
- न्यायालयों में लम्बित मामलों की संख्या में कमी आ जाएगी।
- न्यायालयों मे चल रहे मामलों की शीघ्र सुनवाई सम्भव हो सकती है तथा पीड़ितों को शीघ्र न्याय मिल सकेगा।
- आत्म सम्मान के लिए आवश्यक रूप से हो रहा व्यय बच जाएगा जिससे कि गांव का विकास हो सकता है।
- यदि ग्रामीण स्तर पर विवादों का निस्तारण हो जाये तो ये ग्रामीण व्यक्ति अपनी ऊर्जा को विकास कार्यों में लगाकर स्वयं का एवं साथ ही साथ गांव का भी विकास कर सकते हैं।
- सरकार की बहुत सी शक्ति अनावश्यक कार्यों में व्यय हो जाती है, जिसे सही दिशा में लगाकर विकास कार्य करवाये जा सकते हैं।
- अनेक ऐसे विवाद होते हैं जो कि वास्तव में विवाद होते ही नहीं वरन् आपसी समझ बूझ की कमी से पैदा हुए होते हैं ऐसे विवादों को आपसी गलतफहमियां

दूर करके ठीक करवाया जा सकता है। इन विवादों में मध्यस्थ व्यक्तियों की भूमिका बहुत ही निर्णायक होती है। यदि निर्णायक मध्यस्थ, पूर्णतः तटस्थ एवं ईमानदार हो तो झगड़ा गांव स्तर पर ही समाप्त हो सकता है।

टिप्पणी

- गांव के निर्णयों में पारदर्शिता आने से नागरिकों में व्यवस्था के प्रति आस्था बढ़ जाती है जो सर्वांगीण विकास की कड़ी होती है।

ग्राम सभा के विकास सम्बन्धी कार्य

ग्राम पंचायतों का उद्देश्य गांव में विकास सम्बन्धी कार्यों को सम्पादित करना भी होता है। विकास का तात्पर्य उन कार्यों से होता है जिनसे कि जनसामान्य की वर्तमान सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक एवं राजनीतिक स्थितियों में सुधार करना होता है। उदाहरण के लिए यदि गांव तक पहुंचने वाला सड़क मार्ग कच्चा है तो गांव में आने–जाने वाले व्यक्तियों को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। गांव की उपज को शहर की मंडियों में भेजना कठिन होता है। ग्रामीणों द्वारा अपनी कृषि की उपज को आस–पास के शहरों के बाजारों में ही बेचकर आर्थिक लाभ अर्जित किया जा सकता है। कृषि उपजों को शहर तक लाने ले जाने के लिये यदि पहुंच मार्ग पक्का हो जाये तो ग्रामीणों की शहरी बाजारों तक पहुंच सरल हो जाती है। इस पक्के मार्ग पर वाहनों का प्रयोग करके, ग्रामीण समुदाय अपनी उपज को उचित मूल्य पर एक प्रतियोगी बाजार में बेच पाने की स्थिति में आ जाते हैं।

यदि ग्रामीण व्यक्तियों ने कृषि के अतिरिक्त अन्य कोई व्यवसाय किया हुआ है तो उस व्यवसाय का उत्पाद भी शहरी बाजार एवं उपभोक्ताओं तक सरलतापूर्वक पहुंचकर उचित मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। यदि किसी ग्रामीण ने दुग्ध उत्पादन के लिये पशुपालन किया हुआ है तो गांव स्तर पर दुग्ध एवं दुग्ध उत्पादों का मूल्य कम प्राप्त होता है। यदि दुग्ध उत्पादक अपने दुग्ध को सीधे शहर में जाकर बेचते हैं तो उन्हें बहुत अधिक मुनाफा प्राप्त हो जाता है। यदि किसान या ग्रामीण अपने उत्पाद को सीधे–सीधे बाजार में बेचते हैं तो उन्हें बिचौलियों को दिये जाने वाले अंशदान से भी छुटकारा प्राप्त हो जाता है। यह अंशदान, कृषक या ग्रामीण को सीधे–सीधे प्राप्त हो सकता है, अतः ग्रामीण विकास के क्रम में सड़कों को बनाना एवं उन्हें उचित पहुंच मार्ग तक जोड़ना एक महत्वपूर्ण कार्य है। विकास के लिए गांवों तक पक्के पहुंच मार्गों की व्यवस्था का होना अत्यंत ही आवश्यक होता है।

भारत सरकार की लगभग सभी योजनाओं में सड़कों के निर्माण हेतु धन आबंटित किया जाता है। पंचवर्षीय योजनाओं को बनाते समय यह ध्यान में रखा जाता है कि गांवों को शहरों के साथ उचित सड़क मार्ग के द्वारा जोड़ने की व्यवस्था सुनिश्चत करवाई जाए। गांव को श्हरों के साथ जोड़ने वाली सड़कें निम्न प्रकार की होती हैं–

- जिला बोर्ड की सड़क
- ग्राम सभा की सड़क
- चक रोड
- गांव के अन्दर की गलियों के खड़ंजे
- गांव के मुख्य मार्ग (RCC)

उपरोक्त प्रकार के पहुंच मार्गों का रखरखाव एवं निर्माण कार्य दो स्तरों पर विभक्त किया गया है।

टिप्पणी

- जिला बोर्ड के तहत आने वाली सड़कें
- ग्राम सभा के तहत आने वाली सड़कें

जिला बोर्ड की सड़कें प्रमुख मार्ग एवं पहुंच मार्ग होते हैं जिनकी देखभाल एवं निर्माण का कार्य जिला बोर्ड ही करता है तथा इसका पूरा खर्च भी जिला बोर्ड को वहन करना होता है। जबकि ग्राम सभा के अधीन आने वाली सड़कों के रख–रखाव एवं निर्माण का उत्तरदायित्व ग्राम सभा एवं पंचायत का ही होता है। ग्राम सभा के गठन हो जाने के पश्चात् ग्राम सभा के सदस्य आपसी सहमति एवं गांव की आवश्यकतानुसार सड़क की मरम्मत एवं निर्माण करने का निर्णय लेते हैं। यह निर्णय ग्रामवासियों की सहमति एवं उनकी उपयुक्त मांगों पर भी निर्भर करता है। ग्राम सभा सड़क की मरम्मत या निर्माण का प्रस्ताव लेकर संबंधित विकास खण्ड अधिकारी के कार्यालय में सम्पर्क करते हैं। विकास खण्ड अधिकारी, ग्राम सभा के सदस्यों के साथ विचार विमर्श एवं मौका मुआयना करने के पश्चात् कार्य की स्वीकृति प्रदान करते हैं। स्वीकृति प्रदान करने से पूर्व, धन की व्यवस्था सुनिश्चित की जाती है।

उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त ग्राम पंचायत के द्वारा किये जाने वाले कार्यों एवं दायित्वों को निम्नलिखित प्रकार से विभाजित करके भी समझा जा सकता है–

(अ) सार्वजनिक कार्य : सार्वजनिक कार्य, जनकल्याण के सामूहिक कार्यक्रम होते हैं जो, किसी भी समुदाय के उचित रहन सहन हेतु परमावश्यक होते हैं। इनके अभाव में मनुष्य का जीवन अत्यंत कठिन एवं समस्याग्रस्त हो जाता है। सार्वजनिक कार्यों को निम्नलिखित उप समूहों में विभक्त करके समझा जाता है–

- जन सुरक्षा
- जन स्वास्थ्य
- लोक निर्माण
- सामाजिक शिक्षा

उपरोक्त कार्यों के साथ–साथ निम्नलिखित कार्यों को भी ग्राम पंचायत के द्वारा ही सम्पादित करवाया जाता है–

- विद्युत व्यवस्था
- चिकित्सा सहायता एवं राहत
- कूड़े–कचरे का निस्तारण
- महामारियों से बचाव के उपाय करना
- शुद्ध एवं स्वच्छ पेय जल
- गन्दे नाले, नालियों का उचित निकास एवं प्रबंधन
- लोक मनोरंजन
- जन्म–मृत्यु का पंजीकरण
- सभी सामुदायिक केन्द्रों, स्थानों, एवं सड़कों की मरम्मत एवं देखभाल
- वृक्षारोपण
- गोबर एवं अवशिष्ट पदार्थ डालने के लिए स्थान आवंटन

टिप्पणी

- मल मूत्र के लिए लोक शौचालयों का निर्माण
- सामूहिक उत्सवों का आयोजन
- शिक्षा का प्रचार करना एवं विद्यालय की देखभाल

(ब) गांव के भविष्य के लिए नियोजन : ग्राम पंचायत, प्रबुद्ध लोगों की एक संवैधानिक संस्था होती है। जिसका कार्य गांव का सर्वांगीण विकास करना है। प्रबुद्ध वर्ग से अपेक्षा की जाती है कि वह भविष्य की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए आज की योजनाओं का सूक्ष्म एवं सटीक नियोजन करे। यदि किसी भी कार्य का नियोजन भविष्य की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए किया जाता है तो वे अधिक समय तक विकासोन्मुखी कार्य कर पाने में सक्षम हो सकती हैं। यदि किसी प्राय पंचायत में प्राथमिक विद्यालय की स्थापना करवानी है तो, ग्राम सभा के चुने हुए सदस्य इस बात को भी ध्यान में रखते हैं कि कुछ वर्षों के पश्चात् प्राथमिक विद्यालय को माध्यमिक विद्यालय में भी बदलना पड़ सकता है। इसी तरह से इस विद्यालय में छात्रों की संख्या में भी वृद्धि होगी। यदि आज कोई विद्यालय 100 बच्चों के लिए पर्याप्त है तो आने वाले समय में विद्यालय 150 या 200 बच्चों की शिक्षा के लिये भी पूर्णतः पर्याप्त होना चाहिए। अतः विद्यालय के लिए भूमि आवंटित करने का कार्य ग्राम पंचायत का होता है। ग्राम पंचायत यदि भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर नियोजन करती है तो भूमि की अतिरिक्त मात्रा की व्यवस्था अभी से बनाकर चलना होगा। यदि आज के समय में 5 कमरों का विद्यालय बनवाना है तो विद्यालय परिसर में इतना क्षेत्रफल का होना आवश्यक है कि आने वाले समय में 5 और कमरों का निर्माण करवाया जा सके। ग्राम पंचायत के चुने हुए प्रतिनिधि इस प्रकार के नियोजन हेतु अधिकृत होते हैं एवं उनका दायित्व बनता है कि वे इसका उपर्युक्त प्रबंधन करें।

इस प्रकार के कार्यों में अनेक विवादों का हो जाना भी एक स्वाभाविक प्रक्रिया होती है। गांवों में पक्ष–विपक्ष सभी प्रकार के व्यक्ति होते हैं एवं ग्राम सभा के सदस्य सभी को विश्वास में लेकर एवं सबको साथ लेकर चलने का प्रयास करते हैं। इसका प्रमुख कारण यह होता है कि सभी कार्य स्थानीय स्तर पर होते हैं एवं स्थानीय लोगों से कुछ भी छिपा नहीं होता है।

(स) विकास एवं उत्पादन का नियोजन : व्यावहारिक रूप से ग्राम पंचायत का कार्य एक ऐसी समिति का गठन करना भी होता है जो कि गांव में होने वाले उत्पादन एवं उस उत्पादन के विकास के लिए उचित कार्यवाही सुनिश्चित करे। ग्राम सभा के द्वारा गठित इस समिति में गांव के सम्मानित व्यक्तियों को नामांकित किया जाता है। ये सभी व्यक्ति इसी गांव के मूल निवासी होते हैं एवं गांव की पृष्ठभूमि की पर्याप्त जानकारी भी इनको होती है।

वास्तव में यदि यह समिति तटस्थ होकर कार्य करे तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि ग्राम स्तर पर स्वशासन की जो परिकल्पना भारत के संविधान में दी गई है उसे मूर्त रूप दिया जा सकता है। क्योंकि स्थानीय स्तर की समस्याओं एवं आवश्यकताओं का व्यावहारिक ज्ञान, स्थानीय व्यक्तियों को ही हो सकता है। अतः स्वशासन के कार्य में भागीदार गांव पंचायत अपने सदस्यों में से एक समिति

टिप्पणी

बना लेती है परंतु, गांव के वर्ग विभेदन एवं आपसी तनातनी के कारण सामंजस्य का अभाव देखा गया है परिणामस्वरूप समिति लक्ष्यों के उद्देश्यों से भटक जाती है एवं ग्राम विकास का कार्यक्रम बाधित होता है। सैद्धांतिक रूप से इस समिति के कार्यों को दो वर्गों में बांटकर समझा जा सकता है।

- गांव में कृषि, पशुपालन, लघु उद्योग आदि के लिए सुविधाओं का विकास करना
- सामान्य जन सुविधाओं का विकास करना

उपरोक्त दोनों ही उद्देश्यों के लिए ग्राम स्तर पर बैठकों का आयोजन किया जाता है एवं सहकारी विकास समिति के माध्यम से कृषि उपज बढ़ाये जाने का प्रयास किया जाता है। ग्रामीण सहकारी समितियों में कृषकों को उचित मूल्य एवं कम ब्याज पर उन्नत बीज उपलब्ध करवाये जाने की सरकारी योजनाओं को गांव पंचायत के तत्वाधान में ही लागू किया जाता है। गांव की कृषि उपज की बढ़ोत्तरी हेतु, उर्वरकों का इन समितियों के माध्यम से विपणन भी किया जाता है। ग्रामीण सहकारी समितियां किसानों की समस्याओं के समाधान हेतु कृषि क्रय आदि की भी व्यवस्था, ग्राम पंचायत के अनुमोदन पर करती हैं। इस तरह ऋण के द्वारा कृषक, कृषि यंत्र एवं अन्य सुविधायें क्रय करते हैं, जिनसे उपज बढ़ सके।

(द) सामाजिक कल्याण : गांव का जीवन अनेक प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं से भरूपर रहता है। गांव के निवासी पूर्ण या आंशिक रूप से कृषि एवं कृषि उत्पादों के ऊपर निर्भर रहते हैं। आज भी भारतीय किसान, मानसून की राह देखते हैं एवं मानसून की कमी या कम बरसात के कारण कम उपज के कारण आर्थिक तंगी का शिकार हो जाते हैं। इसी प्रकार से वर्षा, बाढ़ आदि से फसलें बर्बाद भी हो जाती हैं। यदि ग्रामीणों का एक फसल चक्र आपदा से प्रभावित हो जाता है तो ग्रामीणों को समय के साथ पिछड़ना पड़ जाता है क्योंकि ग्रामीणों की आमदनी का मुख्य स्रोत तो कृषि उत्पादन ही होता है और यदि कृषि उत्पादन ही इतना ना हुआ कि बाजार में बेचकर कुछ रुपया प्राप्त हो तो ग्रामीणों की रोजमर्रा की आवश्यकताएं पूर्ण होना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में एक सामाजिक कल्याण (Social Welfare) तंत्र की उपस्थिति महत्वपूर्ण हो जाती है।

प्राकृतिक निर्भरता के कारण भारतीय ग्रामीण आज भी हाशिए पर खड़ा हुआ दिखाई देता है। स्वशासन की व्यवस्था के लागू हो जाने के पश्चात् ग्रामीण समाज की इस समस्या का समाधान, आपदा कोष के गठन के द्वारा किया गया। भारत सरकार ने आपदा प्रबंधन एवं कोष की स्थापना की, ताकि आपदा आने पर ग्रामीणों को समुचित सहायता उपलब्ध करवाई जा सके। इस पहल में गांवों एवं ग्राम पंचायतों को भी सम्मिलित किया गया। गांव के अपने आय स्रोतों में से, कुछ धन को आपदा कोष ने नाम पर संचित करके रखा जाता है एवं आवश्यकता पड़ने पर इस धन को जरूरतमंद ग्रामीणों को सहायता राशि के रूप में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दिया जाता है। इस कोष का उपयोग आपदा प्रबंधन के लिए भी किये जाने का प्रावधान होता है।

किसानों को नई फसल की बुवाई हेतु बीज एवं खाद की व्यवस्था करवाने की व्यवस्था भी इस कोष के माध्यम से करवाई जाती है। ग्राम पंचायत के सदस्यों

का यह भी कार्य है कि वे इस राहत कोष को निरन्तर बढ़ाते रहें ताकि समय आने पर सरकारी सहायता के बिना ही स्थानीय एवं ग्रामीण स्तर पर ही समस्या का सामना किया जा सके। इस क्रम में उन्नत कृषकों एवं बड़े काश्तकारों से इस कोष में स्वेच्छा से धन जमा कराने का आग्रह किया जाता है। ग्राम स्तर पर प्राप्त अन्य राजस्वों या वसूली में से भी कुछ अंशदान इस कोष में जमा करवा दिया जाता है। इस कोष का प्रबंधन ग्राम सभा ही करती है।

(य) प्रतिनिधित्व : भारतीय संविधान यह व्यवस्था प्रदान करता है कि प्रत्येक नागरिक को अपनी बात कहने एवं उचित माध्यम से उस बात को प्रकट करने का अधिकार है। भारतीय समाज में अनेक जाति, वर्ग एवं धर्म के लोग निवास करते हैं। यह कहना सर्वथा अमान्य है कि कुछ ही व्यक्ति सभी व्यक्तियों के प्रतिनिधि के रूप में, समस्याओं का समाधान आने परिपेक्ष्य में करें। प्रजातंत्र का वास्तविक अर्थ इसी तथ्य में निहित है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने समूह एवं समूह हित का प्रतिनिधित्व करें। भारतीय ग्रामीण समुदाय में एक समय तक यह अवधारणा थी कि शासक वर्ग एवं उच्च वर्ग, हमारे लिए जो भी निर्णय कर देंगे वह हमारे एवं समाज के हित में ही होगा परंतु ऐसा सोचना, शासक वर्ग के हित में था एवं शासक वर्ग ने स्थानीय स्तर पर उतनी ही स्वायतता प्रदान कर रखी थी जितनी कि उनके शासन के चलाये जा सकने तक आवश्यक महसूस होती थी परंतु सामन्ती व्यवस्था की समाप्ति के पश्चात् एवं भारत में स्वशासन की स्थापना के बाद प्रत्येक मानव समूहों एवं मानवों में शिक्षा के प्रचार प्रसार ने इस क्रम को खण्डित किया।

आज शिक्षा के प्रचार के कारण ग्रामीण समुदाय के व्यक्ति भी इस बात को समझ चुके हैं कि हमारी सहभागिता एवं प्रतिनिधित्व प्रत्येक स्तर पर होना नितांत ही आवश्यक हो गया है अन्यथा, हमारे स्वार्थों एवं हितों की रक्षा दूसरे व्यक्ति तो कदापि नहीं कर सकते और यदि करते भी हैं तो इस प्रकार के कार्य एकतरफा होंगे एवं उनका प्राथमिक उद्देश्य, प्राथमिकता के रूप में स्वयं एवं स्वयं के समूहों के हितों को सिद्ध करना होता है। भारतीय ग्राम पंचायत व्यवस्था में ग्राम सभा का गठन इसी उद्देश्य को भी ध्यान में रखकर किया जात है कि समाज के हर तबके की इसमें हिस्सेदारी हो और वो अपनी बात कह सकें।

ग्राम सभा की देख–रेख एवं संचालन

ग्राम सभा का सुचारू एवं सही ढंग से संचालन करना स्वयं में एक बहुत बड़ा कार्य है। भारतीय ग्रामीण परिवेश, अनेक विविधताओं से परिपूर्ण समाज होते हैं जिनमें एक ही गांव में अनेक जाति, वर्ग एवं सम्प्रदाय के लोग निवास करते हैं। गांव सभा जो भी निर्णय लेती है उन पर गांव वालों की आम सहमति का होना अनिवार्य होता है अन्यथा पारस्परिक विरोधाभास के कारण कोई भी योजना या कार्य सम्पादित करवाया जाना अत्यंत कठिन कार्य हो जाएगा। ग्राम सभा के सभी कार्य, सार्वजनिक स्थलों पर करवाए जाने का प्रावधान करवाया गया है। भारतीय गांवों में अनेक स्थल इस उद्देश्य के लिए बनाए गए जैसे–

- गांधी चबूतरा
- पंचायत घर
- विशेष भवन

टिप्पणी

- विद्यालय परिसर
- भूमि या खेड़ा या गांव का प्रमुख मन्दिर
- ग्राम सभा की भूमि में कोई आवासीय परिसर
- कोई निर्विवादित स्थल

उपरोक्त स्थानों पर समितियों एवं ग्राम सभा के सदस्यों की बैठकों का समयबद्ध तरीकों से आयोजन करवाया जाता है। इसका कारण यह है कि गांव में आपस में संबंधों के कारण कोई व्यक्ति, किसी व्यक्ति के घर नहीं जाना चाहता तो वह बैठक में शामिल नहीं हो पाता था। यदि बैठक किसी ऐसी जगह बुलाई जाती है जो सार्वजनिक हो तो वहां पर कोई भी आ जा सकता है। ग्रामीण समुदाय की आपसी रंजिश एवं ऊंच–नीच की भावना के कारण भी इन स्थानों का महत्व बढ़ जाता है।

अतः ग्राम सभा का कार्य इन सार्वजनिक स्थलों की देख–रेख एवं मरम्मत आदि करने का भी होता है। समिति बैठक से पूर्व सभा स्थल की साफ–सफाई की व्यवस्था एवं सूचना भिजवाने का कार्य भी करती है।

जन सुरक्षा एवं अन्य कार्य

स्थानीय स्तर पर गांव की सुरक्षा करवाना एवं इसके लिए उपयुक्त सुरक्षात्मक उपाय करना भी ग्राम सभा के अधिकार क्षेत्र में ही आता है। वास्तव में भारतीय ग्रामीण परिवेश में, गांवों में कभी–कभार, चोरों का भय बना रहता है। ये चोर रात के समय, ग्रामीणों के पशुधन एवं अनाज आदि को उठा ले जाते हैं। ग्राम सभा आपसी बातचीत एवं सामंजस्य के मध्यम से इस समस्या का पारस्परिक हल निकालती हैं। यह तो स्पष्ट है कि पुलिस बल ग्रामीण क्षेत्र के पूरे इलाके पर निगरानी नहीं रख सकता क्योंकि इन क्षेत्रों का क्षेत्रफल बहुत अधिक होता है जिसके लिए बहुत बड़ी संख्या में पुलिस बल की आवश्यकता होगी जोकि व्यावहारिक रूप से कठिन काम होता है।

भारतीय गांव पारस्परिक रूप से अपने गांवों एवं सामान की सुरक्षा व्यवस्था स्वयं ही करते आये हैं। गांव में एक स्थानीय चौकीदार की नियुक्ति, गांव सभा अपने ही स्तर पर कर लेती है। यह चौकीदार गांव का ही कोई पुरुष व्यक्ति होता है एवं रात के समय गांव में पहरा देने का कार्य करता है। कई बार ऐसा भी देखा गया है कि गांवों में चोरी की वारदात घटित हो जाती है या आसपास के गांवों में लुटेरों ने लूट की घटनाएं की है तो ये गांव वाले इस सूचना को आस–पास के गांवों को सूचित कर देते हैं कि वे अपने–अपने गांवों में सर्तक हो जाएं और यथा सम्भव चौकीदारी की व्यवस्था करें। गांव के आसपास खेत खलिहान इतने बड़े होते हैं कि चोर आसानी से इनमें छुप सकते हैं एवं रात में अवसर पाते ही किसी भी गांव में चोरी या डकैती की घटना कर सकते हैं। ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए ग्राम सभा मुहल्लों के अनुसार रात को पहरा देने वाले व्यक्तियों को नामित कर देती हैं। यह नामांकन आपसी सहमति से होता है एवं सभी ग्रामवासियों को बारी बारी से पहरा देने का काम करना पड़ता है। यह कार्य स्वयं की रक्षा एवं सुरक्षा के लिए होता है अतः इस कार्य के लिए किसी प्रकार के मानदेय का प्रावधान भी नहीं होता है। इस सुरक्षा व्यवस्था में गांव के व्यक्ति, क्रमिक रूप से चार–चार या इससे अधिक संख्या में पहरा देने का कार्य करते हैं। स्थानीय स्वशासन की यह सामूहिकता एवं एकता स्वयं में एक अद्‌भुत मिसाल है क्योंकि भारतीय गांव

स्वयं में एक पूर्ण गणतंत्र की भाँति कार्य करते हैं जिसमें पूरी की पूरी एक इकाई पूरे तौर पर सभी प्रकार के कार्यों का प्रबंधन स्वयं कर लेती है। यह सामूहिकता की मिसाल उस समय और भी अद्‌भुत हो जाती है जब लुटेरों से बचाव के लिए कई गांवों के लोग आपस में मिलकर एक सुरक्षा नीति का सृजन करते हैं। जिसके तहत आस–पास के गांवों के लोग मिलकर पहरा देते हैं तथा चोरों के संभावित छुपने के स्थानों पर खोज करवाते हैं एवं चोरों को पकड़वा भी देते हैं।

भारतीय गांवों की यह एकता अनेक स्थानों पर देखी जा सकती है एवं अनुकरणीय है। भारतीय ग्राम सभा का इस सामूहिकता में महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि भारतीय संस्कृति की परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य इसी संस्था के माध्यम से करवाया जाता है। गांव के लोगों की आपसी भाई–चारे की मिसाल की अनेक बातें सुनने में आती हैं कि किस प्रकार गांव के लोगों ने मिलकर एवं डटकर चोर–डकैतों का सामना किया एवं उन्हें मार भगाया। ग्राम सभा में इस प्रकार की आशा की जाती है कि यदि कोई चोरी डकैती की सम्भावना हो या घटित हो रही हो तो शोर मचाया जाता है एवं पूरा का पूरा गांव एक जुट होकर उस घटना का सामना करता है। गांव में ही कुछ सम्पन्न व्यक्तियों के पास लाइसेंसी बन्दूक एवं अन्य हथियार भी इसी उद्‌देश्य से रखे जाते हैं हालांकि ये हथियार सार्वजनिक ना होकर व्यक्तिगत स्तर पर लिए गये होते हैं और इनका उद्‌देश्य आत्म सुरक्षा ही होता है।

गांवों की इसी सुरक्षा व्यवस्था की पुख्ता बुनियाद के कारण ही चोर–लुटेरे बहुत ही कम चोरी की घटनाओं को करने में सफल होते हैं एवं अधिकांश अवसरों पर इन चोरों को मुहँ की खानी पड़ती है। चोर भी पकड़े जाने के भय से इस प्रकार से व्यवस्थित गांवों में चोरी की घटना को अंजाम देने से भय खाते हैं क्योंकि कई अवसरों पर यह भी देखा गया है कि ग्रामीणों की भीड़ चोर को पीट–पीटकर मौत के घाट ही उतार देती है। ग्रामीणों का गुस्सा इतना भयंकर होता है कि वे थाने या पुलिस पर भी उग्र आन्दोलन छेड़ देते हैं। परिणाम यह होता है कि गांवों की इस सामूहिक एकता भावना का भय शासन प्रशासन मानता है एवं गांवों से सम्बन्धित निर्णयों को लेते समय इसका विशेष ध्यान रखा जाता है कि ग्रामीणों के हितों को ध्यान में रखा जाए।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि गांव अपने स्तर पर गांवों की सुरक्षा करने का भी दायित्व अपने स्तर पर करते हैं एवं इसके लिए आवश्यक प्रयास स्थानीय स्तर पर कर लेते हैं जो कि भारतीय समाज का एक परम्परागत स्वरूप है। कई गांवों में इस प्रकार की व्यवस्था भी की गई कि गांवों के आपसी झगड़ों को भी स्थानीय स्तर पर पंचों के माध्यम से हल कर लिया जाता था। पुलिस को इन झगड़ों में हस्तक्षेप करने की अनुमति ही नहीं दी जाती थी। इसका कारण यह था कि अशिक्षित ग्रामीण पुलिस एवं कानून के अति पेचीदा कार्यप्रणाली में उलझ कर रह जाएंगे और नुक्सान उठायेंगे। इस प्रकार की हानि से बचने के लिए ग्रामीणों का यह प्रयास होता था कि अपने गांव वालों को इन स्थितियों से बचाकर स्थानीय स्तर पर ही उचित न्याय दिलवाया जाये।

यदि मुखबिर की सूचना पर पुलिस गांव में आ भी जाती थी तो ग्राम सभा के सदस्य पुलिस को कह देते थे कि अब आवश्यकता नहीं है। सलाह मशविरे के बाद दोनों पक्षों में आपस में समझौता भी करवा दिया जाता है। ग्राम पंचायत सदस्यों की

टिप्पणी

तहरीर पर पुलिस बिना किसी कार्यवाही किये ही गांवों से लौट जाती थी। परन्तु अब वह स्थिति बदल रही है। ग्रामीण परिवेश के लोग भी पुलिस एवं न्यायालय के ऊपर अधिक आश्रित हो रहे हैं। यह समस्या इतनी गम्भीर हो चली है कि भाई ही भाई के विरुद्ध थाने में रिपोर्ट लिखवाने पहुंचने लगे हैं। जबकि एक समय ऐसा था कि भाई–भाई के खिलाफ बोलता भी नहीं था। भाई को थाने भिजवाना तो बहुत ही निन्दनीय कृत्य समझा जाता था।

न्याय पंचायत

ग्राम सभा का प्रमुख घटक न्याय पंचायतें होती हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि ग्रामीण स्तर पर स्वशासन व्यवस्था में न्याय पंचायतों की महत्वपूर्ण भूमिका हुआ करती थी। ग्राम स्तर पर, न्याय पंचायतों का गठन, स्थानीय समितियों के माध्यम से होता था। ग्रामीणों के स्थानीय विवादों को हल करने के लिए इन न्याय पंचायतों का गठन किया जाता था। वर्तमान समय में भी इन न्याय पंचायतों का अस्तित्व प्रकाश में आता है। भारत में पंचायती राज के लागू हो जाने के पश्चात् भी इन न्याय पंचायतों की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। इन न्याय पंचायतों का गठन प्रमुख रूप से जातीय आधार पर किया जाता है। ये न्याय पंचायतें अपनी जाति विशेष के परम्परागत रीति–रिवाजों एवं मान्यताओं के अनुसार ही निर्णय लेने के लिए अधिकृत होती हैं। इन न्याय पंचायतों की कोई लिखित नियमावली एवं नियम नहीं होते हैं वरन् जो परम्परा सदियों से चली आ रही है उसी का निर्वाह किया जाता है।

ग्राम पंचायतों के पंचायती राज व्यवस्था के अनुरूप वैधानिक हो जाने के उपरान्त भी जातिगत विवाद एवं झगड़ों को इन्हीं न्याय पंचायतों के माध्यम से सुलझाया जाता है। पारम्परिक रूप में न्याय पंचायतों की संवैधानिक संस्थाओं के साथ सैद्धान्तिक रूप से किसी प्रकार की कोई सम्बद्धता नहीं होती है। न्याय पंचायतों का गठन, गांव के बुर्जुग एवं प्रभावशाली व्यक्तियों में से किया जाता है। गांव में जिस जाति के व्यक्ति बहुमत में होते हैं उसी जाति के बुर्जुग एवं प्रभावशाली व्यक्तियों को सामूहिक सहमति के द्वारा 'पंच' चुन लिया जाता है। पंचों के चयन की यह प्रक्रिया भी पूर्णतः पारम्परिक है तथा इसके निर्णय को कहीं पर किसी प्रकार की चुनौती देना भी सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि ग्राम स्तर पर, न्याय पंचायतों का गठन इसी प्रकार से सामूहिक रूप से सदियों से होता आ रहा है तथा यही इन न्याय पंचायतों की परम्परा है।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि पूरे गांव को इन न्याय पंचायतों के निर्णयों को आवश्यक रूप से मानना पड़ता है। यदि गांव में किसी अन्य जाति या समूह के व्यक्तियों का कोई भी स्थानीय विवाद है तो उसका निस्तारण भी इन्हीं न्याय पंचायतों के माध्यम से किया जाता है। अन्य जाति के लोग अल्पमत में होने या अप्रभावशाली स्थिति में होने के कारण इन निर्णयों को मानने को बाध्य होते हैं। यह भी तर्कसंगत है कि ये न्याय पंचायतें जो भी निर्णय लेती हैं उनमें मानवीय मूल्यों का ध्यान रखा जाता है तथा, जाति की मर्यादा के उल्लंघन को छोड़कर अन्य मामलों में न्यायोचित निर्णय लिये जाते हैं। इसका प्रमुख कारण ग्रामीण समाज की आपस में जुड़ी हुई आवश्यकतायें

होती हैं। पूरा ग्रामीण समाज एक दूसरे समूह के साथ एवं एक–दूसरे पर निर्भर रहते हैं। यही पारस्परिक निर्भरता भारतीय परिवेश को स्वयं में एक छोटे गणराज्य के रूप में परिलक्षित करती है।

टिप्पणी

न्याय पंचायतों की संरचना एवं गठन

जनसंख्या के अनुसार न्याय पालिका के सदस्यों को चयनित किया जाता है। सामान्य रूप से इन सदस्यों की संख्या पांच या सात होती है। न्याय पंचायत का अध्यक्ष, न्याय के मामलों को अन्तिम रूप देने के लिए अधिकृत रहता है। न्याय पंचायत का कार्यक्षेत्र एक गांव तक ही सीमित रहता है। परन्तु पेचीदा एवं बड़े मामलों की सुनवाई के लिए एक से अधिक गांवों की न्याय पंचायतें मिलकर निर्णय लेती हैं। न्याय पंचायत के गठन की विशेषता यह होती है कि यह संवैधानिक संस्थाओं के कार्य को ग्रहण नहीं करती एवं संवैधानिक संस्थाओं के सदस्यों का स्थान भी नहीं ले सकती है। अपितु एक पूर्णरूपेण स्वतंत्र निकाय के अन्तर्गत न्याय का कार्य करती है। इसका कारण यह है कि न्याय के पद पर आसीन व्यक्ति, पूर्णतः तटस्थ एवं कार्य के प्रति सत्यनिष्ठा रखता है। यह विश्वास किया ही जाता है कि न्याय करने वाला व्यक्ति समाज की स्थितियों से ऊपर उठकर एक व्यावहारिक एवं तटस्थ निर्णय लेता है। एक गांव से अधिक गांवों की न्याय पंचायतों से मिलकर बनी न्याय पंचायत में सभी गांवों के न्याय पंचायत सदस्य शामिल होते हैं, अपना पक्ष रखने को स्वतंत्र होते हैं।

अनेक गांवों की न्याय पंचायतों के न्याय पंचायत अध्यक्ष ही बड़ी न्याय पंचायतों में अपने गांव का प्रतिनिधित्व करते हैं एवं अपने गांव का पक्ष रखने के लिए पूर्णतः अधिकृत भी होते हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश की ''खाप पंचायतें'' इस प्रकार की न्याय पंचायतों के उदाहरण हैं जिनमें इन क्षेत्रों के जाति विशेष की अपनी पारम्परिक खाप पंचायतें होती है एवं विवादों क्या सामूहिक हित के मामलों पर निर्णय लेकर, समाज में अपना निर्णय लागू करने की आज्ञा देते हैं। यह आज्ञा लिखित न होकर मौखिक होती है एवं यह आज्ञा सार्वजनिक रूप से पंचायत में दी जाती है। यदि किसी पक्ष को निर्णय पर कोई आपत्ति हो तो वह उस आपत्ति का निराकरण या समाधान न्याय पंचायत से मांग सकने के लिए स्वतंत्र होता है। यह न्याय पंचायत एकतरफा निर्णय नहीं करती वरन्, निर्णय देने से पूर्व, दोनों पक्षों के सभी प्रश्नों एवं तुर्कों को पूरी तरह से संतुष्ट एवं स्पष्टीकरण करती है। उदाहरण के लिए न्याय पंचायत यदि किसी व्यक्ति को दोषी पा लेती है तो न्याय पंचायत को यह भी अधिकार होता है कि वह दोषी व्यक्ति की परम्परा के अन्तर्गत दण्ड भी दे सकती हैं। ये दण्ड सांस्कृतिक प्रकृति के होते हैं एवं ग्रामीण व्यक्तियों की प्रतिष्ठा से इनका सम्बन्ध होता है।

जिस परिवार के सदस्य को दण्डित किया जाता है उसका सामाजिक बहिष्कार किया जाता है। जिस परिवार का सामाजिक बहिष्कार हो जाता है उसकी प्रतिष्ठा चली जाती है एवं अन्य गांवों के उसी जाति के व्यक्ति इनसे संबंध नहीं रखना चाहते। इस प्रकार के सामाजिक प्रतिबंधों का परिणाम जाति के युवा एवं युवतियों के विवाह को लेकर होता है। इस प्रकार के अप्रतिष्ठित एवं गरिमाविहीन परिवार में कोई भी व्यक्ति अपना नया रिश्ता नहीं करना चाहेगा। इसी प्रकार से इन न्याय पंचायतों को दोषी व्यक्ति या व्यक्तियों के ऊपर शारीरिक एवं आर्थिक दण्ड लगाने का भी प्रावधान प्राप्त

टिप्पणी

होता है। दण्ड का प्रारूप एवं संख्या न्याय पंचायत सदस्य सामूहिक रूप से करते हैं। यदि पांच सदस्यों की न्याय पंचायत में तीन सदस्य एक पक्ष में हैं तो उनका निर्णय सर्वमान्य होगा और दो सदस्यों द्वारा उठाया गया विरोध या असहमति स्वमेव निरस्त हो जाती है। न्याय पंचायत के सदस्यों का कार्यकाल स्थायी नहीं होता वरन एक निश्चित समय के पश्चात् नये सदस्यों का चयन इसी पद्धति से कर लिया जाता है।

संवैधानिक संस्थाओं, जैसे न्यायलय या पुलिस की भाँति ग्राम न्याय पंचायतों को किसी व्यक्ति को वारंट जारी करने का अधिकार नहीं होता है वरन् सामाजिक मर्यादा एवं नियंत्रण के आधार पर पक्षों को न्याय पंचायत के समक्ष उपस्थित होने की अपेक्षा की जाती है। यदि कोई व्यक्ति न्याय पंचायत के किसी निर्णय को मानने से इन्कार कर दे तो, न्याय पंचायत को यह शक्ति नहीं है कि वह उस व्यक्ति को कोई ऐसा दण्ड दे जो आधुनिक न्याय प्रणाली में विदित है। उदाहरण के तौर पर यदि कोई व्यक्ति न्याय पंचायत के निर्णय की अवमानना करे एवं न्याय पंचायत के समक्ष उपस्थित होने से भी मना कर दे तो, न्याय पंचायत के पास ऐसा कोई जरिया नहीं है कि वह उस व्यक्ति को जबरन पकड़कर अपना निर्णय मनवा ले। सामान्य तौर पर यदि कोई अपराधी न्यायालय के आज्ञापत्र की अवमानना करता है तो न्यायालय सम्बन्धित पुलिस थाने की पुलिस को निर्देशित कर सकती है कि उस व्यक्ति को गिरफ्तार करके न्यायालय के समक्ष अमुक तिथि को अवश्य ही प्रस्तुत करे। या न्यायालय, पुलिस को आज्ञा दे सकने की शक्ति रखता है कि अपराधी को बन्दी बनाकर, अगली सुनवाई तक जेल में रखें।

पंचायत समिति

भारत में सामुदायिक विकास के क्रम में पंचायत समितियों के गठन की सैद्धांतिक शुरुआत पचास के दशक में ही हो गई थी। पंचायत समितियां, पंचायती राज, एवं ग्रामीण स्थानीय स्वशासन का प्रमुख घटक एवं महत्वपूर्ण इकाई होती है।

जैसा कि बताया जा चुका है कि लार्ड रिपन ने सन् 1882 में सर्वप्रथम स्थानीय स्वशासन प्रणाली को लागू करने की अनुशंसा की थी जिसमें पंचायत समितियों के गठन की सिफारिश भी की गई थी। हालांकि ब्रिटिश शासन काल में ये सिफारिशें लागू नहीं हो पाईं।

पंचायत समितियों का विकास क्रम

स्थानीय स्वशासन की दिशा में उठाये जाने वाले प्रयासों में सर्वप्रथम विकास प्रक्रिया सन् 1952 से 1955 के मध्य हुई थी। उस समय इन ग्राम समितियों को जिला कलेक्टर के मातहत (नीचे) कार्य करना होता था हालांकि ग्राम समितियां स्वयं में निर्णय ले सकती थीं परन्तु इन निर्णयों का अनुमोदन जिला कलेक्टर से लेना अनिवार्य था। पंचायत समितियां तीन स्तरों पर कार्य करती हैं–

- जिला स्तरीय पंचायत समिति
- तहसील स्तरीय पंचायत समिति
- ग्राम स्तरीय पंचायत समिति

पंचायत समितियों का ग्रामीण मॉडल सन् 1959 में मेहता समिति की सिफारिशें लागू होने के बाद प्रारंभ हुआ। मेहता समिति की रिपोर्ट एवं सिफारिशों को राष्ट्रीय विकास काउन्सिल ने 1958 में अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी थी। 1959 में राजस्थान ने जिला परिषद एवं पंचायत समिति अधिनियम पारित करके भारत में पंचायती राज व्यवस्था की तरफ देश के कदम बढ़ाने का भी श्रीगणेश कर दिया इस अधिनियम के पारित हो जाने के पश्चात् सरकारी एवं गैर–सरकारी व्यक्तियों के कार्य क्षेत्र एवं अधिकार क्षेत्र पूर्णतः परिभाषित हो गये एवं ग्राम समाज को अधिक स्वायत्तता प्राप्त होना प्रारंभ हुई। पंचायत समिति का प्रमुख, ग्राम प्रधान होता है एवं अन्य चुने हुए व्यक्ति ग्राम पंचायत अन्य सदस्य होते हैं। इन सभी का चुनाव आम चुनाव प्रणाली के माध्यम से राज्य सरकार अपने चुनाव आयोग के माध्यम से करवाना सुनिश्चित करवाती है। हालांकि राज्य सरकार इस चुनाव प्रक्रिया में निष्क्रिय एवं निष्प्रभावी हो जाती है। इन चुने हुए ग्राम पंचायत सदस्यों एवं 'प्रधान' द्वारा लिये गये निर्णयों को मानना, विकास खण्ड अधिकारी एवं उनके कार्यालय की विवशता हो जाती है। इन समितियों का कार्यकाल पांच वर्ष तक होता है।

पंचायत समितियों का संघटन

भारत में पंचायत समितियों का संघटन एक समान नहीं है वरन् राज्यों ने अपने पंचायती राज व्यवस्था में सुविधानुसार संरचना को बहाल किया हुआ है। संविधान के 73वें तथा 74वें संशोधन के पश्चात् इस असमानता को काफी हद तक कम किया गया है। परन्तु ब्रिटिश राज की समाप्ति के बाद एवं पंचायती राज लागू होने के पश्चात् ग्राम पंचायत समितियों का गठन प्रमुख रूप से चुनाव के द्वारा ही किया जाता था। इन समितियों में सर्वसम्मति से नामित, गांव के अनुभवी व्यक्ति, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति से किसी व्यक्ति का चयन पारस्परिक सहमति से कर लिया जाता था। चूंकि भारत सामंती शासन व्यवस्था से बाहर निकलकर पूंजीवादी व्यवस्था में कदम रख रहा था तो इस प्रारंभिक काल में पंचायत समितियों एवं ग्राम पंचायत दोनों में ही महिलाओं एवं अनुसूचित जाति एवं जन जाति के व्यक्तियों का विशेष एवं किसी प्रकार का उल्लेखनीय योगदान नहीं था। परम्परागत भारतीय समाज में महिला का कार्य घर सम्भालना था जबकि पुरुषों का कार्य घर से बाहर के एवं अन्य प्रमुख कार्यों को करना ही था। पंचायत समिति के संघटन में अनुसूचित जाति एवं जनजाति की कुल जनसंख्या के आधार पर सदस्य चुने जाने का प्रावधान पंचायती राज व्यवस्था में किया गया था। इस आरक्षण की प्रमुखता यह रही कि गांव के अनुसूचित जाति या जनजाति में से जो भी प्रभावशाली एवं असरदार व्यक्ति होते थे सामान्यतः उनका निर्वाचन बार–बार होता था और वे ही प्रतिनिधि के रूप में वर्षों तक कार्य करते रहे। इसका प्रमुख कारण इन जाति के व्यक्तियों का अत्यंत पिछड़ापन, एवं बहुत अधिक अशिक्षा थी। प्रारंभिक स्तर पर शिक्षा का स्तर तो पूरे भारतीय समाज में ही बहुत कम था जिसमें कि इन जातियों की साक्षरता दर तो बहुत ही चिंतनीय स्तर तक निम्न थी। इन जातियों में उच्च जाति के विरुद्ध न बोलने का एवं उनका सामना करने का साहस नहीं होता था क्योंकि सैंकड़ों वर्षों के सामन्ती सामाजिक ढांचे ने इन वर्गों को इसी प्रकार रखा था। पंचायत राज एवं शिक्षा के प्रसार ने इस प्रतिरोध को शनैः–शनैः हटाना प्रारंभ किया एवं ग्राम समितियों में इन जातियों के व्यक्तियों का बहुत कम, परंतु प्रतिनिधित्व होना प्रारंभ हो गया। यह भी बताना एवं समझना महत्वपूर्ण है कि इन जाति

एवं वर्ग के सदस्यों की निर्णय लेने में भूमिका एवं योगदान कितना था। परंतु यह तो हमारे समाज का अध्ययन करने पर पता चलता ही है कि प्रमुख निर्णयों में इन की भूमिका बहुत अधिक प्रभावशाली एवं निर्णायक नहीं होती थी।

टिप्पणी

संविधान के 73वें एवं 74वें संशोधन के पश्चात् अनुसूचित जाति/जनजाति एवं महिलाओं के लिए आरक्षित की गई ग्राम सभा एवं पंचायत की सीटों के कारण इन में महिलाओं एवं अनुसूचित जाति एवं जनजाति के व्यक्तियों की भागीदारी हर हाल में सुनिश्चित हो गई है। अब संविधान में यह सुनिश्चित कर दिया गया है कि हर सूरत में ग्राम सभा के चुनावों में इन वर्गों के लिए सीटें आरक्षित होंगी। इस आरक्षण ने भारतीय समाज के परंपरागत स्थानीय स्वशासन व्यवस्था को पूर्णतः बदल दिया है। गांव की संरचना या जनसंख्या प्रतिशत चाहे जो भी रहे उसमें क्रमिक रूप से इन वर्गों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो गया है।

ग्राम समितियों के चुनाव की विधि : ग्राम पंचायत समितियों का चुनाव, प्रमुख रूप से चुनाव प्रक्रिया के ही द्वारा होता है। तथापि नामित सदस्य भी इसका अंग हो सकते हैं।

(i) **प्रत्यक्ष चुनाव व्यवस्था** : चुनाव की यह व्यवस्था अधिक सफल एवं लोगों के मध्य पारदर्शिता का प्रसार करने वाली है। सीधे तौर पर चुनाव में, सदस्य बनने के इच्छुक व्यक्ति चुनाव लड़कर, सदस्य बन सकते हैं। यह चुनाव पूरी ग्रामीण व्यवस्था में राजनीतक हस्तक्षेप से वंचित है अर्थात् इनमें किसी प्रकार की राजनीतिक पार्टी का हस्तक्षेप परोक्ष या अपरोक्ष रूप से नहीं होता है। हमारे देश की चुनाव प्रक्रिया तो पूरे विश्व में एक अनूठी मिसाल है एवं पंचायत चुनाव स्वयं में एक बहुत बड़ा कार्य है। वर्तमान समय में बढ़ती प्रतियोगिता एवं जन–जागरूकता में प्रत्यक्ष निर्वाचन को पूर्णतः स्वीकार कर लिया गया है एवं पूरे राष्ट्र में इसी पद्धति से समिति सदस्यों का निर्वाचन होता है। यह बात भी उल्लेखनीय है कि गांवों में भी निर्वाचकों (मतदाताओं) को आकर्षित करने के राजनीतिक तरीकों का उपयोग किया जाता रहा है एवं अधिकतर मामलों में प्रभावशाली प्रत्याशियों को इन तरीकों से निर्वाचित हो जाने में सहायता भी मिल जाती है। निर्वाचन आयोग का निरंतर प्रयास इन चुनावों को निरपेक्ष एवं पारदर्शी विधि से संपन्न करवाने का होता है।

(ii) **अप्रत्यक्ष चुनाव व्यवस्था** : पंचायती राज व्यवस्था के लागू हो जाने के पश्चात् कुछ राज्यों ने अप्रत्यक्ष चुनाव व्यवस्था को भी अपनाया। इसमें सदस्यों का चयन, नामांकन या सर्व सहमति से गांव के स्तर पर ही कर लिया जाता था इन समितियों का प्रमुख पद अध्यक्ष का होता है जोकि गांव का निर्वाचित प्रधान या सरपंच होता था तथा बाकी सदस्य सबकी सहमति से चुन लिये जाते थे जो गांव के लगभग हर वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हों।

ग्राम समितियों की मिश्रित व्यवस्था : भारतीय ग्रामीण व्यवस्था में स्वशासन स्थापित करने के लिए ग्राम समितियों की मिश्रित व्यवस्था को भी लागू करने के लिए प्रयोग किये गये। इस व्यवस्था में पंचायत समिति के सदस्यों का चुनाव, सरपंच एवं पंचों के मध्य से एवं, गांव के अन्य सम्मानित व्यक्तियों जैसे संसद सदस्य, विधानसभा

सदस्य या अनुसूचित जाति एवं जनजाति के सदस्यों को नामित करने का भी प्रावधान एवं प्रयोग किये गये। इस व्यवस्था को धरातल स्तर पर लागू करने एवं ग्रामीणों को शिक्षित करने के उद्देश्य से अनेक पंचायती राज विद्यालयों की भी स्थापना की गई। इन विद्यालयों के माध्यम से ग्रामीणों को ग्रामीण स्तर पर, पंचायती राज के बारे में शिक्षित करने का प्रयास किया गया है।

अनेक राज्यों ने ग्राम समितियों में, MP एवं MLA के प्रतिनिधित्व को स्वीकार नहीं किया है। इन राज्यों के अनुसार MP एवं MLA को ग्रामीण स्तर की ग्राम समितियों में सदस्य के रूप में नामित नहीं करना चाहिए। इसके पक्ष में यह तर्क दिया गया कि, चूंकि नगरपालिका की समितियों में MP या MLA को सदस्य के रूप में नामित नहीं किया जाता है। अनेक बहसों एवं तर्कों के पश्चात् इस बात को स्वीकार कर लिया गया कि स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था में राजनीतिक दलों के निर्वाचित संसद या विधानसभा सदस्यों को नामित न किया जाये। इसका परिणाम यह हुआ कि ग्राम पंचायतें एवं पंचायती राज, राजनीतिक क्षेत्र के प्रभाव से काफी सीमा तक प्रभावहीन रहने में सफल हुए। इस प्रकार से भारतीय स्वशासन की पंचायती राज प्रणाली में मिश्रित ग्राम समितियों का मॉडल अधिक सफल नहीं रहा।

ग्राम समितियों का आकार : भारत की ग्रामीण स्वशासन व्यवस्था में ग्राम समितियों का आकार निश्चित नहीं है। उदाहरण के लिये अगर हम महाराष्ट्र की पंचायत समितियों का आकार देखें तो पता चलता है कि इनके सदस्यों की संख्या उत्तर प्रदेश की पंचायत समितियों के सदस्यों की तुलना में बहुत कम है। महाराष्ट्र में पंचायत समिति के सदस्यों की संख्या कम होती है जबकि उत्तर प्रदेश में इन समितियों के सदस्यों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत अधिक होती है। महाराष्ट्र की पंचायत समिति के सदस्यों का आकार एक कार्यकारिणी समिति के समकक्ष होता है। कार्यकारिणी समिति में कुछ चुने हुए विशेष सदस्य होते हैं एवं एक निश्चित समयांतराल पर समिति की बैठकों में उद्देश्यपूर्ण विषयों पर वार्तालाप करके किसी एक सर्वमान्य निर्णय पर पहुंच जाते हैं। इस निर्णय को सर्व सम्मति एवं बहुमत के आधार पर पारित किया जाता है।

कार्यकारिणी समिति का एक मनोनीत अध्यक्ष होता है तथा महामंत्री एवं कोषाध्यक्ष के पद होते हैं। प्रत्येक सदस्य के कार्य स्पष्ट रूप से परिभाषित होते हैं। सदस्यों द्वारा नियमों का पालन करना अनिवार्य होता है। प्रजातांत्रिक संस्थाओं के कार्य करने की विधि की सफलता का कारण इन संस्थाओं के सदस्यों द्वारा अपनी बात को स्पष्ट करने एवं रखने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होना है। प्रत्येक सदस्य अपनी बात को अपने दृष्टिकोण से रखने के लिए पूर्णतः स्वतंत्र होता है ठीक इसी प्रकार से प्रत्येक सदस्य तार्किक रूप से किसी भी विचार का विरोध कर सकता है। जिस विचार के पक्ष में बहुमत होता है उसे ही स्वीकार कर लिया जाता है।

दूसरे प्रकार की ग्राम समितियां आकार में बड़ी होती हैं एवं उनके कार्य करने की विधि आम सभा की भांति होती है। इसमें सदस्यों की संख्या बहुत अधिक होने के कारण, किसी एक सर्वमान्य निर्णय पर पहुंचने में बहुत विरोधाभास होता है।

प्रधान

प्रधान (Head), पंचायत समिति के सदस्यों के द्वारा चुना जाता है। प्रधान का चयन हो जाने के पश्चात्, प्रधान का प्रमुख कर्त्तव्य हो जाता है कि वह, अन्य सदस्य एवं समिति के प्रमुख, कार्यकारी अधिकारी के रूप में कार्य करें। पद की मर्यादा एवं स्थापित मानकों से विरुद्ध कार्य करने पर प्रधान को ठीक उसी प्रकार से पदच्युत भी किया जा सकता है। अर्थात् यदि सदस्यों में से बहुमत ने प्रधान को हटाने के पक्ष में प्रस्ताव दिया तो प्रधान को अपना पद छोड़ने पर बाध्य होना पड़ता है। कई स्थानों पर पंचायत समिति एवं प्रधान सभी एक ही पक्ष के निर्वाचित हो जाते हैं ऐसी स्थिति में पूरी पंचायत समिति के ढांचे का कार्य भी एकतरफा हो जाता है। यह स्थिति ग्राम एवं ग्रामीण जनता के लिए दो–धारी तलवार के समान होती है। इस समिति के द्वारा लिए गये निर्णय एकतरफा एवं तानाशाह प्रवृत्ति के हो सकते हैं।

प्रायः ऐसा देखा गया है कि पंचायत समिति अपने एवं अपने सदस्यों के लाभार्थ तो कार्य करती है परन्तु इसके अतिरिक्त ग्राम समाज हेतु कुछ भी नहीं करती। पंचायती राज व्यवस्था के आरंभिक चरण में इस तरह की अनेक शिकायतें प्राप्त होती रही हैं कि प्रभावशाली व्यक्तियो का इन समितियों पर वर्चस्व स्थापित हो गया एवं वे अपने स्वार्थ के अनुसार एवं मनमाने ढंग से कार्य करने में लिप्त पाए गए। परन्तु इस समस्या का समाधान पंचायत चुनाव में पारदर्शिता एवं समाज के सभी वर्गों के लिए आरक्षण का प्रावधान करके इस समस्या को काफी हद तक कम कर दिया गया है। पूर्व में जो वित्तीय सहायता ग्राम प्रधान के माध्यम से गांव में आती थी वही सहायता अब ग्राम पंचायत के संयुक्त बैंक खातों में आने लगी एवं खर्च का भुगतान चैक द्वारा होने से कुछ हद तक भ्रष्टाचार पर नियंत्रण हुआ है।

प्रधान के कार्य : पंचायत समिति के प्रधान को निम्नलिखित कार्यों को सम्पादित करने का दायित्व सौंपा जाता है–

- समिति की बैठकों का आयोजन करना।
- समिति की बैठकों की अध्यक्षता करना।
- ग्राम पंचायत द्वारा लिये गये निर्णयों एवं किये गये कार्यों की सराहना करना एवं उनमें सहयोग प्रदान करना।
- ग्राम पंचायतों को आवश्यकतानुसार दिशा निर्देश एवं योजनाओं को बनाने में सहयोग प्रदान करना।
- ग्राम की सहकारी संस्थाओं के कार्य में सहयोग प्रदान करना।
- स्वयं सेवी संगठनों, समूहों एवं समितियों को सृजनात्मक कार्यों के लिए प्रोत्साहन देना, उन्हें बढ़ावा देना।
- ग्राम विकास अधिकारी कार्यालय के साथ प्रशासनिक समन्वय स्थापित करना।
- ग्राम विकास अधिकारी के साथ समन्वय करके विकास योजनाओं को ग्राम स्तर पर लागू करवाने में दोतरफा सहयोग करना।
- प्रधान के पास ग्राम विकास के कार्यों के अलावा प्रशासनिक कार्यों का भी दायित्व होता है।

- यदि किसी कारण वश प्रधान अवकाश पर हो या अस्वस्थ हो तो, उप–प्रधान को वो सभी अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जो कि प्रधान को प्रदत्त होते हैं।
- प्रधान, विकास अधिकारी की गोपनीय रिपोर्ट को जिला मजिस्ट्रेट (DM) को ज्ञापित करते हैं। अर्थात् विकास अधिकारी के कार्य करने एवं उसके कार्य का मूल्यांकन करने का अधिकार प्रधान को ही प्राप्त होता है।

पंचायत समितियों के प्रकार्य

पंचायत समिति का कार्य (Functions of Panchayat Samiti) स्थानीय स्तर पर विकास से सम्बन्धित योजनाओं को बनाना होता है एवं उन योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु प्रयास करना भी होता है। पंचायत समिति के द्वारा किये जाने वाले कार्यों को निम्न प्रकार से क्रमबद्ध किया जा सकता है–

(i) सामुदायिक विकास : विकास कार्यों के बिना किसी भी समाज की वर्तमान स्थिति से बेहतरी हो पाना एक कठिन कार्य होता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए पंचायत समितियों को इस प्रकार के सभी सामुदायिक विकास कार्यक्रमों (Community Development Programs) को एक साथ जोड़कर लेकर चलने का दायित्व दिया जाता है ताकि, गांव की आवश्यकताओं के अनुसार विकास कार्यक्रमों को बनाया जा सके। उदाहरणार्थ, गांव में ऊर्जा (विद्युत आपूर्ति) की व्यवस्था बहुत ही दयनीय स्थिति में होती है। अनेक गांवों में बिजली के संयोजन भी नहीं होते या गांव में ही अनेक मुहल्लों या घरों तक बिजली के खम्बे एवं विद्युत की आपूर्ति की मूलभूत सुविधा ही नहीं होती। पंचायत गांव के सरपंच एवं ग्राम सभा के मिश्रित सहयोग से सम्बन्धित विभाग से आग्रह कर सकते हैं। इस प्रकार से सम्बन्धित विभाग स्थान का सर्वे करने के पश्चात् विद्युत आपूर्ति की व्यवस्था का कार्य प्रारम्भ कर देते हैं।

इसी प्रकार से गांव के लोगों के लिए रोजगार का सृजन करना भी एक गम्भीर चुनौती है जिसका उपयुक्त समाधान पंचायत समिति के सदस्य खोजने का प्रयास करते हैं एवं तदनुसार योजनाएं बनाने में सहायता करते हैं जिनसे कि गांव में रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकें।

(ii) उत्पादन कार्यक्रम : गांव के लोगों की प्रमुख आजीविका का साधन कृषि एवं कृषि कार्य से सम्बन्धित व्यवसाय ही होते हैं। किसान एवं ग्रामीण, कृषि, दुग्ध उत्पादन, पशुपालन, लघु उद्योग, मछली पालन आदि कार्य करके अपना जीवन यापन करते हैं। पूंजीवाद के वर्तमान युग में उत्पादन जितना अधिक होगा, उत्पादक को लाभ भी उतना ही अधिक होता है अतः, पंचायत समितियों को यह दायित्व भी सोंपा गया है कि वे ग्रामीण समुदाय द्वारा उत्पादन की जा रही वस्तुओं की मात्रा बढ़ाने में सहायक विकास कार्यक्रमों को लागू करवायें। ये विकास कार्यक्रम निम्नलिखित श्रेणियों में उत्पादन बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं–

- कृषि उपज
- पशुपालन
- पशुपालन विकास
- दुग्ध उत्पादन एवं विकास

टिप्पणी

- कृषि यन्त्रों एवं साधनों का विकास
- फल एवं सब्जी उत्पादन में सहायक कार्यक्रम
- कृषि एवं पशुपालन के सम्बन्ध में सेवाओं का विकास
- बीज विकास कार्यक्रम
- पशु नस्ल सुधार विकास
- कृत्रिम पशु गर्भाधान केन्द्र
- ऊन रेशम, मधुमक्खी, मत्स्य पालन एवं विकास
- गांव में वन एवं चरागाहों का विकास
- सिंचाई की सुविधाओं का विकास
- सहकारी समितियों का गठन

(iii) सामाजिक सुविधाएं एवं जन कल्याण : मनुष्य जिस समाज में रहता है उसमें, मनुष्य को अनेक प्रकार की सुविधाओं की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की सामाजिक सुविधाएं एवं जन कल्याणकारी कार्यक्रमों का प्रयोजन स्थानीय स्वशासी संस्थाओं को भी करना पड़ता है। प्रमुख सामाजिक सुविधाएं एवं जन कल्याणकारी कार्यक्रमों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं–

- स्वास्थ्य
- कचरा एवं मलमूत्र विस्तारण
- सामाजिक कल्याण
- संचार सुविधाएं
- घरों का रख–रखाव
- आपातकालीन सुविधाएं एवं सेवाएं
- सामुदायिक सेवाएं
- अन्य सुविधाएं

उपरोक्त सुविधाओं का क्रियान्वयन ग्राम पंचायत एवं ग्राम ग्राम सभाओं के जिम्मे होता है।

शिक्षा : प्रत्येक गांव में शिक्षा के प्रसार के लिए, गांव में ही प्राथमिक विद्यालय खोले गये हैं। सरकार का प्रयास है कि गांव का पूरा समाज शिक्षित एवं साक्षर हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रत्येक ग्राम सभा में कम से कम एक प्राथमिक विद्यालय को खोला जाना सुनिश्चित किया गया है। ग्राम पंचायत के प्रयासों से इन विद्यालयों को जूनियर हाई स्कूल, हाई स्कूल एवं इन्टरमीडिएट स्तर तक बढ़ाया गया है। इन विद्यालयों का संचालन, हालांकि राज्य सरकार की वित्तीय सहायता एवं कार्मिकों के द्वारा ही किया जाता है। परन्तु ग्राम पंचायत का कार्य इन विद्यालयों की स्थापना करना एवं इनके विकास के लिए स्थान एवं अन्य सुविधाएं उपलब्ध करवाना होता है। ग्राम पंचायत के व्यक्ति इस प्रकार के विद्यालयों में अपरोक्ष रूप से निरीक्षण एवं देख–रेख का कार्य करते हैं।

स्वास्थ्य : ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रायः अभाव होता है। गांवों की, शहरी क्षेत्रों से भी पर्याप्त दूरी होती है। जिस कारण, ग्रामीण को स्वास्थ्य सुविधाओं

के लिए शहरों पर निर्भर रहना स्वाभाविक होता है। निर्धन ग्रामीणों को मूलभूत स्वास्थ्य सेवाओं को गांव की ही सीमा में उपलब्ध करवाना ग्राम पंचायतों के कार्य क्षेत्र में आता है। ग्राम पंचायत सदस्य एवं समितियां खण्ड विकास अधिकारी एवं स्थानीय प्रशासन के साथ वार्तालाप करके अपने ग्रामीण क्षेत्रों की स्वास्थ्य सुविधाओं में बेहतरी एव उन्हें उपलब्ध करवाने के प्रयास करते हैं। स्वास्थ्य अस्पताल के लिए जितनी भूमि की आवश्यकता होती है वह भूमि ग्राम सभा अपनी ग्राम पंचायत के क्षेत्र से उपलब्ध करवाती है। इस भूमि पर सरकारी व्यय पर सरकारी प्राथमिक चिकित्सालय के लिए आवश्यक भवन का निर्माण करवाने के प्रयास ग्राम पंचायत करवाती है। भवन निर्माण हो जाने के पश्चात् ग्राम पंचायत के प्रयासों से यथायोग्य चिकित्सक की नियुक्ति करवाने की कार्यवाही राज्य सरकार के स्थानीय प्रशासन के द्वारा करवाई जाती है।

चिकित्सा के लिए आवश्यक दवाएं एवं जांच करवाने का व्यय भी राज्य सरकार के कार्य क्षेत्र में आता है। इस ग्रामीण स्वास्थ्य केन्द्र की देख–रेख एवं संचालन ग्राम पंचायत ही करती है। ग्राम पंचायत के निर्वाचित सदस्यों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह ग्रामीणों एवं स्वास्थ्य केन्द्र के मध्य उपयुक्त समन्यव स्थापित करने की व्यवस्था सुनिश्चित करवायें। यदि स्वास्थ्य केन्द्र में कोई समस्या है तो उसका समाधान स्थानीय स्तर पर, तहसील स्तर या जिला स्तर पर करवाने का सार्थक प्रयास करे।

ग्रामीण समाज, कृषि के साथ–साथ, पशुधन पर भी अपनी आजीविका हेतु निर्भर होता है। सरकार ने ग्रामीण पशुधन के स्वास्थ्य के लिए प्रत्येक ग्राम पंचायत में पशु चिकित्सालय की भी व्यवस्था की है। इस पशु चिकित्सालय का पूरा व्यय राज्य सरकार वहन करती है।

कचरा एवं मलमूत्र निस्तारण : ग्रामीण क्षेत्रों में कूड़ा–करकट एवं मलमूत्र के निस्तारण की समस्या बहुत गम्भीर है। भारत सरकार का ''स्वच्छ भारत अभियान'' इस समस्या के समाधान की तरफ सार्थक प्रयास है। ग्राम पंचायत की साफ–सफाई समिति का कार्य गांव की साफ–सफाई रखने एवं व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने का भी होता है। गांव में सफाई कर्मचारियों की नियुक्ति, गांव के ही व्यक्तियों में से की जाती है। इन सफाई कर्मचारियों पर आने वाले व्यय को ग्राम पंचायत द्वारा ही वहन किया जाता है। भारत सरकार एवं राज्य सरकार की सफाई के लिए आई हुई योजनाओं को योग्य ग्रामीणों तक पहुंचाने एवं योग्य उम्मीदवारों का चयन भी ग्राम पंचायत की अनुशंसा पर किया जाता है। परन्तु वास्तव में ग्राम पंचायत अपने इस दायित्व को पूर्णरूपेण साक्षात रूप देने में असमर्थ ही सिद्ध हुई है एवं ग्रामीण समाज में साफ–सफाई एवं मलमूत्र के उचित निस्तारण की अव्यवस्था स्पष्टतः देखी जा सकती है। तथापि अनेक ग्राम पंचायतों में ग्रामीणों एवं निर्वाचित सदस्यों के प्रयास से नालियों आदि के निर्माण हो जाने से गन्दे पानी की निकासी की आंशिक व्यवस्था अवश्य हो रही है।

सामाजिक कल्याण : गणतंत्रीय व्यवस्था में शासन, एवं प्रशासन का प्रयास यह होता है कि वह सम्पूर्ण समाज का सर्वांगीण विकास करने का कार्य करे। सामाजिक कल्याण एक वृहद विषय है जिसके अन्तर्गत समाज के प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों का कल्याण

टिप्पणी

भारतीय ग्राम पंचायतों को दिये गये वित्तीय अनुदान संबंधी आंकड़े (2005 से 2010 तक)

States	Annual Allocation (Rs lakh)	Total Allocation (Rs lakh)	Amount released (Rs lakh)						State-wise Share of total Allocation (%)	State-wise Share of total release (%)
			2005-06	2006-07	2007-08	2008-09	2009-10*	2005-06 to 2009-10		
Andhra Pradesh	31,740	158,700	31,740	15,870	31,740	31,740	31,740	142,830	7.9	8.6
Arunachai Pradesh	1,360	6,800	0	680	0		1,360	2,040	0.3	0.1
Assam	10,520	52,600	5,260	0	10,520	0	15,780	31,560	2.6	1.9
Bihar	32,480	162,400	16,240	32,480	48,720	32,480	16,240	146,160	8.1	8.8
Chhattisgarh	12,300	61,500	12,300	12,300	12,300	12,300	6,150	55,350	3.1	3.3
Goa	360	1,800	180	0	77	360	0	617	0.1	0.0
Gujarat	18,620	93,100	9,310	18,620	18,620	27,930	9,310	83,790	4.7	5.0
Haryana	7,760	38,800	7,760	7,760	7,760	7,760	3,880	34,920	1.9	2.1
Himachal Pradesh	2,940	14,700	2,940	2,940	2,940	2,940	0	11,760	0.7	0.7
Jammu & Kashmir	5,620	28,100	1,762	3,524	0	0	0	5,286	1.4	0.3
Jharkhand	9,640	48,200	0	0	0	0	0	0	2.4	0.0
Karnataka	17,760	88,800	8,880	26,640	8,880	26,640	0	71,040	4.4	4.3
Kerala	19,700	98,500	19,700	19,700	19,700	9,850	0	68,950	4.9	4.1
Madhya Pradesh	33,260	166,300	33,260	33,260	33,260	16,630	33,260	149,670	8.3	9.0
Maharashtra	39,660	198,300	19,830	39,660	39,660	59,490	19,830	178,470	9.9	10.7
Manipur	920	4,600	212	423	212	423	635	1,905	0.2	0.1
Meghalaya	1,000	5,000	0	1,500	0	2,500	0	4,000	0.3	0.2
Mizoram	400	2,000	200	600	0	800	0	1,600	0.1	0.1
Nagaland	800	4,000	400	800	400	1,600	400	3,600	0.2	0.2
Orissa	16,060	80,300	16,060	16,060	16,060	16,060	8,030	72,270	4.0	4.3
Punjab	6,480	32,400	3,240	6,480	3,240	6,480	3,240	22,680	1.6	1.4
Rajasthan	24,600	123,000	24,600	24,600	12,300	36,900	12,300	110,700	6.2	6.6
Sikkim	260	1,300	130	0	0	910	130	1,170	0.1	0.1
Tamil Nadu	17,400	87,000	17,400	17,400	8,700	26,100	8,700	78,300	4.4	4.7
Tripura	1,140	5,700	0	570	0	1,140	1,710	3,420	0.3	0.2
Uttar Pradesh	58,560	292,800	58,560	29,280	87,840	58,560	29,280	263,520	14.6	15.8
Uttarakhand	3,240	16,200	1,620	3,240	1,620	0	0	6,480	0.8	0.4
West Bengal	25,420	127,100	12,710	25,420	25,420	38,130	12,710	114,390	6.4	6.9
Total	**400,000**	**2,000,000**	**304,294**	**339,807**	**389,969**	**417,723**	**214,685**	**1,666,478**	**100**	**100**

(*स्रोतः* 13वें वित्त आयोग की रिपोर्ट भारत सरकार ;2009)

एवं हित करना सम्मिलित है। कल्याणकारी योजनाएं बनाकर उन्हें समाज के प्रत्येक क्षेत्र एवं वर्ग के लिए लागू करना शासन एवं प्रशासन का कार्य है। परन्तु समाज कल्याण को किसी एक क्षेत्र विशेष में सीमित करके नहीं रखा जा सकता है। भारत एक ऐसा सामाजिक समूहों वाला देश है जिसमें अनेक जाति, धर्म एवं सम्प्रदाय के व्यक्ति अलग–अलग भौगोलिक परिस्थितियों में रहकर अपना जीवन यापन करते हैं। इन व्यक्तियों को विविधता के बावजूद एक समान रूप से जीवन–यापन करने का संवैधानिक अधिकार भी प्राप्त है।

जनकल्याणकारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों की जनता के कल्याण एवं हितार्थ कार्य करना होता है। उदाहरण के लिए भारत के किसी भी गांव को लिया जा सकता है। एक गांव में कई जातियों या धर्म के व्यक्ति निवास करते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारतीय समाज सामन्ती व्यवस्था पर चलता था जिसमें वर्ण आधारित व्यवस्था का चलन था परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् एवं भारतीय संविधान के लागू हो जाने के उपरांत, भारतीय संविधान में प्रत्येक नागरिक को समानता का अधिकार दिया गया। इसी समानता के अधिकार के आधार पर प्रत्येक गांव के प्रत्येक व्यक्ति का यह अधिकार हो जाता है कि जो भी कल्याणकारी योजना सरकार लागू करे वह उन तक अवश्य ही पहुंचे।

सरकारों का विशेष ध्यान समाज के कमजोर वर्गों, विशेषकर SC/ST एवं महिलाओं एवं बच्चों के कल्याण करने पर रहता है। शासन का यह भी प्रयास रहता है कि सरकार की इन कमजोर वर्गों के कल्याण के लिए बनाई गई योजनाओं को उन तक पहुंचाया जाए। गांव में रहने वाले अलग–अलग जाति समूह के लिए अलग–अलग कल्याणकारी योजनाओं के प्रस्ताव तैयार करके लागू किये गये हैं। उदाहरण के लिए कमजोर वर्ग के SC एवं ST के परिवारों को ग्राम सभा की कृषि योग्य भूमि में से कुछ भूमि देने का प्रावधान किया गया। हालांकि यह भूमि पूर्ण स्वामित्व वाली भूमि की श्रेणी में नहीं आती वरन् इस भूमि पर कृषि करने का पूर्ण अधिकार व्यक्ति विशेष का हो जाता है इस भू–स्वामी को पट्टेदार कहा जाता है। पट्टेदार कृषक की भूमि को खरीदा या बेचा नहीं जा सकता और ना ही किसी अन्य व्यक्ति के नाम किया जा सकता है। इस प्रकार की कल्याणकारी योजनाओं को ग्राम पंचायतों के सहयोग के बिना लागू नहीं किया जा सकता था। पहली बार भारत के SC/ST परिवारों को इस योजना के तहत भू–स्वामित्व का अधिकार प्रदान किया जा सका एवं उन्हें स्वतंत्र रूप से अपनी आजीविका अर्जित करने का सम्मानपूर्ण अधिकार प्राप्त हो सका।

संचार सुविधाए : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में संचार का अर्थ तो पूर्ण रूपेण बदल चुका है एवं सूचना प्रोद्योगिकी ने अपना दायरा समाज के प्रत्येक वर्ग तक विस्तारित कर ही लिया है। भारत का ग्रामीण समाज विकास के मार्ग पर नगरीय क्षेत्र के समकक्ष रह सके इसके लिए यह परमावश्यक हो जाता है कि सूचना एवं प्रौद्योगिकी का लाभ गांवों तक पहुंचे। ग्राम पंचायतें एवं ग्राम पंचायतों के निर्वाचित सदस्य इस कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह अपेक्षा की जाती है कि सैद्धांतिक रूप से संचार सुविधाओं का प्रचार प्रसार करने में ग्राम पंचायतें अपनी अग्रणी भूमिका निभाएं

टिप्पणी

परंतु वास्तव में होता इसके विपरीत है। भारत की बहुत बड़ी जनसंख्या अभी भी अशिक्षा एवं निर्धनता से जूझ रही है। इस स्थिति में इन निर्धन व्यक्तियों के पास अपनी आजीविका कमाने के अतिरिक्त बहुत अधिक समय या धन नहीं बच पाता कि वे अपने दैनिक कार्य से अधिक कुछ सोच सकें। इस अभावग्रस्त जनसंख्या तक सरकारी योजनाओं के प्रचार–प्रसार की नैतिक एवं पदेन जिम्मेदारी ग्राम पंचायत की बनती है।

ग्राम पंचायत में बने हुए पंचायत घर में बैठकें आयोजित करना ग्राम पंचायत के निर्वाचित सदस्यों का कार्य होता है। इन बैठकों में ग्राम पंचायत के सदस्य एवं प्रधान, ग्रामवासियों को सरकारी योजनाओं एवं विकास सम्बन्धित कार्यों की जानकारी प्रदान करवाने का कार्य करते हैं। अशिक्षित ग्रामीणों को इन योजनाओं के बारे में बताकर एवं योग्य उम्मीदवारों को इन योजनाओं का लाभ दिलवाना ही सुदृढ़ संचार प्रणाली का उद्देश्य होता है। ग्राम सभा के पंचायत घर के शिलापट्टों (ब्लैकबोर्ड/नोटिस बोर्ड) पर इन सभी विकास योजनाओं के बारे में स्पष्ट रूप से लिखा भी जाता है। अतः जो भी व्यक्ति पंचायत घर, विद्यालय प्रांगण, स्वास्थ्य केन्द्र या बारात घर आदि में जाए तो सरकारी योजनाओं की जानकारी प्राप्त करके लाभान्वित हो सके। संचार के अन्य साधनों में ग्राम में आये सस्ते गल्ले के सामान की सूचना पूरे गांव में प्रसारित करवाना भी ग्राम पंचायत के कार्य क्षेत्र में ही आता है।

घरों का रख–रखाव : ग्राम पंचायत का कार्य, ग्राम पंचायत के भवनों की देखभाल एवं रख–रखाव करना भी होता है। ग्राम पंचायत को पंचायत घर, सामुदायिक बारात घर, स्वास्थ्य केन्द्र, प्राथमिक विद्यालय, चौपाल, बैठक कक्ष, स्थानीय बाजार (पैठ) आदि के भवनों की उचित देखभाल का कार्य भार भी सौंपा जाता है। इस प्रकार के कार्यों पर होने वाले व्यय को ग्राम पंचायत अपने या सरकारी माध्यम से जुटाती हैं।

आपातकालीन सुविधाएं एवं सेवाएं

ग्रामीण समाज अनेक प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं के संकट में रहते हैं। इन आपदाओं से निपटने के लिए प्रत्येक ग्राम पंचायत अपने क्षेत्र के अनुसार उचित सुविधाओं एवं सेवाओं का प्रबंधन समय रहते करती है, जैसे–

- बाढ़
- सूखा
- अतिवृष्टि
- ओलावृष्टि
- जंगली जानवरों से जन–धन एवं माल की हानि
- अन्य प्राकृतिक आपदाएं

टिप्पणी

भारतीय ग्राम पंचायतों को, प्रति व्यक्ति आधार पर जारी की गई वित्तीय सहायता संबंधित आंकड़े (1990 से 2008 तक)

States	प्रति व्यक्ति व्यय (रुपये)			व्यय में वार्षिक वृद्धि दर (2003–08)
	1990-91	2000-01	2007-08	
Andhra Pradesh	206	793	346	14.5
Assam	1	3	800	29.6
Bihar	18	4	43	38.2
Chhattisgarh	-	361	1,203	23.7
Goa	30	198	154	-7.8
Gujarat	399	1,294	1,930	10.3
Haryana	55	142	585	31.6
Himachal Pradesh	9	41	398	16.3
Jharkhand	–	–	2	1.4
Jammu & Kashmir	–	750	–	–
Karnataka	403	1,296	2,827	20.9
Kerala	46	645	823	17.4
Madhya Pradesh	45	114	1,031	84.7
Maharashtra	298	686	2,141	10.7
Manipur	7	26	493	10.4
Meghalaya	82	52	380	15.3
Nagaland	–	–	558	46.3
Orissa	65	37	544	18.4
Punjab	70	85	131	5.4
Rajasthan	219	362	67	10.9
Sikkim	–	79	199	27.5
Tamil Nadu	60	165	1,325	11.7
Tripura	5	186	1,321	27.3
Uttar Pradesh	41	47	166	14.9
Uttarakhand	–	49	0.4	-34.3
West Bengal	25	107	540	25.9
Total	**148**	**324**	**328**	**17.7**

(*स्रोत :* पंचायती राज मंत्राालय, भारत सरकार।
: भारतीय लोकप्रशासन संस्थान नई दिल्ली।)

अतः आपदाओं की स्थिति में ग्राम पंचायत अपने स्तर पर धन एकत्र करके आपदा पीड़ितों की सहायता करने का कार्य भी स्थानीय स्तर पर कर सकती है। अनेक गांवों में देखा गया है कि ग्राम पंचायत अपने स्वयं के स्तर पर बाढ़ एवं सूखा आदि की आपदाओं से बचने के लिए बांध आदि का निर्माण सामूहिक सहायता कार्यक्रमों के द्वारा कर लेती हैं। तालाब एवं पोखरों में वर्षा जल संरक्षित करके, इस संचित जल से सिंचाई का कार्य ले लिया जाता है। राजस्थान इस प्रकार के जल प्रबंधन में अनुकरणीय उदाहरण है।

सामुदायिक सेवाएं : गांव में अमीर, गरीब ऊंच एवं नीच सभी प्रकार के लोग निवास करते हैं। निर्धन व्यक्ति अपने बच्चों की शादी या सांस्कृतिक कार्यक्रमों को करने के लिए पर्याप्त सुविधाएं नहीं जुटा पाते हैं एवं इन्हें कष्ट उठाने पड़ते हैं। ग्राम पंचायतों द्वारा बारात घर आदि का निर्माण करवाकर इन निर्धन व्यक्तियों के शादी–विवाह या अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रमों को सुगमतापूर्वक पूरा करवा दिया जाता है।

अन्य सुविधाएं : ग्राम पंचायत, ग्राम स्तर पर एक स्थानीय संस्था होती है जिसका कार्य सरकार एवं प्रशासन के मध्यस्थ के रूप में कार्य करते हुए जन कल्याण एवं विकास की योजनाओं को योग्य नागरिकों तक पहुंचाना होता है। उपरोक्त वर्णित कार्यों के अतिरिक्त अन्य अनेक सुविधाएं जुटाना एवं तदुनसार जनहित में कार्य करना ग्राम पंचायतों के कार्य क्षेत्र में सम्मिलित होता है, जैसे–

टिप्पणी

- ग्रामीण स्व सहायता समूहों का गठन
- जीवन बीमा
- सूक्ष्म बचत योजनाओं का संचालन
- कार्य विशेष के लिए अनुदान एकत्रित करना
- अशक्त एवं विकलांगों हेतु विशेष योजनाओं की अनुशंसा

अपनी प्रगति जांचिए

1. जमींदारी प्रणाली में किसे भूमि का स्वामी माना जाता था?
   (क) राजा को (ख) मंत्री को
   (ग) किसान को (घ) जमींदार को
2. "प्रशासन से भारतीयों को जोड़ा जाना आवश्यक हो गया है।"– यह किसने कहा था?
   (क) गांधीजी ने (ख) बार्टल फ्रेयर ने
   (ग) नेहरूजी ने (घ) माउंटबेटन ने

3.3 सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा ग्रामीण विकास की रणनीतियां

सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा ग्रामीण विकास की रणनीतियों का अध्ययन निम्नवत किया गया है–

3.3.1 सामुदायिक विकास कार्यक्रम

भारतीय योजनाओं में गरीबी उन्मूलन का लक्ष्य प्रमुख रूप से रखा गया है। सरकार ने गरीबी दूर करने के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम (Community Development Programs) के रूप में निम्नलिखित उपाय किए हैं। कुछ कार्यक्रम जो सरकार द्वारा गरीबी निवारण हेतु चलाए गए हैं वे निम्नलिखित हैं–

1. **स्व-रोजगार कार्यक्रम–** इसके अंतर्गत निम्न योजनाएं कार्यान्वित की गई हैं–
   (क) स्वर्ण जयंती ग्राम स्व-रोजगार योजना– 31 मार्च 1999 से पूर्व में चल रही छः योजनाओं को समाप्त करके (एकीकृत ग्रामीण विकास योजना),
   (ख) स्व-रोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण (TRYSEM),
   (ग) ग्रामीण महिला एवं बालोत्थान योजना,
   (घ) दस लाख कूप योजना (MWS),
   (ङ) उन्नत टूल किट योजना (SITRA),
   (च) गंगा कल्याण योजना- 1 अप्रैल, 1999 से स्वर्ण जयंती ग्राम स्व-रोजगार योजना लागू की गई तथा सभी पूर्व योजनाओं को इसके अंदर मिला दिया गया। इस योजना का उद्देश्य स्व-रोजगारियों को बैंक ऋण एवं सरकारी सब्सिडी के माध्यम से स्व-सहायता समूहों में संगठित करके गरीबी रेखा से ऊपर लाना है।

टिप्पणी

2. शहरी गरीबी दूर करने के लिए कार्यक्रम– शहरी क्षेत्र में विशिष्ट निर्धनता-उन्मूलन कार्यक्रम स्वर्ण जयंती शहरी योजना के नाम से चल रहा है।

स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना (STSRY)– गरीबी निवारण के लिए शहरी क्षेत्रों में 1 दिसबंर, 1997 से यह लागू की गई। यह योजना पूर्व में चल रही तीन योजनाओं (क) नेहरू रोजगार योजनाएं (NRY), (ख) गरीबों के लिए शहरी बुनियादी सेवाएं (UPSP), (ग) प्रधानमंत्री की समन्वित शहरी गरीबी उन्मूलन योजना (PMIU PEP) को मिलाकर बनाई गई है। इसका प्रमुख उद्देश्य शहरी निर्धनों को स्व-रोजगार उपक्रम स्थापित करने के लिए वित्तीय सहायता देना है। इसकी दो योजनाएं हैं–

(अ) **शहरी स्व-रोजगार कार्यक्रम–** इसके दो घटक हैं–

(i) लघु उद्यम और कौशल विकास के द्वारा स्व-रोजगार।

(ii) शहरी क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों का विकास।

(ब) **शहरी मजदूर रोजगार कार्यक्रम–** इसका उद्देश्य शहरी स्थानीय निकायों के अधिकार क्षेत्र में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लाभार्थियों को उनके श्रम का सामाजिक और आर्थिक रूप से उपयोगी सार्वजनिक संपत्ति के निर्माण में उपयोग करके मजदूरी रोजगार उपलब्ध कराना है।

3. मजदूरी रोजगार कार्यक्रम– गरीबी निवारण के लिए मजदूरी रोजगार कार्यक्रम बहुत महत्वपूर्ण है। यह केवल कृषि कार्य में कमी के समय ही नहीं बल्कि सूखा, बाढ़ या अन्य प्राकृतिक विपदाओं में भी सहायता एवं रोजगार प्रदान करते हैं। 2 अक्टूबर, 1993 को रोजगार आश्वासन योजना भी शुरू की गई थी जिसको संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना में मिला दिया गया है।

(अ) **संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना** (SGRY)– यह योजना 25 सितंबर, 2001 को प्रारंभ की गई। इस योजना के तहत ग्रामीण क्षेत्र में अतिरिक्त मजदूरी दर पर रोजगार प्रदान करने का प्रावधान किया गया। इसके अलावा इस योजना के तहत प्राकृतिक विपदाओं से प्रभावित क्षेत्रों को आर्थिक सहायता प्रदान करने का भी प्रावधान किया गया।

SGRY उन सभी ग्रामीण निर्धनों के लिए खुली है जिन्हें मजदूरी की जरूरत है और जो गांव/बस्ती में और उसके आस-पास शारीरिक और अकुशल श्रम कार्य करने के इच्छुक हों।

(ब) **प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना** (PGY)– यह योजना 2000-01 में शुरू की गई। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के जीवन-स्तर में सुधार लाने के सभी कार्यक्रम; जैसे स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, पेयजल, आवास एवं ग्रामीण सड़कों का विकास करने के लिए इस योजना को प्रारंभ किया गया।

4. राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम– राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम के अंतर्गत तीन योजनाएं आती हैं–

(अ) **राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना–** गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले 65 वर्ष से अधिक आयु वाले वृद्धों को 200/- प्रतिमाह के रूप में राष्ट्रीय न्यूनतम वृद्धावस्था पेंशन देने का प्रावधान किया गया है।

टिप्पणी

(ब) **राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना–** गरीबी रेखा से नीचे रहनेवाले परिवार के आय अर्जक मुखिया की आकस्मिक मृत्यु होने पर परिवार को 5000/- की एक मुश्त राशि उत्तरजीवी लाभ (Survivor Benefit) के रूप में देने का प्रावधान है। दुर्घटना से मृत्यु की स्थिति में यह सहायता राशि 10,000/- होती है।

(स) **राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना–** इस योजना में गरीब महिलाओं को प्रथम दो प्रसवों में 300/- देने का प्रावधान है। इस लाभ को प्राप्त करने के लिए लाभार्थी की आयु 19 वर्ष या उससे अधिक होनी चाहिए।

5. **राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना–** यह योजना 2005 में शुरू की गई। इस योजना के तहत ग्रामीण क्षेत्र के प्रत्येक घर में से एक नौजवान को 100 दिन का काम उपलब्ध कराए जाने का प्रावधान किया गया। यह काम उन लोगों के लिए होगा जो काम करना चाहते हैं तथा वर्तमान दर पर काम करने के लिए तैयार भी हैं।

6. **प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना–** यह योजना 2000 में चलाई गई। यह कार्यक्रम गांवों को शहरों से जोड़ने के लिए था। इस कार्यक्रम के तहत 2006 तक 18,281 करोड़ रुपए खर्च किए गए।

7. **इंदिरा आवास योजना–** यह योजना गरीबों को घर मुहैया कराने के लिए बनाई गई थी। इसमें बंधुआ मजदूरों व गरीब वर्गों को मुफ्त आवास देने की घोषणा की गई। इस योजना के तहत 2006 तक 153 लाख घरों का निर्माण किया गया जिसकी संख्या 2014 से बढ़कर अब तक 182 लाख हो गई है।

8. **काम के बदले अनाज संबंधी राष्ट्रीय कार्यक्रम–** यह कार्यक्रम 2004 में लागू किया गया। यह 150 पिछड़े जिलों में प्रारंभ किया गया जिसमें काम के बदले अनाज दिलाने की भी बात की गई। जनवरी 2006 तक 17 लाख रोजगार उपलब्ध कराए गए व 11.60 लाख टन अनाज उपलब्ध कराया गया।

अन्य योजनाएं– गरीबी को दूर करने के लिए कुछ अन्य योजनाएं निम्न हैं–

1. **सार्वभौमिक स्वास्थ्य बीमा योजना–** इस योजना का प्रमुख लक्ष्य गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों के लिए बेहतर चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराने हेतु बीमा सुरक्षा प्रदान करना है।

   अन्य विशेषताएं– 28 फरवरी, 2003 को वित्त मंत्री द्वारा घोषित तथा 14 जुलाई, 2003 को प्रधानमंत्री द्वारा प्रारंभ करने की घोषणा की गई।

2. **जननी सुरक्षा योजना–** इस योजना का उद्देश्य गर्भवती महिलाओं को स्वास्थ्य केंद्र में पंजीकरण के बाद से शिशु जन्म तथा आवश्यक चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराते हुए बच्चों के जन्म पर नगद सहायता उपलब्ध करना है।

   अन्य विशेषताएं– 8 मार्च, 2003 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर केंद्रीय स्वास्थ्य एवं संसदीय कार्य मंत्री सुषमा स्वराज द्वारा घोषित।

3. **जयप्रकाश नारायण रोजगार गारंटी योजना–** इस योजना का लक्ष्य देश के सर्वाधिक गरीबी वाले जनपदों में ग्रामीण बेरोजगारों को रोजगार प्रदान करना है।

   अन्य विशेषताएं– वित्त मंत्री द्वारा फरवरी, 2002 के बजट में घोषणा की गई।

टिप्पणी

4. **हरियाली परियोजना–** इस योजना के अंतर्गत पेयजल समस्या के निवारण एवं बंजर भूमि में सिंचाई हेतु जल की व्यवस्था सुनिश्चित करना मुख्य लक्ष्य था।

   अन्य विशेषताएं– 27 जनवरी, 2003 को प्रधानमंत्री द्वारा इस योजना की घोषणा की गई।

5. **आश्रय बीमा योजना–** उदारीकरण प्रक्रिया के फलस्वरूप विभिन्न उद्योगों से विस्थापित श्रमिकों हेतु स्वरोजगार स्थापित करने हेतु आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने का लक्ष्य था।

   अन्य विशेषताएं– वर्ष 2001-02 के बजट में इस योजना की घोषणा की गई।

6. **खेतिहर मजदूर बीमा योजना–** इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण खेतिहर मजदूरों को बीमा सुरक्षा प्रदान करने के साथ 100 रुपए प्रतिमाह पेंशन प्रदान करना था।

   अन्य विशेषताएं– 1 जुलाई, 2001 से इस योजना को पूरे देश में लागू किया गया है।

7. **शिक्षा सहयोग बीमा योजना–** गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों के कक्षा 9 से 12 तक की कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चों को 100 रुपए प्रतिमाह शिक्षा भत्ता प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया।

   अन्य विशेषताएं– 1 जुलाई, 2001 से इस योजना को पूरे देश में लागू किया गया है।

8. **अंबेडकर-बाल्मीकि मलिन बस्ती आवास योजना–** इस योजना का मुख्य उद्देश्य शहरी क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े, कमजोर वर्गों के लोगों को सस्ती दरों पर मकान उपलब्ध कराना था।

   अन्य विशेषताएं– इसकी घोषणा 15 अगस्त, 2001 को की गई। इस योजना के अंतर्गत प्रतिवर्ष शहरी विकास मंत्रालय द्वारा 2,000 करोड़ रुपए का अनुदान दिए जाने का प्रावधान किया गया है।

9. **महिला स्वाधार योजना–** इस योजना के अंतर्गत स्वयं सहायता समूहों के गठन के माध्यम से महिलाओं का आर्थिक-सामाजिक सशक्तीकरण करना था।

   अन्य विशेषताएं– इस योजना की घोषणा जुलाई, 2001 में मानव संसाधन विकास मंत्री द्वारा की गई।

10. **निर्मल भारत अभियान–** इसके अंतर्गत नगरीय गंदी बस्तियों में सामुदायिक शौचालयों की सुविधा को विस्तारित करते हुए यहां के लोगों में स्वच्छता के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने पर भी ध्यान केंद्रित किए जाने का लक्ष्य था।

    अन्य विशेषताएं– इस योजना की घोषणा प्रधानमंत्री द्वारा 15 अगस्त, 2002 को की गई।

11. **भारत निर्माण योजना–** गांवों में आधारभूत सुविधाओं के विकास हेतु संरचना उपलब्ध कराने के उद्देश्य को इस योजना में शामिल किया गया।

    अन्य विशेषताएं– इसकी घोषणा प्रधानमंत्री द्वारा 16 दिसंबर, 2005 को नई दिल्ली में की गई।

टिप्पणी

12. **राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना–** इस योजना का मुख्य उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे की श्रेणी के सभी कामगारों को स्मार्टकार्ड जारी किया जाना था।

अन्य विशेषताएं– इसकी घोषणा केंद्र सरकार द्वारा 1 अक्टूबर, 2007 को की गई।

3.3.2 ग्रामीण विकास की रणनीतियां

भारत के बजट में ग्रामीण विकास को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। भारत की जनसंख्या का 70 प्रतिशत से अधिक भाग अब भी गांवों में निवास करता है। अतः ग्रामीण अवस्था को सुधारने के लिए सभी पंचवर्षीय योजनाओं में कार्यक्रम चलाए जाते हैं। ग्रामीण विकास की रणनीतियों (Rural development Strategies) के अंतर्गत चलाए गए कार्यक्रम कितने सफल रहे हैं इनका अध्ययन करने के पश्चात ही यह ज्ञात होगा। ग्रामीण विकास विषयक प्रमुख कार्यक्रमों व उनके समक्ष विद्यमान चुनौतियों को इस प्रकार समझा जा सकता है–

मनरेगा की स्थिति एवं चुनौतियां (Status and Challenges of MGNREGA)

अधिकार आधारित दृष्टिकोण के साथ महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम अर्थात् मनरेगा (Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act–MGNREGA) को 5 सितंबर, 2005 को अधिसूचित किया गया था। यह देश के ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार का एक अधिकार आधारित कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ऐसे प्रत्येक परिवार, जिनके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करना चाहते हैं, उन्हें एक वर्ष में कम–से–कम 100 दिनों की गारंटीशुदा मजदूरी रोजगार उपलब्ध कराते हुए उनकी आजीविका सुरक्षा को बढ़ाना है। पहले चरण में मनरेगा को 2 फरवरी, 2006 को देश के 200 सबसे पिछड़े जिलों में कार्यान्वित किया गया और बाद में 1 अप्रैल, 2008 से इस अधिनियम को देश के शेष जिलों में तथा सभी ग्रामीण जिलों में लागू कर दिया गया है।

मनरेगा पहला ऐसा कानून है जो अनोखे पैमाने पर मजदूरी रोजगार की गारंटी देता है। अधिनियम का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरी रोजगार की मांग की पूर्ति करना है। अधिनियम के अधीन अनुज्ञेय कार्य दीर्घकालिक गरीबी व दरिद्रता जैसे– सूखा, वनों का कटाव और मृदा विस्फोट आदि को टिकाऊ आधार पर कायम रखना है।

मनरेगा के उद्देश्य में शामिल लक्ष्य हैं–

- ग्रामीण क्षेत्रों में मांग के हिसाब से प्रत्येक परिवार को एक वित्तीय वर्ष में गारंटी–युक्त रोजगार के रूप में कम–से–कम 100 दिनों का अकुशल शारीरिक श्रम कार्य उपलब्ध कराना, जिसके फलस्वरूप निर्धारित गुणवत्ता और स्थाई स्वरूप की उत्पादनकारी परिसंपत्तियों का सृजन हो।
- निर्धनों के आजीविका संसाधन आधार को सुदृढ़ बनाना।
- सक्रिय रूप से सामाजिक समावेशिता को सुनिश्चित करना।
- पंचायती राज संस्थाओं को सुदृढ़ बनाना।
- सम्बन्धित क्षेत्र में संरचनात्मक सुविधाओं का विकास करने वाले कार्यों में मजदूरी रोजगार के अवसर उपलब्ध कराकर ग्रामीण गरीबों की आजीविका सुरक्षा बढ़ाना।
- सम्बन्धित क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों को पुनः बढ़ावा देना।

- उपयोगी ग्रामीण परिसम्पत्तियों का निर्माण करना।
- ग्रामीण गरीबों को सुरक्षा–तंत्र उपलब्ध कराकर स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देना।
- महिलाओं का सशक्तीकरण सुनिश्चित करना।
- जमीनी–स्तर की लोकतांत्रिक संस्थाओं का सुदृढ़ीकरण करना।

वित्तमंत्री अरुण जेटली ने मनरेगा पर खासा ध्यान दिया। मनरेगा के लिए धन आवंटन में कोई कमी नहीं की गई। बजट में मनरेगा के लिए 34,699 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया। सरकार ने कहा कि वह इस योजना को चालू रखेगी। यह प्राथमिक आवंटन है, बाद में इसमें पांच हजार करोड़ रुपये की वृद्धि की जाएगी।

चुनौतियां (Challenges)– हालांकि सरकार ने इस योजना को वर्तमान में चालू रखने की योजना बनाई परन्तु यह योजना अपने उद्देश्य में पूरी तरह से कामयाब नहीं हो पाई है। इस योजना का उद्देश्य पंचायती राज को सशक्त करना व महिलाओं का सम्पूर्ण विकास है परन्तु यह योजना ये दोनों ही उद्देश्य पूरे नहीं कर पाई है। क्रियान्वयन की प्रभावी नीति बनाना और उसे साकार करना मूलभूत चुनौती है।

भारत निर्माण योजना एवं चुनौतियां (Bharat Nirman Yojana and Challenges)

भारत निर्माण योजना गांवों में जल ,सड़क, भवन, विद्युतीकरण और दूर–संचार आदि सुविधाएं प्रदान करने हेतु बनाई गई है। इस योजना में निम्न विकास कार्य शामिल हैं–

- **पेयजल आपूर्ति** (Drinking Water Supply)– प्रतिवर्ष 1.9 प्रतिशत की वृद्धि दर से भारत की जनसंख्या 2050 तक 150 करोड़ होने की संभावना है। भारत की आबादी का एक बड़ा हिस्सा जलापूर्ति की समस्या से प्रभावित है। वर्तमान समय में भारत पूरे विश्व में सबसे ज्यादा भूजल 25 प्रतिशत का उपयोग करने वाला देश है। भारत में वर्षा काफी होती है मगर उसका 29 प्रतिशत ही संरक्षण कर उत्पादक एवं उपभोग कार्यों में लगाया जाता है। जबकि इजराइल जैसे छोटे देश में 80 प्रतिशत वर्षा जल को संरक्षित कर लिया गया है। भारत में जल की उपलब्धता 2001 में 1,820 क्यूबिक मीटर प्रतिव्यक्ति थी जबकि 2025 में 1,340 और 2050 में 1,140 क्यूबिक मीटर प्रतिव्यक्ति रह जाएगी।
- **त्वरित ग्रामीण जलापूर्ति कार्यक्रम** (Rapid Rural Water Supply Programme)– पेयजल समस्या के मद्देनजर सरकार ने 1972–73 में त्वरित ग्रामीण जलापूर्ति कार्यक्रम शुरू किया। जल संसाधन मंत्रालय के अनुसार शहरी क्षेत्र की 96 प्रतिशत आबादी को व ग्रामीण क्षेत्र की 73 प्रतिशत आबादी को स्वच्छ जल उपलब्ध है। भारत में जलापूर्ति मशीनों की मरम्मत सही समय पर नहीं होती क्योंकि गांवों में उपयुक्त मिस्त्री उपलब्ध नहीं है। इन्हीं परिस्थितियों को देखते हुए भारत निर्माण योजना को लाया गया है। इस योजना का एक लक्ष्य गांवों में शुद्धजल उपलब्ध कराना है।
- **प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना** (Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana)– यह कार्यक्रम दिसम्बर 2000 में शुरू किया गया। 2010–11 वित्तीय वर्ष में रोजाना औसतन 10.39 किलोमीटर सड़क का निर्माण किया गया। सरकार ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत तेजी से सड़कों का जाल बिछा रही है। विश्व बैंक के अनुसार जिन देहाती

टिप्पणी

इलाकों का सम्पर्क पक्की सड़कों से है उन इलाकों में सन् 2000 से 2009 के बीच आमदनी में 50 से 1,000 प्रतिशत तक की बढ़ोतरी हुई। साक्षरता दर में 10 प्रतिशत की वृद्धि हुई। विश्व बैंक के अनुसार यदि ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क निर्माण पर 10 लाख रुपये खर्च किए जाते हैं तो 163 लोग गरीबी की दलदल से बाहर आ सकते हैं। केन्द्र सरकार ने 2015 के बजट में भी प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के तहत 4,134 करोड़ रुपए का प्रावधान किया है।

चुनौतियां : इसके बावजूद 30 प्रतिशत निवास स्थान सड़कों से नहीं जुड़े हैं। मध्यप्रदेश, पश्चिमी बंगाल, अरुणाचल प्रदेश, असम और बिहार ऐसे राज्य हैं जहाँ 55 प्रतिशत निवास स्थान सड़कों से नहीं जुड़े हैं। उड़ीसा, उत्तराखण्ड, मेघालय और छत्तीसगढ़ ऐसे राज्य हैं जहाँ 45 प्रतिशत निवास स्थान पक्की सड़कों से नहीं जुड़े हैं। इसी तरह झारखण्ड, मणिपुर और हिमाचल प्रदेश ऐसे राज्य हैं जहाँ 44 प्रतिशत स्थान पक्की सड़कों से वंचित हैं। कश्मीर के 37.9 प्रतिशत, मिजोरम के 34.1, उत्तर प्रदेश के 32.9, सिक्किम के 28.7, त्रिपुरा के 26.5, राजस्थान के 21.8 प्रतिशत निवास स्थान पक्की सड़कों से जुड़े हुए नहीं हैं। कुछ राज्यों में 15 प्रतिशत से कम निवास स्थान सड़कों से जुड़े नहीं हैं। गुजरात 14.2, महाराष्ट्र 10.3, केरल 8.6, गोवा 7.0, नागालैण्ड 5.4, आंध्रप्रदेश के 14.7, पंजाब के 0.2 प्रतिशत निवास स्थान सड़कों से जुड़े हुए नहीं हैं।

2015–16 के बजट में इस योजना को गति देने के लिए अनेक कदम उठाए गए हैं। उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए कॉरपोरेट टैक्स अगले पांच वर्षों के दौरान 30 प्रतिशत से कम करके 25 प्रतिशत करने का प्रावधान किया गया है। इससे निवेश के विकास और अधिक रोजगार सृजित होने की उम्मीद है। कर की दर कम होने से उत्पादन लागत में कमी होगी। इंफ्रास्ट्रक्चर विकास के लिए 20,000 करोड़ रुपये के निवेश व अवसंरचना निधि की स्थापना की गई है।

इन्फ्रास्ट्रक्चर निवेश वृद्धि के लिए टैक्स–फ्री इन्फ्रास्ट्रक्चर बॉण्ड की घोषणा की गई है। आवास व शहरी विकास के लिए 22,407 करोड़ रुपये, सड़कों के लिए 14,031 करोड़ रुपये, रेलवे इन्फ्रास्ट्रक्चर के लिए 10,050 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। परन्तु इस अधिसंरचना का किस प्रकार प्रयोग हो यह चिन्ता का विषय है। अधिसंरचना का प्रयोग उचित प्रकार से न होने के कारण योजनाएं अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर पातीं।

प्रधानमंत्री जन–धन योजना एवं चुनौतियां (Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana and Challenges)

यह एक वित्तीय समावेश का राष्ट्रीय मिशन है। इसका उद्देश्य देश के सभी परिवारों को बैंकिंग सेवा मुहैया कराना है और हर परिवार का एक बैंक खाता खोलना है। यह योजना 28 अगस्त, 2014 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने शुरू की। इस योजना के तहत यदि व्यक्ति खाता खोलता है तो उसे एक लाख रुपये के दुर्घटना बीमा के साथ Rupay डेबिट कार्ड मिलता है। 26 जनवरी, 2015 तक खोले गए खातों के लिए 30 हजार रुपये का अतिरिक्त जीवन बीमा कवर देने की भी प्रधानमंत्री ने घोषणा की।

इस योजना के निर्धारित उद्देश्य हैं–

- देश के सभी लोगों को बैंकों से जोड़ना।

- 'सबका साथ सबका विकास' की अवधारणा को लागू करना।
- लोगों को बैंकिंग ऋण की सुविधा द्वारा साहूकारों के चंगुल से बाहर निकालना।
- वित्तीय संकटों से खुद को दूर रखते हुए तरह–तरह के वित्तीय उत्पादों से लाभान्वित होना।
- पूरे देश में सभी परिवारों को उचित दूरी के अंदर किसी बैंक की शाखा या निर्धारित प्वाइंट बिजनेस कॉरस्पोंडेंट के माध्यम से बैंकिंग सुविधाओं की वैश्विक पहुंच उपलब्ध कराना।
- सभी परिवारों को एक लाख रुपये के दुर्घटना बीमा कवर सहित Rupay डेबिट कार्ड के साथ कम–से–कम मूल बैंकिंग खाता उपलब्ध कराना। इसके अलावा खाते का छह महीने तक संतोषजनक परिचालन होने के बाद आधार से जुड़े खातों पर पांच हजार तक की ओवरड्राफ्ट सुविधा की अनुमति भी दी जाएगी।
- वित्तीय साक्षरता को ग्राम–स्तर तक लाना।
- बैंक खातों के माध्यम से सरकारी योजनाओं का प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण।
- किसान क्रेडिट कार्ड (KCC) को Rupay किसान कार्ड के रूप में जारी करना प्रस्तावित है।
- पहला चरण 15 अगस्त, 2015 से 14 अगस्त 2018 तक होगा।
- लोगों को माइक्रो–बीमा उपलब्ध कराना।
- बिजनेस कॉरस्पोंडेंट (BC) के माध्यम से स्वावलम्बन जैसी गैर–संगठित क्षेत्र पेंशन योजनाएं शुरू करना।
- योजना में ग्रामीण व शहरी दोनों क्षेत्रों को शामिल करना।

योजना के लाभार्थी (Beneficiaries of the Scheme)

इस योजना के तहत केन्द्रीय मंत्रियों, मुख्यमंत्रियों, संसद सदस्यों/विधानसभा सदस्यों तथा अन्य गणमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति में 79 मेगा कैम्पों के माध्यम से राज्य की राजधानियों तथा जिलों में शुभारम्भ किया गया। देशभर में 70 हजार से अधिक कैंप आयोजित किए गए। केवल एक दिन में 1,84,68,000 खाते खोले गए। इसके पश्चात साप्ताहिक आधार पर शनिवार सुबह 8 बजे से रात 8 बजे तक कैंप आयोजित किए गए। प्रधानमंत्री ने स्वयं के तहत सभी बैंक अधिकारियों को तकरीबन 7.25 लाख ई–मेल भेजे थे। प्रधानमंत्री ने इस संदर्भ में कहा था कि एक करोड़ से अधिक खाते खुलने से देश में वित्तीय छुआछूत की समाप्ति होगी।

प्रधानमंत्री जन–धन योजना के अन्तर्गत खोले गए खाते

(10 जून, 2015 तक) (करोड़ में)

क्रं. सं.	बैंक	खातों की संख्या ग्रामीण–शहरी कुल			रुपे डेबिट कार्ड की संख्या	खातों में शेष	शून्य शेष आधारित खाते (प्रतिशत)
1.	सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक	6.87	5.73	12.59	11.75	14,075.44	52.74
2.	निजी क्षेत्र के बैंक	2.44	0.43	2.87	2.09	3,186.83	52.96
3.	क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	0.40	03.28	0.67	0.59	1,034.51	49.25
	कुल	9.71	6.43	161.14	14.43	18,296.78	52.60

चुनौतियां : यह योजना बैंकों के लिए वित्तीय बोझ बढ़ा सकती है। परन्तु इसके द्वारा बैंको को व्यवसाय बढ़ाने का एक युक्तिसंगत आधार मुहैया कराया जाएगा। इस योजना में अंतर्निहित पर्याप्त सुरक्षा उपाय भी किए गए हैं। ऐसे खातों एवं इनमें जमा हुई पूंजी के कारण हुआ वित्तीय समावेशन बैंकों के लिए उनका व्यवसाय बढ़ाने का एक युक्तिसंगत आधार मुहैया कराता है।

सरकार एवं बैंकों के दस करोड़ खाते खोलने के लक्ष्य से आगे बढ़कर 10 जून, 2015 तक 16.14 करोड़ खाते खोले गये हैं, जिसमें अधिकांश खाते सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा खोले गए हैं। इनके द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में 9.71 करोड़ खाते तथा शहरी क्षेत्रों में 6.43 करोड़ खाते खोले गए हैं। इस योजना के तहत 10 जून, 2015 तक, 18,296.78 करोड़ रुपये जमा हो चुके हैं। जहां तक Rupay डेबिट कार्ड निर्गत करने का सवाल है, अधिकांश खातों में 14.43 करोड़ रूपे डेबिट कार्ड (Rupay Debit Cart) जारी किए जा चुके हैं। जन–धन योजना के तहत खोले गए कुल खातों में 51 प्रतिशत खाते महिलाओं के हैं, जिसमें 60.53 प्रतिशत खाते ग्रामीण महिलाओं द्वारा खोले गए हैं। इससे पता चलता है कि वित्तीय समावेशन पहल से समाज में आर्थिक रूप से कमजोर ग्रामीण महिलाओं को लाभ पहुंचा है। कुल खातों के लगभग 60 प्रतिशत खाते ग्रामीण क्षेत्र में खोले गए हैं, जहां पर बहुत बड़ी संख्या किसानों की है और वे इस योजना से लाभान्वित होंगे।

यह योजना प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (Direct Benefit Transfer–DBT) योजनाओं के लिए बुनियादी ढांचा तैयार करती है। इससे संचालन में बेहतरी आएगी व राजस्व घाटे पर अंकुश लगेगा।

वर्तमान में आकस्मिक बीमा योजना Rupay डेबिट कार्ड का एक हिस्सा है। नेशनल पेमेंट्स कार्पोरेशन ऑफ इण्डिया (NPCI) कार्ड के लेन–देन से सृजित राजस्व से प्रीमियम की अदायगी करती है। इससे बैंकों पर कोई बोझ नहीं पड़ेगा।

Rupay (रूपे) कार्ड– Rupay क्रेडिट व डेबिट कार्ड के रूप में उपलब्ध है जिसके माध्यम से भुगतान किया जा सकता है। इसका नाम दो शब्दों रुपया और पेमेन्ट (भुगतान) से मिलकर बना है। यह शब्द भारतीयता का प्रतीक है। भारतीय ग्रामीण बाजार को इसके अंतर्गत लाने के लिए Rupay किसान कार्ड जारी करने पर विशेष जोर दिया जा रहा है। इस आधार पर माना जा रहा है कि ग्रामीण इलाकों में Rupay कार्ड का उपयोग किया जाएगा। Rupay कार्ड की सर्वसुलभता एवं इसमें ग्राहक केन्द्रित गुणों के होने की वजह से इसकी लोकप्रियता में बढ़ोतरी हुई है। इससे लोग खुदरा खरीददारी के लिए प्रेरित होंगे। ई–कॉमर्स की सुविधा का उपयोग करते हुए ग्रामीण क्षेत्रों में लोग घर बैठे मनचाहा उत्पाद खरीद सकेंगे। जिससे बिचौलियों की भूमिका तो कम होगी ही, साथ–ही–साथ उन्हें सस्ती दरों पर सामान भी उपलब्ध हो सकेगा।

प्रधानमंत्री जन–धन योजना के द्वारा वित्तीय समावेशन, 1 जून, 2015 से नये रूप में लागू किया गया है। पहले दौर में जहां लक्ष्य हर किसी को बैंक तक पहुंचाने का था, वहीं अब दूसरे दौर में कोशिश बैंक पहुँचे लोगों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने की है। पहले दौर में दुर्घटना और जीवन बीमा को नये खातों के साथ बगैर किसी शुल्क के मुहैया कराया गया था, वहीं अब 330 रुपये शुल्क पर जीवन बीमा सुरक्षा तथा 12 रुपये में दुर्घटना बीमा सुविधा 2 लाख रुपये तक उपलब्ध हैं। बीमा का लाभ

प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि खाताधारक अपने Rupay डेबिट कार्ड से खाता खोलने के 45 दिन के अन्दर कम–से–कम एक बार उसका प्रयोग अनिवार्य रूप से करें। अगर खाताधारक के खाते में शून्य शेष है तो वह Rupay डेबिट कार्ड का प्रयोग नहीं करेगा, जिसकी वजह से बीमा का लाभ उसको नहीं मिलेगा। वित्त मंत्रालय के अनुसार जन–धन योजना के तहत खुले खातों में 58 प्रतिशत खातों में शून्य शेष है। अतः इन खातों पर बीमा की सुविधा का लाभ मिल पाना संभव दिखायी नहीं देता।

डिजिटल इण्डिया योजना एवं चुनौतियां (Digital India Programme and Challenges)

"डिजिटल इंडिया भारत के हर नागरिक के जीवन की गुणवत्ता में एक वास्तविक सुधार करेगा'' इन शब्दों के साथ– अमेरिकी राष्ट्रपति भारतीय कार्यक्रम की महत्ता प्रकट करते हैं। डिजिटल इंडिया भारत सरकार का एक प्रमुख कार्यक्रम है, जिसका लक्ष्य भारत को डिजिटल रूप से सशक्त समाज और अर्थव्यवस्था में बदलते हुए, आईटी (इंडियन टैलेंट) + आईटी (इन्फोर्मेशन टेक्नोलॉजी) + आईटी (इंडिया टुमारो) को प्राप्त कर परिवर्तनकारी बनाना है। इसका उद्देश्य युवा भारत की बढ़ती आकांक्षाओं के साथ युग्मित प्रौद्योगिकी के द्वारा भारत को सशक्त क्षमता निर्माण के लिए विकल्प और दिशा देना है। डिजिटल इंडिया को, डिजिटली एवं डिजिटल से वंचित गरीब और अमीर, ग्रामीण और शहरी, रोजगार और बेरोजगार, साक्षर और निरक्षर तथा सशक्त एवं अशक्त के बीच खाई को पाटने के लिए डिजाइन किया गया है। डिजिटल इंडिया की अवसंरचना सेवाओं के वितरण के लिए शासन की प्रक्रिया में परिवर्तनकारी होगी।

डिजिटल इंडिया कार्यक्रम के विकास के लिए आवश्यक नौ स्तंभों अर्थात् ब्रॉडबैंड हाइवे, मोबाइल कनेक्टिविटी के लिए यूनिवर्सल एक्ससेस, सार्वजनिक इंटरनेट एक्सेस कार्यक्रम, ई–शासन : प्रौद्योगिकी के माध्यम से सरकार में सुधार, ई–क्रांति : सेवाओं की इलेक्ट्रॉनिकी डिलिवरी, सभी के लिए सूचना, इलेक्ट्रॉनिक्स विनिर्माण, नौकरियों के लिए आईटी और अर्ली हार्वेस्ट कार्यक्रमों को बल प्रदान करता है। डिजिटल इंडिया कार्यक्रम के तहत पहली बार योजनाओं के तहत दी जाने वाली सब्सिडी के लीकेज को रोकने की पहल की गई है। इसके लिए जैम (जनधन, आधार और मोबाइल) को चुना गया है। जैम का उपयोग लक्षित जनसमूह तक सुविधाओं के हस्तांतरण को कैशलेस ढंग से लीक–प्रूफ बनाने में मददगार साबित होगा। इस कार्यक्रम के केन्द्र में तीन प्रमुख परिकल्पनाएं हैं– प्रत्येक नागरिक को उपयोग के रूप में बुनियादी ढांचा प्रदान करना, मांग पर शासन और सेवाएं प्रदान करना और नागरिकों को डिजिटली सशक्तीकरण प्रदान करना।

डिजिटल इंडिया कार्यक्रम का विज़न भारत को डिजिटली सशक्त समाज और ज्ञान अर्थव्यवस्था के रूप में परिवर्तित करना है। इसके लिए निम्नांकित तीन प्रमुख परिकल्पनाएं निर्मित की गई हैं–

(i) **प्रत्येक नागरिक को उपयोगिता के रूप में डिजिटल बुनियादी ढांचा** (Basic Digital Structure for the Use of Every Citizen)– दूरस्थ भारतीय ग्रामीण डिजिटल ब्राडबैंड और उच्चगति के इंटरनेट के माध्यम से जुड़े हुए हों, तभी हर

नागरिक को इलेक्ट्रॉनिक सरकारी सेवाएं, लक्षित सामाजिक लाभ और वित्तीय समावेशन का तत्काल वितरण हो सकता है। डिजिटल इंडिया का प्रमुख ध्यान जिन क्षेत्रों पर केन्द्रित है उनमें से एक है– प्रत्येक नागरिक को उपयोगिता के रूप में डिजिटल बुनियादी ढांचा प्रदान करना। इस दृष्टि के तहत इसका एक महत्वपूर्ण घटक विभिन्न सेवाओं के ऑनलाइन वितरण की सुविधा हेतु उच्चगति इंटरनेट उपलब्ध कराना है। डिजिटल पहचान, वित्तीय सामावेशन और आम सेवा केन्द्रों की आसान उपलब्धता को सक्षम करने के लिए बुनियादी सुविधाओं की स्थापना करने की योजना बनाई गई है। इसे डिजिटल लॉकर के साथ नागरिकों को प्रदान करने का प्रस्ताव है जिसमें सार्वजनिक क्लाउड पर साझा किए जाने योग्य निजी स्पेस होगा और जहां सरकारी विभागों और एजेंसियों द्वारा जारी किए गए दस्तावेजों को आसान ऑनलाइन पहुंच के लिए भंडारित किया जा सकेगा। साथ ही साइबर स्पेस को सुरक्षित और विश्वसनीयता सुनिश्चित करने की योजना भी बनाई गई है। इसके अन्तर्गत–

- महत्वपूर्ण उपयोगिता के रूप में उच्चगति इंटरनेट सभी नागरिकों को उपलब्ध कराया जाएगा।
- डिजिटल पहचान एकत्र करने की सुविधा सभी नागरिकों को उपलब्ध कराई जाएगी। डिजिटल पहचान अद्वितीय, आजीवन, ऑनलाइन और प्रमाणित किए जाने योग्य होगी।
- मोबाइल फोन और बैंक खाते व्यक्तिगत स्तर पर डिजिटल और वित्तीय क्षेत्र में प्रतिभागिता के लिए सक्षम होंगे।
- सभी नागरिकों को अपने इलाके में एक–एक सामान्य सेवा केन्द्र तक आसान पहुंच उपलब्ध होगी।
- सभी नागरिकों को सार्वजनिक क्लाउड पर साझा करने योग्य निजी स्थान के लिए आसान पहुंच प्रदान की जाएगी।
- संरक्षित और सुरक्षित साइबर स्पेस बनाया जाएगा।

पिछले वर्षो में ई–शासन के युग में प्रवेश के लिए विभिन्न राज्य सरकारों और केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा कई पहल की गई हैं। सार्वजनिक सेवाओं के वितरण में सुधार और उन तक पहुंचने की प्रक्रिया को आसान बनाने के लिए कई स्तरों पर निरंतर प्रयास किए गए हैं। भारत में ई–शासन का विकास, नागरिक केन्द्रित अभिविन्यास और पारदर्शिता लाने के लिए सरकारी विभागों का कम्प्यूटरीकरण किया गया है।

(ii) **राष्ट्रीय ई– शासन योजना** (Rashtriya E-Governance Yojana)– इस योजना के द्वारा सभी वर्तमान योजनाओं को एक सामूहिक दृष्टि से एकीकृत करने और देशभर में ई–शासन पहल पर समग्र दृष्टिकोण के लिए 2006 में अनुमोदित किया गया था। इस विचार के आधार पर दूरदराज के गांवों में बड़े पैमाने पर देशभर में बुनियादी सुविधाओं का विकास किया जा रहा है और इंटरनेट की आसान और विश्वसनीय पहुंच को सक्षम करने के लिए अभिलेखों का बड़े पैमाने पर डिजिटलीकरण किया जा रहा है। इसकी स्थापना आम व्यक्ति के अपने क्षेत्र में सभी सरकारी सेवाओं को कियोस्कों (सेवा केंद्रों) के माध्यम से सामान्य सेवा वितरण एवं आम व्यक्ति की बुनियादी जरूरतों को पूरा

टिप्पणी

करने के लिए सस्ती कीमत पर दक्षता और पारदर्शिता एवं इस तरह की सेवाओं की विश्वसनीयता सुनिश्चित करके सुलभ बनाने के उद्देश्य से की गई थी। इसके अन्तर्गत–

- सभी विभागों या अधिकार क्षेत्रों में मूल एकीकृत सेवाएं प्रदान की जाएंगी।
- सेवाओं को ऑनलाइन और मोबाइल प्लेटफार्मों के माध्यम से तत्काल वास्तविक समय में उपलब्ध कराया जाएगा।
- सभी नागरिकों के पात्रता संबंधी विवरणों को आसान पहुंच के साथ क्लाउड (दूर स्थित सर्वर) पर उपलब्ध कराया जाएगा।
- वित्तीय लेन–देनों को इलेक्ट्रानिक और नकद रहित (कैशलेस) किया जाएगा।
- निर्णय समर्थन प्रणाली और विकास के लिए भू–स्थानिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) का इस्तेमाल किया जाएगा।
- डिजीटल सेवाओं में परिवर्तन द्वारा व्यापार–कर की सुविधा में सुधार किया जाएगा।

(iii) **नागरिक की डिजिटल आधिकारिता** (Digital Right of Citizens)– डिजिटल कनेक्टिविटी बहुत सापेक्षिक स्तर पर है। जनसांख्यिकीय और सामाजिक–आर्थिक क्षेत्रों में हम भारतीय डिजिटल नेटवर्क द्वारा मोबाइल फोन और कम्प्यूटर के माध्यम से एक–दूसरे के साथ तेजी से कनेक्ट हो रहे हैं। डिजिटल इंडिया कार्यक्रम का ध्यान भी डिजिटल साक्षरता, डिजिटल संसाधनों और सहयोगात्मक डिजिटल प्लेटफार्मों के माध्यम से भारत को डिजिटली सशक्त समाज में बदलने पर केन्द्रित है। इसके साथ ही यह यूनिवर्सल डिजिटल साक्षरता और डिजिटल संसाधनों/सेवाओं की उपलब्धता को भारतीय भाषाओं में प्रदान करने पर जोर देता है। इसमें प्रमुख रूप से सम्मिलित हैं–

- सार्वभौमिक डिजिटल साक्षरता।
- डिजिटल संसाधनों की सार्वभौमिक सुलभता।
- डिजिटल संसाधनों/सेवाओं की भारतीय भाषाओं में उपलब्धता।
- सहभागिता पूर्ण शासन के लिए सहयोगात्मक डिजिटल प्लेटफार्म।

चुनौतियां : डिजिटल इंडिया जैसे अद्वितीय व महत्वाकांक्षी कार्यक्रम की रूपरेखा तो अद्‌भुत है लेकिन इसके समक्ष उत्पन्न चुनौतियां इसकी सफलता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करती हैं। इस कार्यक्रम की प्रमुख चुनौतियां निम्नांकित हैं–

- **सुरक्षा** (Security)– स्वदेशी तकनीक आधारित राष्ट्रीय सुरक्षा एवं सम्प्रभुता को बरकरार रखने वाले किसी भी डिजिटल प्रोग्राम का स्वागत होना चाहिए। लेकिन तकनीक के स्वदेशी विकास तथा विदेशी कम्पनियों पर नियंत्रण के बगैर डिजिटल इंडिया का विस्तार न सिर्फ विनाशकारी होगा वरन् देश की सुरक्षा को भी कमजोर करेगा। डिजिटल क्रांति का एक महत्वपूर्ण बिन्दु डाटा की सुरक्षा और स्टोरेज है। सभी बड़ी अमेरिकी इंटरनेट कम्पनियों के सर्वर भारत से बाहर हैं। यदि सर्वर भारत में लगाया जाए तो प्रति सर्वर औसतन एक हजार लोगों को रोजगार मिल सकता है। इसके अलावा भारत में सर्वर होने से सुरक्षा एजेंसियों को अपराध नियंत्रण हेतु मदद मिलेगी और इन कम्पनियों की भारत

टिप्पणी

में कानूनी जवाबदेही भी बन पाएगी। इस खामी के चलते दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश पर केन्द्र को सरकारी अधिकारियों के लिए नई ई–मेल पॉलिसी लानी पड़ी, जिसके अनुसार विदेशी इंटरनेट कम्पनियों के सर्वर के माध्यम से सरकारी कार्यों के लिए ई–मेल का प्रयोग गैर–कानूनी है।

- **परम्परागत प्रशासन तंत्र** (Traditional Administrative System)– बदलाव में तकनीक की भूमिका एक औजार की तरह होती है, लेकिन बदलाव की शुरुआत तब होती है, जब उस तंत्र की सोच भी बदली जाए। जिसके हाथ में यह औजार पकड़ाया जा रहा है क्या वह सक्षम है? यह एक बड़ा प्रश्न है। बेशक, डिजिटल इंडिया के लिए जो योजनाएं बनाई गई हैं, वे काफी आकर्षक भी हैं और महत्वपूर्ण भी। ई–अपार्टमेंट से लेकर ई–लॉकर और ई–बस्ता से ई–स्वास्थ्य तक। समस्या इन योजनाओं में नहीं है, समस्या उस तंत्र को लेकर है, जिसके हवाले इन योजनाओं को कर दिया गया है। डिजिटल इंडिया के नए सपने और प्रशासन का पुराना तंत्र, दोनों एक साथ नहीं चल सकते क्योंकि परम्परागत प्रशासन–तंत्र स्वयं को सदैव यथास्थिति में ही रखना चाहता है तथा परिवर्तन का विरोध करता है।
- **ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी** (Broadband Connectivity)– 1.3 अरब जनसंख्या के देश में ब्रॉडबैंड की स्थिति विचारणीय है। दक्षिण कोरिया में जहां 97 प्रतिशत लोगों तक ब्रॉडबैंड की पहुंच है वहीं भारत में अप्रैल 2015 तक करीब 10 करोड़ लोगों के पास ही ब्रॉडबेंड सेवा है। वर्तमान में भारत इंटरनेट उपभोक्ताओं के मामले में 129वें स्थान पर है और इंटरनेट की औसत स्पीड के मामले में 115वें स्थान पर। इसके साथ ही भारत में 100 लोगों की आबादी पर महज 1.2 ब्रॉडबैंड कनेक्शन हैं। जहां विश्व में इसका औसत 100 पर 9.4 है। उल्लेखनीय है कि भारत का नेशनल ऑप्टिक फाइबर नेटवर्क कार्यक्रम वैसे ही पीछे चल रहा है। लक्ष्य यह था कि 2022 तक ब्रॉडबैंड सेवा ऐसी हो कि हर घर को 50 एमबीपीएस तक की ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी मिले।
- **मोबाइल नेटवर्क** (Mobile Network)– आज भी देश 55,619 हजार ऐसे गांव हैं, जहां मोबाइल नेटवर्क कवरेज नहीं है। ऐसे में इन लोगों को डिजिटल इंडिया का लाभ कैसे मिलेगा जबकि यह कार्यक्रम मोबाईल गवर्नेस पर ही मुख्य रूप से आधारित है। देश में 95 करोड़ के करीब मोबाइल यूजर्स हैं लेकिन इनमें से केवल 21 करोड़ उपभोक्ता ही मोबाइल पर इंटरनेट का इस्तेमाल करते हैं और वो भी धीमी स्पीड की वजह से परेशान हैं।
- **इलेक्ट्रिसिटी** (Electricity)– सरकार स्वयं स्वीकार करती है कि देश में अभी 28 करोड़ लोगों के पास बिजली नहीं है। कुछ आंकड़े तो इसे 35–40 करोड़ के आसपास बताते हैं। साथ ही छोटे शहर कटौती से परेशान हैं। सैंट्रल इलेक्ट्रिसिटी अथॉरिटी के मुताबिक 2015–16 में 24,077 मिलियन यूनिट एनर्जी शार्टेज हो सकती है अर्थात् यह कमी आगे भी बनी रहेगी। जबकि सरकार इंटरनेट एक्सेस प्रोग्राम चला रही है। इसके लिए सरकारी इंटरनेट सेंटर खोले जाएंगे और पोस्ट ऑफिस के माध्यम से ई–सर्विसेज की डिलीवरी की जाएगी। लेकिन जब देशभर में बिजली की भारी कमी रहेगी तो ये सेंटर संचालित कैसे हो पाएंगे? हालांकि 2021–22 के आंकड़ों के अनुसार मांग और आपूर्ति का अंतर 2475 MW है।

- **स्पेक्ट्रम** (Spectrum)– एक लाख करोड़ रुपये की हाल ही की नीलामी के बाद भी स्पेक्ट्रम की कमी है। सिंगापुर, शंघाई और दिल्ली में बराबर 3जी ग्राहक हैं, लेकिन दिल्ली में इनके मुकाबले 10 प्रतिशत स्पेक्ट्रम है। वैसे ही देश में ट्रैफिक कन्जंक्शन और कॉल ड्रॉप की समस्या है। यूजर बढ़ने, वीडियो एप्लीकेशन्स, नेविगेशन, शॉपिंग, बैंकिंग व कम्यूनिकेशन सर्विसेज का अधिक इस्तेमाल होने से समस्या और बढ़ेगी।
- **इम्पोर्ट** (Import)– सरकार डिजिटल इंडिया कार्यक्रम के तहत इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के कलपुर्जों का आयात शून्य करना चाहती है। लेकिन यह काफी मुश्किल काम है क्योंकि हम अपनी जरूरत के 65 प्रतिशत इलेक्ट्रॉनिक उपकरण आयात करते हैं जिसे शून्य तक लाना बड़ी चुनौती है। इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं की मांग 22 प्रतिशत की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर के साथ बढ़ती जा रही है और इसके 2020 तक 400 अरब डालर तक पहुंचने की उम्मीद है।

डिजिटल इंडिया की अगली चुनौती और भी बड़ी है। यह चुनौती है पूरे देश को इस योजना से जोड़ने की। यानी इस योजना को समावेशी बनाने की। मौजूदा रूप में तो डिजिटल इंडिया जैसी योजना स्मार्ट सिटी के अलावा देश के नगरों में काफी कुछ लागू हो सकती है। लेकिन इसके आगे की राह बहुत कठिन होगी। इसे उन लोगों तक कैसे पहुचांया जाएगा, जो अब भी निरक्षर हैं? शिक्षा के अधिकार के बावजूद उनकी अगली पीढ़ी डिजिटल इंडिया के उपयोग लायक साक्षर बन पाएगी, इसकी बहुत उम्मीद नहीं बंधती।

इसके अलावा डाटा संग्रहण, रोजगार सृजन, सूचना तंत्र की सुरक्षा एवं जवाबदेही, राष्ट्रहित का संरक्षण, सर्वर की स्थापना एवं टैक्स की वसूली जैसे मूलभूत मुद्दे डिजिटल इंडिया कार्यक्रम की सफलता के मार्ग में खड़े हुए हैं जिन पर बहस एवं निर्णय किए बगैर हम आगे बढ़ते हैं तो यह हमारे लिए नई तरह की समस्याओं को उपस्थिति करेगा।

अन्ततः डिजिटल इंडिया जैसे कार्यक्रमों की हमें जरूरत है, लेकिन सिर्फ इसलिए नहीं कि हम इसके जरिए इस दुनिया के विकिसत देशों की बराबरी करें, बल्कि इसके जरिए हम अपने तंत्र को बदल सकें। ऐसी योजना, जो यदि हमारे तंत्र और हमारी अर्थव्यवस्था को परिष्कृत नहीं कर सकती तो वह कितनी भी बड़ी और आधुनिक क्यों न हो, अंत में हमें कहीं नहीं ले जाएगी। डिजिटल इंडिया कार्यक्रम तभी सार्थक हो सकता है, जब वह सिर्फ कुछ सुविधा सम्पन्न लोगों तक सीमित न रह जाए, बल्कि सभी लोगों के लिए समाधान का जरिया बने। तभी यह अपनी शक्ति से सशक्तीकरण के सूत्र वाक्य के साथ–साथ अपने विज़न भारत को डिजिटली सशक्त और ज्ञानवान अर्थव्यवस्था के रूप में परिवर्तित कर पाएगा।

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का प्रभाव एवं सीमाएं (Effects and Limitations of Integrated Rural Development Programmes)

समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम व इससे पूर्व के सामुदायिक विकास कार्यक्रम का ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। इसका संक्षिप्त अध्ययन निम्न प्रकार है–

- **कृषि विकास** (Agricultural Development)– ग्राम विकास कार्यक्रम से कृषि का विकास हुआ है। उन्नत बीज, रासायनिक खाद, सहकारिता, सिंचाई

टिप्पणी

सुविधाएं, आधुनिक कृषि–यन्त्र व मशीनों, आदि का उपयोग बढ़ा है और वे ग्रामीण क्षेत्रों में लोकप्रिय हुए हैं। बागवानी का विकास हुआ है। पौध संरक्षण अपनाया जाने लगा है। उन्नत बीज व रासायनिक उर्वरकों को काम में लाया जाने लगा है।

- **परिवहन का विकास** (Development of Transportation)– इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सड़कों का विकास किया जाता है। कच्ची व पक्की सड़कों में सुधार किया गया है।
- **ग्रामीण लघु उद्योगों का विकास** (Development of Rural Small Industries)– इन कार्यक्रमों में ग्रामीण लघु उद्योगों का विकास किया गया है। उनकी वित्तीय सहायता की गई है तथा कुछ राशि लघु उद्योगपतियों को अनुदान के रूप में भी दी गई है।
- **स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन** (Health and Family Planning)– ग्रामीणों के स्वास्थ्य लाभ के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की भी स्थापना की गयी है। इन्हीं केन्द्रों पर उनको छोटे परिवार होने के लाभों को भी बताया जाता है जिससे कि वे इसको अपना सकें।
- **सामाजिक शिक्षा का विस्तार** (Extension of Social Education)– ग्रामीण क्षेत्र में सामाजिक शिक्षा का विस्तार किया गया है।
- **आदिवासियों का विकास** (Development of Tribals)– आदिवासियों के लिए भी 483 विकास केन्द्रों की स्थापना की गयी है। आदिवासी विकास के लिए प्रायोगिक योजना के नाम से 6 स्थानों पर ऐसी योजनाएं लागू की गयी हैं।
- **पहाड़ी क्षेत्रों का विकास** (Development of Hilly Areas)– पहाड़ी क्षेत्रों में कृषि के बहुमुखी विकास व कृषकों के जीवन–स्तर को सुधारने के लिए भारत जर्मन सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत एक कार्यक्रम चलाया गया है जिसके क्षेत्र उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश व तमिलनाडु हैं।
- **प्रशिक्षण सुविधा का विकास** (Development of Training Facilities)– इन योजनाओं के अन्तर्गत राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम व ग्रामीण युवकों को स्व–रोजगार हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए गए हैं।
- **पौष्टिक पदार्थ कार्यक्रम** (Nutritious Material Programme)– गांव वालों द्वारा फल, सब्जियां, मछली व अण्डों जैसे पौष्टिक पदार्थों का अधिक उत्पादन व उपभोग करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र संघ के आपात कोष (UNOEF) एवं खाद्य तथा कृषि संगठन (FAO) व विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के सहयोग से एक कार्यक्रम चलाया गया जिससे ग्रामीण जनता को लाभ मिला। अब इस योजना को समाप्त कर दिया गया है और नई योजना स्वर्णजयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना को 1 अप्रैल, 1999 से लागू कर दिया गया है।
- **ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण** (Training for Self-employment of Rural Youths)– यह कार्यक्रम 15 अगस्त, 1979 से प्रारम्भ किया गया है जिसका उद्देश्य ग्रामीण युवकों को अपना रोजगार चालू करने के लिए प्रशिक्षण देना है। अब इस योजना को स्वर्णजयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना में मिला दिया गया है।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की असफलता के कारण (सीमाएं) (Reasons for the Failure of Rural Development Programmes)

- संविधान के 73वें संशोधन के बाद यद्यपि ग्रामीण लोगों की भागीदारी ग्रामीण विकास कायक्रमों में बढ़ी है फिर भी ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्र के लोग ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के प्रति सजग नहीं हैं। अतः उनका इन कार्यक्रमों में बहुत कम योगदान है।
- जानकारी के अभाव में ज्यादातर ग्रामीण लोग बिचौलियों के हाथों में फंस जाते हैं। वे केवल संदेशवाहक बनकर रह जाते हैं सारा फायदा बिचौलियों को मिल जाता है। भ्रष्टाचार की अधिकता के कारण वे भी इस भ्रष्ट सिस्टम का हिस्सा बन जाते हैं। इसलिए भारत में ग्रामीण विकास कार्यक्रम वांछित लोगों तक नहीं पहुंच पाते।
- भारत में गरीबी व निरक्षरता विद्यमान है। यह समस्या ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादा भयावह है। ग्रामीण क्षेत्रों के लोग विकास कार्यक्रमों के बारे में अनभिज्ञ हैं।
- भारत में ग्रामीण विकास कार्यक्रम लोगों को आत्मनिर्भर नहीं बनाते। ये योजनाएं वास्तव में एक दान के समान हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों में बदलाव लाने में सक्षम नहीं हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. भारतीय योजनाओं में कौन–सा लक्ष्य प्रमुख रूप से रखा गया है?

   (क) गरीबी उन्मूलन का (ख) खेती का

   (ग) विज्ञान का (घ) शिक्षा का

4. पहले चरण में मनरेगा को देश के कितने जिलों में कार्यान्वित किया गया?

   (क) 100 (ख) 150

   (ग) 200 (घ) 250

3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (ख)
3. (क)
4. (ग)

3.5 सारांश

भारतीय भूमि व्यवस्था में काफी दोष थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय यह आवश्यकता महसूस की गई कि कृषि, जोकि भारतीय अर्थव्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है, में बिना सुधार किए उत्पादन नहीं बढ़ाया जा सकता। अतः भूमि सुधार कार्यक्रम आरंभ किया गया।

टिप्पणी

भारत में खाद्यान्नों के उत्पादन एवं उत्पादकता में राज्यवार विषमताएं विद्यमान हैं। उत्तर प्रदेश, जिसके पास कृषि क्षेत्र का 16.5 प्रतिशत था, ने देश के सकल खाद्यान्न उत्पादन में 21.4 प्रतिशत का योगदान दिया, जबकि पंजाब के पास कुल कृषि क्षेत्र का 4.6 प्रतिशत था फिर भी इसने कुल खाद्यान्न उत्पादन में 10.6 प्रतिशत का योगदान दिया। खाद्यान्नों के उत्पादन के साथ ही साथ व्यावसायिक फसलों के उत्पादन में भी पर्याप्त क्षेत्रीय विषमता देखने को मिलती है। 2017-18 के आंकड़ों के अनुसार देश में तीन-चौथाई से अधिक आलू का उत्पादन उत्तर प्रदेश (30.33 प्रतिशत), पश्चिमी बंगाल (24.92 प्रतिशत), बिहार (15.09 प्रतिशत) तथा पंजाब (5.01 प्रतिशत) में होता है।

भारत में पिछले वर्षों में भूमि सुधार के कई कार्यक्रम बड़े उत्साह से प्रारंभ किए गए हैं, जिनके अंतर्गत जमींदारी उन्मूलन, अधिकतम जोत निर्धारण, चकबंदी, सहकारी खेती, लगान नियम एवं पट्टे की सुरक्षा की व्यवस्था की गई है। इससे भूमि सुधार में प्रशंसनीय प्रगति हुई है। भारत में भूमि सुधार के लेकर हाल के अधिनियम संख्यात्मक दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। इतने अधिनियम कहीं भी नहीं बनाए गए हैं। ये अधिनियम लाखों, करोड़ों कृषकों पर प्रभाव डालते हैं और भूमि के विशाल क्षेत्रों को अपने दायरों में सम्मिलित करते हैं लेकिन ऐसा सुधार होने पर भी भूमि सुधार कार्यक्रमों की प्रगति धीमी रही है। भारत के भूमि सुधार कार्यक्रमों को लागू करने में कुछ कमियां रही हैं जिनको लेकर इसकी आलोचनाएं हुई हैं, तथा भूमि सुधारों की अत्यंत धीमी गति निराशजनक है।

भारत की वर्तमान स्थानीय ग्रामीण शासन को पंचायती राज (Panchayati Raj–Local self-governnance) कहते हैं। भारत की यह वर्तमान गांव पंचायत व्यवस्था, यूं तो मौर्य काल एवं वैदिक काल में भी अपने मूल एवं स्वतंत्र रूप से कार्य करती थी। परंतु बीच में अनेक व्यवधानों के कारण इसमें अनेक परिवर्तन एवं नये आयाम जुड़ते–घटते गये। ग्राम पंचायतें भारतीय प्राचीन समाज के स्वायत शासन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग रही हैं। आधुनिक प्रजातंत्र की भावना का अर्थ उस व्यवस्था से लिया जाता है, जिसमें, जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा प्रजा के ऊपर शासन किया जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रजातंत्रीय व्यवस्था वह शासन व्यवस्था होती है जिससे कि प्रजा के चुने हुए प्रतिविधियों द्वारा ही शासन व्यवस्था की जाती है।

ग्राम सभा का प्रमुख घटक न्याय पंचायतें होती हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि ग्रामीण स्तर पर स्वशासन व्यवस्था में न्याय पंचायतों की महत्वपूर्ण भूमिका हुआ करती थी। ग्राम स्तर पर, न्याय पंचायतों का गठन, स्थानीय समितियों के माध्यम से होता था। ग्रामीणों के स्थानीय विवादों को हल करने के लिए इन न्याय पंचायतों का गठन किया जाता था। वर्तमान समय में भी इन न्याय पंचायतों का अस्तित्व प्रकाश में आता है। भारत में पंचायती राज के लागू हो जाने के पश्चात् भी इन न्याय पंचायतों की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। इन न्याय पंचायतों का गठन प्रमुख रूप से जातीय आधार पर किया जाता है। ये न्याय पंचायतें अपनी जाति विशेष के परम्परागत रीति–रिवाजों एवं मान्यताओं के अनुसार ही निर्णय लेने के लिए अधिकृत होती हैं। इन न्याय पंचायतों की कोई लिखित नियमावली एवं नियम नहीं होते हैं वरन् जो परम्परा सदियों से चली आ रही है उसी का निर्वाह किया जाता है।

भारत के बजट में ग्रामीण विकास को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। भारत की जनसंख्या का 70 प्रतिशत से अधिक भाग अब भी गांवों में निवास करता है। अतः

टिप्पणी

ग्रामीण अवस्था को सुधारने के लिए सभी पंचवर्षीय योजनाओं में कार्यक्रम चलाए जाते हैं। ग्रामीण विकास की रणनीतियों (Rural development Strategies) के अंतर्गत चलाए गए कार्यक्रम कितने सफल रहे हैं इनका अध्ययन करने के पश्चात ही यह ज्ञात होगा।

अधिकार आधारित दृष्टिकोण के साथ महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम अर्थात् मनरेगा को 5 सितंबर, 2005 को अधिसूचित किया गया था। यह देश के ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार का एक अधिकार आधारित कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ऐसे प्रत्येक परिवार, जिनके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करना चाहते हैं, उन्हें एक वर्ष में कम–से–कम 100 दिनों की गारंटीशुदा मजदूरी रोजगार उपलब्ध कराते हुए उनकी आजीविका सुरक्षा को बढ़ाना है। पहले चरण में मनरेगा को 2 फरवरी, 2006 को देश के 200 सबसे पिछड़े जिलों में कार्यान्वित किया गया और बाद में 1 अप्रैल, 2008 से इस अधिनियम को देश के शेष जिलों में तथा सभी ग्रामीण जिलों में लागू कर दिया गया है।

मनरेगा पहला ऐसा कानून है जो अनोखे पैमाने पर मजदूरी रोजगार की गारंटी देता है। अधिनियम का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरी रोजगार की मांग की पूर्ति करना है। अधिनियम के अधीन अनुज्ञेय कार्य दीर्घकालिक गरीबी व दरिद्रता जैसे– सूखा, वनों का कटाव और मृदा विस्फोट आदि को टिकाऊ आधार पर कायम रखना है।

अन्ततः डिजिटल इंडिया जैसे कार्यक्रमों की हमें जरूरत है, लेकिन सिर्फ इसलिए नहीं कि हम इसके जरिए इस दुनिया के विकिसत देशों की बराबरी करें, बल्कि इसके जरिए हम अपने तंत्र को बदल सकें। ऐसी योजना, जो यदि हमारे तंत्र और हमारी अर्थव्यवस्था को परिष्कृत नहीं कर सकती तो वह कितनी भी बड़ी और आधुनिक क्यों न हो, अंत में हमें कहीं नहीं ले जाएगी। डिजिटल इंडिया कार्यक्रम तभी सार्थक हो सकता है, जब वह सिर्फ कुछ सुविधा सम्पन्न लोगों तक सीमित न रह जाए, बल्कि सभी लोगों के लिए समाधान का जरिया बने। तभी यह अपनी शक्ति से सशक्तीकरण के सूत्र वाक्य के साथ–साथ अपने विज़न भारत को डिजिटली सशक्त और ज्ञानवान अर्थव्यवस्था के रूप में परिवर्तित कर पाएगा।

3.6 मुख्य शब्दावली

- **मध्यस्थ** : बिचौलिया।
- **उन्मूलन** : दूर करना।
- **उत्तरदायित्व** : जिम्मेदारी।
- **नजराना** : उपहार।
- **फलस्वरूप** : परिणामस्वरूप।

3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. भूमि सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत कौन–से कार्य किए गए?
2. भूमि सुधार का क्या अर्थ है?

टिप्पणी

3. जमींदारी उन्मूलन से ग्रामीण क्षेत्रों को क्या लाभ हुआ?
4. पंचायत समिति के प्रधान के मुख्य कार्य क्या हैं?
5. स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना क्या है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. स्वतंत्रता के समय भारत की भूमि व्यवस्था का स्वरूप कैसा था?
2. भारत में भूमि सुधार के लिए उठाए गए कदमों की समीक्षा कीजिए।
3. पंचायती राज तथा स्थानीय स्वशासन के मुख्य बिंदुओं पर प्रकाश डालिए।
4. सामुदायिक विकास कार्यक्रम की व्याख्या कीजिए।
5. ग्रामीण विकास की प्रमुख रणनीतियों का विश्लेषण कीजिए।

3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

MacIver, R.M and C. Page. *Society: An Introductory Analysis*. New York: Macmillan.

Bottmore, T.B. *Sociology — A Guide to Problems and Literature.* Delhi: S. Chand.

Davis, Kingsley. *Human Society.* New York: Macmillan.

Horton, Paul. B, and Chester, L. Hunt, *Sociology.* New York: McGraw-Hill.

Hadden W. Richard. *Sociological Theory — An Introduction to the Classical Tradition.* Canada: Board View Press.

Spencer, H. *Study of Sociology*. Michigan: University of Michigan Press

Rao, M.S.A.(Eds), *Urban Sociology in India: Reader and Source Book*. New Delhi: Orient Longman, New Delhi.

Shivaramakrishan, K.C. Amitabh Kundu and B.N. Singh, 2005. *Oxford Hand Book of Urbanisation in India.* New Delhi: Oxford University Press, New Delhi.

Hadden W. Richard. *Sociological Theory — An Introduction to the Classical Tradition.* Canada: Board View Press.

Singh, Y. *Indian Sociology: Social Conditioning and Emerging Concerns*. Delhi: Vistaar.

इकाई 4 भारत के प्रमुख कृषि आंदोलन : एक आलोचनात्मक विश्लेषण

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 भारत के प्रमुख कृषि आंदोलन : आलोचनात्मक विश्लेषण
4.3 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.4 सारांश
4.5 मुख्य शब्दावली
4.6 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.7 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

कृषि आंदोलन के इतिहास में बीसवीं सदी के संघर्षों की दो समानांतर धाराएं थीं जिसमें एक तत्काल आर्थिक संघर्ष की थी जो तुरंत शोषण करने वालों, जैसे– कर्ज देने वाले, व्यापारियों, जमींदारों, अंग्रेज प्रशासकों आदि के विरुद्ध थी। दूसरा और अधिक संवेदनशील व संगठित विद्रोह था। जिसका नेतृत्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस मुख्यतः महात्मा गांधी ने किया और साम्यवादी पार्टी के नेतृत्व के अंतर्गत दूसरा आंदोलन। दोनों आंदोलन अखिल भारतीय स्तर पर कार्यरत थे।

कुछ आंदोलन सामंतवादी विरोधाभासों से उत्पन्न हुए क्योंकि भूमि सुधारों का कार्यान्वयन धीमा था व उसकी वृद्धि सामंतवादी शक्तियों के साथ अफसरशाही और नेताओं के हुए सहयोग से बाधित थी।

इस इकाई में भारत में हुए प्रमुख कृषि आंदोलनों का आलोचनात्मक विश्लेषण तथा विस्तृत अध्ययन किया गया है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भारत में हुए प्रमुख कृषि आंदोलनों के सभी पक्षों के बारे में विस्तार से जान पाएंगे;
- विभिन्न कृषि आंदोलनों का आलोचनात्मक विश्लेषण कर पाएंगे।

4.2 भारत के प्रमुख कृषि आंदोलन : आलोचनात्मक विश्लेषण

कोई भी सामूहिक एकजुटता ज्यादातर एक या दूसरे प्रकार के आंदोलन के रूप में वर्णित होती है जैसे– काश्तकारों का, श्रमिकों का, विद्यार्थियों का, महिलाओं का, पिछड़े

टिप्पणी

वर्गों का या जनजातीय समुदायों का आंदोलन। आंदोलन की पहचानने योग्य संरचना होती है कुछ योगदानों एवं लक्षणों का वर्णन निम्न है–

- एक आंदोलन परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। यह पूर्णतया कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सामूहिक प्रयास होता है जो कि अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निर्देशित होता है।
- एक आंदोलन जिसमें परिवर्तन के लिए दूरगामी संभावनाएं होती हैं उसे अभी नहीं तो बाद में विकसित होना आवश्यक है जो एक समग्र विचारधारा के तर्क को प्रस्तुत करेगा। यथास्थिति में परिवर्तन लाने के लिए संघर्ष जरूरी है।

आंदोलनों में उनके लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अकसर एक कार्यनीति होती है और समग्र कार्यनीति को पूर्ण करने के लिए कई युक्तियों का प्रयोग किया जाता है। कभी–कभी आंदोलन का उद्देश्य अपने न्यायोचित अधिकारों को समझाने के माध्यम से प्राप्त होता है जब राज्य इस पर ध्यान नहीं देता तो इससे संपूर्ण रूपांतरण से संबद्ध कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं में परिवर्तन लाने के लिए संगठित मांग उठने लगती है।

हर्बर्ले (1972) का अवलोकन है कि किसानों के आंदोलन एक नियम के रूप में विस्तृत विचारधारा को विकसित नहीं करते हैं किंतु निश्चित मांग जरूर उठाते हैं जिससे वे केवल प्रविवाद आंदोलन के ज्यादा करीब आते हैं।

आंदोलन द्वारा परिवर्तन लाने या रोकने के लिए अपनाए गए साधनों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, 1. संस्थागत, 2. गैर संस्थागत साधन। संस्थागत आंदोलन व्यवस्था से संबंधित होते हैं जो उस व्यवस्था को नियंत्रित करने वाली स्थापित शक्ति के द्वारा परिभाषित किए जा सकते हैं। यदि आंदोलन में अपनाए गए साधन गैर कानूनी हैं तो इसे गैर संस्थागत माना जाता है।

यहां साधनों के उपयोग के तीन पहलू हैं–

(क) जो हिंसा के उपयोग से संबंधित है।

(ख) जो इसकी सामाजिक वैधता से संबंधित है।

(ग) जो इस प्रश्न से संबंधित है कि क्या यह संस्थागत है या गैर संस्थागत है।

साधनों का उपयोग राज्य द्वारा संपूर्ण सामाजिक नियंत्रण के लिए किया जाता है और सामाजिक व्यवस्था में प्रतिरोधों से उत्पन्न होने वाले आंदोलन में भी इसका उपयोग होता है।

यह भी देखा गया है कि साधनों के एक समूह को संस्थागत माना जा सकता है या अन्यथा इसे स्थापित शक्ति की संरचना की प्रकृति से संबंधित माना जा सकता है। राज्य के पास ही कानूनी व गैरकानूनी रूप में परिभाषित करने का अधिकार होता है। अतः एक समान जन प्रतिरोध को भारत व अमेरिका में राजनैतिक संस्कृति और संरचना के हिस्से के रूप में स्वीकार किया जा सकता है पर चीन और दक्षिण अफ्रीका में यह स्वीकार्य नहीं है। आंदोलनों का मूल्यांकन निम्न तरीके से कर सकते हैं–

1. आंदोलन की प्रकृति और विशेषता
2. इसके द्वारा लाए जाने वाले लक्षित परिवर्तन
3. इसके द्वारा उपयोग किए जाने वाले साधन (कार्यनीति व युक्ति)

साधन	परिवर्तन को प्रोत्साहित/रोकने वाले लक्ष्य	
	अंतःव्यवस्थित	व्यवस्थित
संस्थागत	अर्द्ध आंदोलन उदाहरण– हड़ताल, तालाबंदी, प्रदर्शन, यात्रा गोष्ठी आदि जो न्यायोचित मांगों व शिकायतों को दूर करने के लिए होता है स्थिर राज्य (क)	अर्द्ध आंदोलन जो सामाजिक आंदोलनों की ओर मुड़ते हैं। उदाहरण– निर्णय लेने वाली शक्तियों के लिए मजदूर संगठनों के द्वारा अस्थिर राज्य (ख)
गैर–संस्थागत	वह आंदोलन जो सामाजिक आंदोलन की ओर मुड़ते हैं। उदाहरण– बंगाल का तिभागा आंदोलन, जिसमें किसानों ने फसल का 1/3 भाग लेने के लिए विद्रोह किया था। (ख)	सामाजिक आंदोलन जो क्रांतिकारी आंदोलन की ओर मुड़ते हैं। उदाहरण– नक्सली आंदोलन, चारू मजूमदार (ग)
संस्थागत/गैर–संस्थागत	वह आंदोलन जो सामाजिक आंदोलन की ओर मुड़ते हैं। उदाहरण– दंगे, विद्रोह, शोषण के विरुद्ध किसानों का विद्रोह (ख 2)	सामाजिक व क्रांतिकारी आंदोलन। उदाहरण– विद्रोहों से संबंधित संरचना परिवर्तन, सत्याग्रह आदि। (ग 2)

परिस्थिति (क)– इसका तात्पर्य उस आंदोलन से है जो लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए संस्थागत साधनों का उपयोग करते हैं। जिसमें व्यवस्था का कोई संरचनात्मक परिवर्तन सम्मिलित नहीं होता। उदाहरण– विभिन्न अनुदानों, फसलों के समर्थन मूल्य, ऋण माफी आदि के लिए दबाव डालाने वाले कृषक संगठनों का उद्देश्य कृषि भूमि व्यवस्था में परिवर्तन लाना नहीं होता है।

परिस्थिति (ख)– इसका तात्पर्य सामूहिक एकजुटता है जो संस्थागत साधनों के माध्यम से व्यवस्थित परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। काश्तकारी संस्था को समाप्त करने तथा वास्तविक जोतदार को जमीन देने की मांग करने वाले कृषक आंदोलन इसके उदाहरण हैं। यह एक सामाजिक व्यवस्था की अस्थिर अवस्था को दिखाता है जिसमें गैर संस्थागत साधनों के बाद की अवस्था में उभरने की संभावना रहती है।

परिस्थिति (ख 1)– यह सामूहिक प्रवृत्तिकरण है जो व्यवस्था के अंदर के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संस्थागत साधनों को अपनाता है। फसल के आधे हिस्से के बदले बटाईदार जोतकारों को फसल में दो–तिहाई हिस्सेदारी की मांग करने वाला विभाजन पूर्व बंगाल के तिभागा किसान आंदोलन को इस मामले में उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह एक अस्थिर परिस्थिति है। क्योंकि मांगों को पूरा करने के लिए यह गैर संस्थागत साधनों को आवश्यक बनाता है जो व्यवस्था को विदित रूप से रूपांतरित या संशोधित करने का प्रयास नहीं करती है। इसके विपरीत यह फसल से अधिक समान बंटवारे के लिए कार्य करती है।

परिस्थिति (ग)– इस व्यवस्था में परिवर्तनों को केवल गैर संस्थागत साधनों के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। इसमें परिवर्तन इतनी तीव्रता से घटित होता है कि किसी व्यवस्था की उपस्थिति को पहचानना या बीच में उत्पन्न होती किसी व्यवस्था की रूपरेखा देना मुश्किल हो जाता है। जब नक्सलियों ने षड्यंत्र के माध्यम से वर्ग शत्रुओं को समाप्त करने का निर्णय लिया तो परिस्थिति वास्तविक अव्यवस्था थी।

परिस्थिति (ख 2 एवं ग 2)– इन दोनों में, व्यवस्था के अंदर व व्यवस्थाओं के लक्ष्यों को क्रमशः प्राप्त करने के लिए संस्थागत व गैर संस्थागत साधनों का उपयोग किया जाता है। अतः यह सामाजिक व्यवस्था में सहभागिता की ऊंची दर और उच्चतर स्तर की अस्थिरता दर्शाता है। राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम आंदोलन की ऐसी ही परिस्थिति को दर्शाता है।

1860 व 1950 के मध्य 1930 से 1935 के बीच का आधा दशक एक अपवाद है जब कृषि उत्पादों के मूल्य कम हुए थे। इसका एक अधिकतम प्रभाव जो मूल्यों की ऐसी वृद्धि से उत्पन्न हुआ जो भूस्वामियों व किसानों के बीच कृषि उत्पादों पर नियंत्रण के लिए विकसित हुए संघर्ष का परिणाम था। भूस्वामियों ने किराया बढ़ाया, किसानों ने इसका विरोध किया। भूस्वामियों ने अपनी संपत्ति के अधिकार की ताकत से किसानों को बेदखल किया जबकि किसानों ने दावा किया और अकसर उन्हें बढ़ती हुई आवृत्ति से स्वामित्व के अधिकार प्रदान किए गए। शताब्दी के दौरान, किराए पर तथा उत्पादन पर जमींदारों के नियंत्रण का विरोध करने की किसानों की क्षमता में वृद्धि हुई। अंग्रेजों के शासन के अंत तक जमींदारी संरचना काफी कमजोर हो गई थी।

स्वतंत्रता पूर्व के कृषि आंदोलन

कृषि भूमि संघर्ष जो अंग्रेजों के काल में उत्पन्न हुए, उन्हें मुख्यतः दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है–

1. 1857 तक के विद्रोह जिसमें 1857 का विद्रोह भी शामिल है जिनमें जनजातियों व किसानों द्वारा कम संगठित तरीके से विद्रोह किए गए।
2. 1857 के बाद 20वीं शताब्दी के पहले पचास वर्षों तक के विद्रोह, जो अंग्रेजों की आर्थिक एवं राजनीतिक नीतियों, अकालों के बार–बार आने, नई भू–राजस्व व्यवस्था जो किसानों पर बोझ बन गई थी, एक नए प्रशासनिक तंत्र और नए दीवानी नियमों की वजह से और तीव्र हो गए।

1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद भारत में किसान आंदोलन की शुरुआत सन् 1859 से हुई। अंग्रेजों की नीतियों से सबसे ज्यादा किसान प्रभावित हुए। इसलिए आजादी के पहले भी कृषि नीतियों ने किसानों के आंदोलन की नींव डाली। सन् 1857 के सिपाही विद्रोह के विफल होने के बाद विरोध का मोर्चा किसानों ने ही संभाला क्योंकि सबसे बड़े आंदोलन अंग्रेजों और देशी रियासतों के शोषण से उपजे थे। भारत में जितने भी किसान आंदोलन हुए उनमें से ज्यादातर अंग्रेजों या फिर देश के हुक्मरानों के खिलाफ हुए। जिनमें किसानों का शोषण, उनके साथ होने वाली सरकारी अधिकारियों की ज्यादतियां, पक्षपातपूर्ण व्यवहार आदि किसानों के संघर्ष के प्रमुख कारण हैं।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पूर्व तथा पश्चात भारत में हुए प्रमुख किसान आंदोलन इस प्रकार हैं–

- **रामोशी विद्रोह**– महाराष्ट्र के चित्तर सिंह एवं उमा जी के नेतृत्व में 1822 से 1841 तक रामोशी किसानों ने जमींदारों के अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह किया।

- **नील आंदोलन (1859–1860)**– यह आंदोलन भारतीय किसानों द्वारा ब्रिटिश नील उत्पादकों के खिलाफ बंगाल में किया गया। अपनी आर्थिक जरूरतों की मांग को लेकर किसानों द्वारा किया गया उस समय का यह सबसे बड़ा आंदोलन था। अंग्रेज अधिकारी बंगाल तथा बिहार के जमींदरों की भूमि लेकर बिना पैसा दिए ही किसानों को नील की खेती करने के लिए विवश करते थे तथा नील उत्पादक किसानों को एक मामूली सी अग्रिम रकम देकर उनसे करारनामा लिखवा लेते थे जो बाजार भाव से बहुत कम दाम पर हुआ करता था। इस प्रथा को ददनी प्रथा कहा जाता था।

  इस स्थिति में स्थानीय नेता दिगंबर विश्वास तथा विष्णु विश्वास के नेतृत्व में किसानों ने विद्रोह कर दिया। अंततः सरकार को नील के कारखाने बंद करने पड़े। सरकार ने 1860 में नील आयोग का गठन कर जांच के आदेश दिए। आयोग का निर्णय किसानों के पक्ष में रहा।

- **कूका विद्रोह (1872 ई.)**– कृषि संबंधी समस्याओं के खिलाफ अंग्रेज सरकार से लड़ने के लिए बनाए गए इस संगठन के संस्थापक भगत जवाहर मल थे। 1872 ई. में इनके शिष्य बाबा सिंह ने अंग्रेजों का कड़ाई से सामना किया तथा उन्हें कैद कर रंगून भेज दिया गया। जहां 1885 में उनकी मृत्यु हो गई।

- **पाबना आंदोलन (1873–1876 ई.)**– पाबना जिले के काश्तकारों को 1859 ई. में एक एक्ट द्वारा बेदखली एवं लगान की वृद्धि के विरुद्ध एक सीमा तक संरक्षण प्राप्त हुआ था। इसके बावजूद भी जमींदार ने उनसे सीमा से अधिक लगान वसूला तथा उन्हें उनकी जमीन के अधिकार से वंचित कर दिया। हालांकि यह आंदोलन जमींदार तथा साहूकार विरोधी था न कि उपनिवेशवाद विरोधी। जमींदारों की ज्यादतियों का मुकाबला करने के लिए 1873 में पाबना के यूसुफ सराय के किसानों ने मिलकर एक कृषक संघ का गठन किया। इस संगठन का मुख्य कार्य पैसा एकत्र करना तथा सभाएं आयोजित करना होता था।

- **दक्कन विद्रोह (1874)**– महाराष्ट्र के पूना एवं अहमदनगर जिलों में गुजराती एवं मारवाड़ी साहूकार ढेर सारे हथकंडे अपना कर किसानों का शोषण कर रहे थे। दिसंबर 1874 में एक सूदखोर ने आदालत से किसान (बाबा साहिब देशमुख) के खिलाफ उसके घर की नीलामी की डिक्री प्राप्त कर ली। इस पर किसानों ने साहूकार के विरुद्ध आंदोलन शुरू कर दिया। इसके अंतर्गत किसानों ने महाजनों, साहूकारों की दुकानों से सामान खरीदना, उनके घर काम करना तथा उनके खेतों में काम करने से इनकार कर दिया। इस आंदोलन को शांत करने के लिए सरकार ने दक्कन कृषक राहत अधिनियम द्वारा किसानों को साहूकारों के विरुद्ध संरक्षण दिया तब यह आंदोलन समाप्त हुआ। इन साहूकारों के विरुद्ध आंदोलन की शुरुआत 1874 में शिरूर तालुका के करडाह गांव से हुई।

- **रंपाओं का विद्रोह (1879–1922)**– आंध्रप्रदेश में सीताराम राजू के नेतृत्व में औपनिवेशिक शासक के विरुद्ध यह विद्रोह था जो 1879 से लेकर 1920–22 तक

टिप्पणी

चलता रहा। रंपाओं को 'मुट्टा' उनके जमींदारों को मुट्टादार कहते थे। सुलिवन ने रंपाओं के विद्रोह के कारणों की जांच की। उसने नए जमींदार हटा कर पुराने जमींदारों को रखने की सिफारिश की।

- **उत्तर प्रदेश में किसान आंदोलन**– होमरूल लीग के कार्यकर्ताओं के प्रयास तथा गौरीशंकर मिश्र, इंद्र नारायण द्विवेदी तथा मदन मोहन मालवीय के दिशा निर्देशन के परिणामस्वरूप फरवरी 1918 ई. में उत्तर प्रदेश में किसान सभा का गठन किया गया। सन् 1919 में अंतिम दिनों में किसानों का संगठित विद्रोह खुलकर सामने आया। प्रतापगढ़ जिले की एक जागीर में नाई, धोबियों द्वारा बंद एवं सामाजिक बहिष्कार की संगठित कार्यवाही की यह पहली घटना थी। अवध की तालुकेदारी में ग्राम पंचायतों के नेतृत्व में किसान बैठकों का सिलसिला शुरू हुआ। सिगुरीपाल सिंह एवं दुर्गपाल सिंह ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उत्तर प्रदेश के किसान आंदोलन को 1920 ई. के दशक में सर्वाधिक मजबूती बाबा रामचंद्र ने दी। उनके व्यक्तिगत प्रयासों से ही 17 अक्टूबर, 1920 को प्रतापगढ़ जिले में 'अवध किसान सभा' का गठन किया गया। प्रतापगढ़ जिले का खरगांव किसान संगठन भी गतिविधियों का प्रमुख केंद्र था। इस संगठन को जवाहरलाल नेहरू, गौरी शंकर मिश्र, माता बदल पांडे, केदारनाथ आदि ने अपने सहयोग से शक्ति प्रदान की।

  उत्तर प्रदेश के हरदोई, बहराइच तथा सीतापुर जिलों में लगान वृद्धि एवं उपज के रूप में लगान वसूली को लेकर अवध के किसानों ने 'एका आंदोलन' चलाया। इस आंदोलन में कुछ जमींदार भी शामिल हुए। इस आंदोलन के प्रमुख नेता मदारी पासी और सहदेव थे जो कि किसान थे।

- **मोपला विद्रोह (1920 ई.)**– केरल के मालाबार क्षेत्र के मोपलाओं द्वारा 1920 में विद्रोह किया गया। प्रारंभ में यह विद्रोह अंग्रेज हुकूमत के खिलाफ था। महात्मा गांधी, शौकत अली, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद जैसे नेताओं का सहयोग इस आंदोलन को प्राप्त हुआ। 15 फरवरी, 1921 को सरकार ने निषेधाज्ञा लागू कर खिलाफत तथा कांग्रेस के नेता याकूब हसन, यू. गोपाल मेनन, पी. मोइद्दीन कोया और के. माधवन नागर को गिरफ्तार कर लिया। अली मुसलियार इस आंदोलन का मुख्य चर्चित नेता था। इसके बाद यह आंदोलन स्थानीय मोपला नेताओं के हाथ में चला गया। 1920 ई. में इस आंदोलन ने हिंदू–मुस्लिम के मध्य सांप्रदायिक आंदोलन का रूप ले लिया किंतु शीघ्र ही इस आंदोलन को खत्म कर दिया गया।

आंदोलन के कारण

- **किसानों पर अत्याचार**– जमींदारी क्षेत्रों में किसानों को उच्च लगान, अवैध कर, मनमानी बेदखली और अवैतनिक श्रम का सामना करना पड़ा। इसके अलावा सरकार ने भारी भू–राजस्व भी लगाया।
- **भारतीय उद्योगों का बड़े पैमाने पर नुकसान**– आंदोलन का उदय तब हुआ जब ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप पारंपरिक हस्तशिल्प और

अन्य छोटे उद्योगों का दमन हुआ तथा किसानों पर कृषिभूमि का अत्यधिक बोझ एवं कर्ज बढ़ा एवं किसानों की गरीबी में वृद्धि हुई।

- **प्रतिकूल नीतियां**– ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियां जमींदारों और साहूकारों के पक्ष में थी तथा किसानों का शोषण करती थी। इस अन्याय के खिलाफ किसानों ने कई अवसरों पर विद्रोह किया।

किसान आंदोलन खेतिहर मजदूरों, गरीब किसानों के आंदोलन हैं। छोटे किसान/किरोयदार किसान/ग्रामीण आदि वर्ग इसमें शामिल होते थे। जो कि अधिकतर निम्न जातियों से होते थे। उच्च जातियों और मध्यम जातियों के लोगों की पहचान अमीर किसान और जमींदारों के रूप में होती थी। किसानों को इस तरह अलग करने का एक वैज्ञानिक तरीका है जिसमें बाहरी श्रम शक्ति के संबंध में पारिवारिक श्रम शक्ति के अनुपात को देखना होता है। भूमि के स्वामित्व के साथ–साथ भूमि पर काम करने में यह मापदंड है।

पुस्तक 'पीजेंट क्लास डिफरेंशिएसन : ए स्टडी इन मेथड विद रेफरेंस टू हरियाणा' में दिए गए पटनायक के मॉडल का उपयोग कुछ विद्वानों ने किया है। इस ढांचे के अनुसार जिनके पास जमीन नहीं है लेकिन वे दूसरों की जमीन पर कार्य करते हैं या छोटे आकार की भूमि के मालिक हैं और स्वयं की भूमि की तुलना में दूसरों की भूमि पर अधिक कार्य करते हैं। ऐसी स्थिति में अधिक पूंजीवाद देखा गया है।

कृषि समूहों को निम्नलिखित वर्गों में बांटा गया है–

1. **ग्रामीण गरीब किसान**– खेतिहर मजदूर और छोटे/गरीब/सीमांत किसान जिनके पास अपनी स्वयं की जमीन नहीं है तथा मजदूरी के लिए दूसरे की जमीन पर कार्य करते हैं। जिनमें खेतिहर मजदूरी या किरायेदार के रूप में काम करने वाले कुछ छोटे/गरीब/सीमांत किसानों के पास थोड़ी सी जमीन हो भी सकती है लेकिन बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए यह पर्याप्त नहीं होती है। अतः उन्हें दूसरे की जमीन पर भी कार्य करना पड़ता है।
2. **किसान/मध्यम किसान/अमीर किसान**– इस वर्ग के पास स्वयं की जमीन होती है। वे अपनी ही जमीन पर कृषि संबंधी कार्य करते हैं।

कृषि आंदोलन का अध्ययन करने के लिए परंपरागत रूप से दो दृष्टिकोण हैं– मार्क्सवादी और गैर मार्क्सवादी।

पूर्व में इन आंदोलनों का विश्लेषण उत्पादन के सामाजिक संबंध या आर्थिक संबंध से किया जाता था। कैसे गरीब किसान का शोषण किया जाता है। 1980 के दशक की शुरुआत में मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अतिरिक्त ग्राम्शी के लेखन से प्रभावित यह दृष्टिकोण सबाल्टर्न दृष्टिकोण के रूप में जाना जाने लगा। कृषि आंदोलन के प्रभाव पर अध्ययन को रणजीत गुहा ने लोकप्रिय बनाया।

सबाल्टर्न अध्ययनों की श्रृंखला में यह दृष्टिकोण परंपरागत मार्क्सवाद के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण है जो अन्य कारकों पर आर्थिक कारकों को प्रधानता देता है। सबार्ल्टन स्कूल का तर्क है कि किसानों की अपनी चेतना, नेतृत्व और अन्य सांस्कृतिक मूल्य होते हैं।

स्वतंत्रतापूर्व के कृषि आंदोलन में राजनीति विज्ञान, राजनीति और आंदोलन में लोगों की भागीदारी कम रही है तथा किसानों को निष्क्रिय देखा गया। हालांकि बड़ी संख्या में विद्वानों ने इस दृष्टिकोण का विरोध किया जिसमें मुख्य रूप से कैथरीन गफ, ए.आर. देसाई, डी.एन. धनगरे और रणजीत गुहा शामिल थे। असल में कैथरीन गफ ने 19वीं तथा 20वीं शताब्दी के दौरान देश के लगभग सभी क्षेत्रों के कृषि आंदोलनों का अध्ययन किया। स्वतंत्रता काल में काश्तकार, खेतिहर मजदूर, कारीगर आदि शोषित वर्ग इस आंदोलन में शामिल हुए। इन आंदोलन में प्रमुख थे अवध के किसान।

यूपी में आंदोलन, गुजरात में खेड़ा आंदोलन, मालाबार में मोपिला आंदोलन, बिहार में चंपारन आंदोलन, बहावी फैरानी और तैभागा आंदोलन, मद्रास प्रेसीडेंसी में बंगाल और तेलंगाना आंदोलन (वर्तमान आंध्र बनाने वाले क्षेत्र) जैसे स्वतंत्रताकाल के आंदोलनों में मुद्दों, नेतृत्व की प्रकृति, विचारधारा और पैटर्न को लेकर भिन्नताएं हैं।

आजादी से पहले के कृषि आंदोलनों को उपनिवेश विरोधी आंदोलन कहा जा सकता है। साथ ही ये आंदोलन उन वर्गों के खिलाफ थे जो वर्ग ब्रिटिश साम्राज्य के समर्थक थे। ब्रिट्रिश साम्राज्य के दौरान जमींदार, साहूकार और अन्य शोषक वर्गों के मुद्दे इन आंदोलनों में उठाए गए जो कृषि संबंधों की प्रकृति से संबंधित थे। ये रिश्ते (संबंध) काश्तकारों/किसानों/कृषि वर्गों के शोषण पर निर्मित थे।

ब्रिटिश साम्राज्य जैसी औपनिवेशिक शक्ति को भारतीय मजदूरों, कारीगरों के श्रम एवं संसाधनों की आवश्यकता थी और उनकी सामंती जरूरतों को पूरा करने के लिए जमींदारों ने कई तरह से शोषण किया। जैसे किराये में अनुचित वृद्धि, जबरन उपहार, जबरन मजदूरी, शारीरिक यातना, कार्यकाल की असुरक्षा आदि। इस प्रकार कृषकों, मजदूरों एवं कारीगरों की समस्याएं स्वाभाविक रूप से जटिल हो गई थीं। साथ ही कई प्रकार की आपदाएं, अकाल, बाढ़, फसलों का व्यावसायीकरण, ऋण ग्रस्तता आदि विफलताओं के कारण जमींदारों के द्वारा गरीब किसानों को उनकी भूमि से बेदखल किया गया। उन्हें शारीरिक यचातनाएं भी दी जाती थीं। प्रताड़ित किसानों ने अलग–अलग रूप में आंदोलन किए, प्रदर्शन किए। कई मौकों पर आंदोलन के परिणामस्वरूप जमींदारों एवं पुलिस के एजेंटों के बीच हिंसक झड़पें हुई।

आंदोलन का महत्व

- **भारतीयों में जागरूकता**– इस विद्रोहों का उद्देश्य भारत से ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकना नहीं था लेकन इन्होंने भारतीयों में जागरूकता पैदा की। किसान अपने कानूनी अधिकारों के बारे में जागरूक हुआ।
- **अन्य विद्रोहों को प्रेरित करना**– उन्होंने शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ संगठित होने तथा लड़ने की आवश्यकता महसूस की। इन विद्रोहों ने पंजाब में सिख युद्धों और 1857 के विद्रोह जैसे कई अन्य विद्रोहों के लिए जमीन तैयार की।
- **किसानों के बीच एकता**– किसानों में गैर भेदभाव और साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष की सर्वव्यापी प्रकृति के कारण किसान आंदोलन भूमिहीन मजदूरों एवं सामंतवाद विरोधी किसानों के सभी वर्गों को एक जुट करने में सक्षम रहा।

- **किसानों की आवाज सुनी गई**– अपनी मांगों के लिए सीधे तौर पर लड़ने वाले किसानों के कारण उनकी अवाज सुनी गई। असहयोग आंदोलन के दौरान किसानों की मांगों को सुनने के लिए विभिन्न किसान सभाओं का गठन किया गया।
- **राष्ट्रवाद का विकास**– अहिंसा की विचारधारा ने आंदोलन में भाग लेने वाले किसानों को बहुत ताकत दी थी।
- **स्वतंत्रता के बाद के सुधारों को प्रोत्साहित किया**– इन आंदोलन ने स्वतंत्रता के बाद कृषि सुधारों के लिए एक आधार तैयार किया। उदाहरण के लिए 'जमींदारी का उन्मूलन'। उन्होंने जमींदार वर्ग की शक्ति को नष्ट कर दिया। इस प्रकार कृषि संरचना में परिवर्तन किया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के कृषि आंदोलन

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद और गांधी जी की मृत्यु के बाद तिभागा व तेलंगाना आंदोलनों की समाप्ति पर भूदान का उदय हुआ जो बाद में ग्रामदान आंदोलन, तिभागा व तेलंगाना के रूप में जाना गया। ग्रामदान व भूदान आंदोलन गांधी जी की परिकल्पना के विस्तार थे जिसमें संपत्ति के निजी स्वामित्व को न्यास की संपत्ति में बदलना था विशेषतः भूमि के मामलों में। न्यास स्वामित्व का अर्थ है कि उत्पादन के साधनों अर्थात भूमि, मशीनें आदि के स्वामी अपनी संपत्ति और उपक्रम के न्यासी बन जाएं और यह उस समुदाय की होगी जो उस पर श्रम करेगा। इसके अलावा अन्य कृषि आंदोलनों का विवरण निम्नानुसार दिया गया है–

विनोबा भावे का भूदान आंदोलन

यह आंदोलन नालगौंडा जिले के पोचमपल्ली गांव से 1951 में आरंभ हुआ जो तेलंगाना आंदोलन की जन्म स्थली था। विनोबा भावे ने भूस्वामी परिवारों को भूमिहीनों को अपना अतिरिक्त पुत्र मान कर उनका हिस्सा उपहार में देने को कहा। अगली अवस्था में गांव के भूस्वामियों को गांव की अपनी सारी भूमि उपहार में देने के लिए निवेदन किया गया। तब यह भूमि किसी व्यक्ति की नहीं किंतु सारे गांव की संपत्ति होगी। यह बिना किसी संदेह के एक क्रांतिकारी कदम था जिसका मतलब निजी संपत्ति के अंत की मांग थी। इस कार्यक्रम पर प्रतिक्रिया जनजातीय समुदायों व उत्तर प्रदेश तथा बिहार के भूमिहीन एवं गरीब किसानों की ओर से आई। उड़ीसा के जनजातीय जिले कोरापुट से भी प्रतिक्रिया आई। शुरुआती अवस्था में कुछ बहुत ही अच्छे परिणाम प्राप्त हुए। उदाहरण के लिए 1958 में बिहार के एक गांव बिरेन में लगभग 88 परिवारों ने ग्रामदान के अंतर्गत 18 एकड़ भूमि प्राप्त की। जिसके निवासी केवल अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के थे। एक मध्यमवर्गीय किसान परिवार को छोड़कर सभी ग्रामवासी कृषि श्रमिक थे। गांव ने एक समिति तथा ग्रामसभा का निर्माण किया। ग्रामदान की 18 एकड़ भूमि पर सामूहिक कृषि का निर्णय लिया गया। भूस्वामी के साथ फसल बटाईदारी का ठेका समिति के माध्यम से होता था। ग्रामीण उद्योग आरंभ किए गए। कोल्हू (तेल), मधुमक्खी पालन, टोडी मोलासिस का उत्पादन तथा धागा बनाने के लिए चरखा और बुनाई के लिए करघे लगाए गए।

संपन्न किसानों ने ग्रामदान में साथ आने के लिए कई शर्तों के साथ कुछ मांगें रखीं जो मान ली गईं। किंतु समय के साथ ग्रामदान की सरल समतावादी क्रियाविधि में खराबी आने लगी। ग्रामदान सर्वोदय आंदोलन शोषण की सामंतवादी ताकतों से सीधे संघर्ष में शामिल नहीं हुआ। इसने काश्तकारी व कृषि श्रमिकों के शोषित वर्ग के लिए उत्पादन व वितरण की वैकल्पिक समतावादी व्यवस्था के लिए संरचनात्मक विकल्प बनाने का प्रयास किया जिससे सामंतवादी कृषि भूमि व्यवस्था को बदला जा सका।

नक्सली आंदोलन

दार्जिलिंग के सिलीगुड़ी तहसील में नक्सलवादी आंदोलन की 1967 में शुरुआत हुई। इसने अपना नाम पश्चिमी बंगाल के एक गांव नक्सलवाड़ी से लिया। यह किसानों के संघों का भूमि सुधारों के लिए एवं सामंतवादी शोषण के विरुद्ध एक लंबे समय तक चलने वाला विद्रोह था। कृषक समिति ने जमींदारों द्वारा किसानों को बेदखल करने और गैरकानूनी कर लेने पर रोक लगाई। उन्होंने किसानों को समझाया कि जमींदारों को उपज का हिस्सा तब तक मत दो जब तक कि वह किसानों द्वारा खेती–बाड़ी की भूमि के दस्तावेज प्रदान नहीं करते हैं। प. बंगाल में 1967 के चुनाव में वामपंथियों की जीत हुई। 2 मार्च, 1967 को एक गैरकांग्रेसी संयुक्त मोर्चा सरकार भाकपा, माकपा व कांग्रेस से टूटकर (अलग होकर) बनी बांग्ला कांग्रेस के गठजोड़ से स्थापित हुई।

शपथ लेने के तुरंत बाद भूमि राजस्व मंत्री जो माकपा के पुराने किसान नेता थे, ने भूमिहीन किसानों में अतिरिक्त भूमि के वितरण तथा फसल ऊगाने वालों की बेदखली को रोकने की घोषणा की। इन दलों ने भूमि वितरण का वादा तो किया किंतु राज्य पूरी तरह से उनके नियंत्रण में नहीं था अतः वे यह निश्चित नहीं कर सके कि जमींदारों द्वारा दुर्भावनापूर्ण भूमि (बेनामी) हस्तांतरण को पुन' कैसे प्राप्त किया जाए। किसान सभा का एक वर्ग इस परिस्थिति से तालमेल नहीं बिठा पा रहा था। उन्होंने अफसरशाही के आगे घुटने टेकने वाले संबंधित मंत्री पर हमला कर दिया। किसान सभा का यह वर्ग उत्तरी बंगाल में किसानों के मध्य पहले से ही काफी सक्रिय था। 18 मार्च, 1967 को संयुक्त मोर्चा सरकार बनने के बाद, सिलीगुड़ी तहसील में आयोजित किसानों के एक सम्मेलन में मार्क्सवादी कम्यूनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में निम्नलिखित निर्णय लिए गए–

1. भूमि जमींदारों के स्वामित्व के एकाधिकार को समाप्त करना।
2. काश्तकारों की समितियों और संगठनों के माध्यम से भूमि का पुनर्वितरण करना।
3. जमींदारों का प्रतिरोध समाप्त करना।

मार्च–अप्रैल 1967 में तहसील के सभी गांवों को एकत्रित करके 15–20 हजार किसानों को पूर्णकालिक कार्यकर्ता के रूप में नामांकित किया गया। सभी गांवों में किसान समितियां बनाई गईं और उन्हें सशस्त्र बल में बदल दिया गया। उन्होंने शीघ्र ही किसान समिति के नाम पर भूमि पर कब्जा किया और सभी भू–अभिलेखों जिनका उपयोग किसानों को धोखा देने में किया जाता था नष्ट कर दिया। सभी ऋणों व रेहन को समाप्त कर दिया। दमनकारी जमींदारों को मृत्युदंड दिया, जमींदारों की बंदूक लूटकर सशस्त्र दल बनाए गए। किंतु इस आंदोलन में भी विभिन्न स्तरों पर विरोधाभास

होने लगे। सिलीगुड़ी समिति द्वारा उपयोग में लाई गई युक्ति पार्टी की नीति से पूरी तरह अलग थी। पार्टी कुछ नियमों में बंधी थी, जिससे पार्टी का विभाजन हो गया और 1969 में कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया का निर्माण हुआ। पार्टी ने इसके बाद अनुमंडल के किसानों एवं पुलिस के बीच जारी संघर्षों के दौरान उत्तर बंगाल जिला समिति की मांगों की वैधता पर ध्यान दिया।

आज नक्सली आंदोलन किसी भी पार्टी द्वारा नहीं चलाया जा रहा है किंतु अनगिनत समूह नक्सली राजनीति को अपना रहे हैं।

बरगा (बंटाईदार) ऑपरेशन

पश्चिम बंगाल में 1977 में कम्यूनिस्ट पार्टी और उनके सहयोगी दलों को सरकार बनाने के लिए जनता ने वोट देकर जिताया तब ग्रामीण जनता को भूमि संबंधी समस्याओं, भूख, ऋण सुविधाओं का अभाव, बेरोजगारी और पट्टे की असुरक्षा जैसी परेशानियों से मुक्त करने के लिए कदम उठाए गए। ये बरगादार पश्चिम बंगाल में बहुत अधिक संख्या में थे और कृषि भूमिकों के साथ वहां की कृषि की रीढ़ की हड्डी थे। 1977 में वामदलों के सत्ता में आने के बाद से पश्चिम बंगाल में 1978 से ऑपरेशन बरगा एक प्रमुख कार्य रहा।

ऑपरेशन बरगा एक ऐसा ऑपरेशन था जो उस समय के कृषि भूमि नियमों के अनुसार जो प्रावधान थे उनको पूरा करने के लिए था। इस ऑपरेशन का एक प्रमुख उद्देश्य बरगादारों का पंजीयन था। वामदलों के अंतर्गत आने वाले किसान संगठनों के लिए यह एक बड़ा कार्य था। पं. बंगाल में जमींदारी बंदोबस्त का लंबा इतिहास है। किसानी कार्य में संलगन बरगों (बंटाईदार) के नाम जोतों (भूमि) का कोई अभिलेख नहीं था। मौखिक समझौते ही प्रचलित थे और किसी भी उपयोगी कागज का रख–रखाव जमींदारों और संपन्न भूस्वामियों के जिम्मे था अतः किसान संगठन के सामने बरगा भूमि की पहचान करना सबसे बड़ा कार्य था। और फिर पंजीयन के बाद बरगादारों को पुराने शक्ति समूहों (जैसे बरगादार भू–स्वामियों) द्वारा किए गए किसी भी हमले से सुरक्षा भी प्रदान करनी थी। इन प्रयासों को राजनैतिक और प्रशासनिक सहयोग से बल मिला, जो इन संगठनों को राज्य सरकार से प्राप्त हुए।

ऑपरेशन बरगा पहले से सामंतवादी विरोधी संघर्ष का परिणाम प्रतीत होता है। यह ऑपरेशन स्वयं में एक संघर्ष था। एक आंदोलन जिसे राज्य का सहयोग प्राप्त हुआ, एक राज्य जिसमें नियमों को लागू करने की इच्छा शक्ति थी। जिसके परिणामस्वरूप 30 जून, 1985 तक अनुमानित कुल 20 लाख बरगादारों में से 10 लाख 13 हजार बरगा अभिलेखों को पूर्णतः सूचीबद्ध किया गया। इनके पंजीकरण ने बटाईदारों के पट्टों की कानूनी सुरक्षा की लेकिन वे फिर भी गरीब किसान ही साबित हुए। उनका जीवन स्तर गरीबी रेखा पर या उससे नीचे था और कभी–कभी अपने प्रमाण पत्रों (पट्टों) को बेचने को भी मजबूर हुए। इस प्रचलन को रोकने के लिए संस्थागत ऋण व अन्य गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम प्रारंभ किए गए। 1983 तक लगभग 30000 किसानों को ऐसा ऋण प्रदान किया गया। किसानों की संरचना की सुरक्षा बरगादारों को दी जा रही पट्टों की सुरक्षा के माध्यम से हुई और इसने बरगादारों के लिए ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कीं जिससे वह कई आर्थिक व गैर–आर्थिक बंधनों से मुक्त हुआ जिनमें जमींदारों ने उन्हें बांध रखा था।

साठ के दशक तक होने वाली ज्यादातर कृषि, मुख्य रूप से पुरानी कृषि भूमि व्यवस्था थी जिसमें सामंत प्रभावी थे।

उड़ीसा के हाल के वर्षों के किसान आंदोलन

उड़ीसा के किसान धान या चावल के कम मूल्य के मुद्दे पर वर्ष 2000 से आंदोलन कर रहे हैं। धान के कम मूल्यों का प्रश्न वहां लंबे समय से है। लेकिन इस विरोध की उत्पत्ति खोजना काफी कठिन है। शुरू में किसान अकाल राहत की अपनी मांग पर दबाव बनाने के लिए संगठित हुए (उड़ीसा 2000–01 में अकाल पीड़ित था)। अगले सत्र यानी 2001 के मानसून के दौरान कई जिले स्थानीय नदियों के द्वारा बाढ़ से ग्रसित हुए। इसके बाद अर्थात 2001 जुलाई में किसानों की मांग बाढ़ राहत की हो गई। बाद में अक्टूबर–नवंबर 2001 तक किसान के सामने धान के उचित विक्रय मूल्य का मुद्दा था जो कुछ उन्होंने प्रकृति की निर्ममता के बाद भी उगाया था। और अब उनका संगठन ताकत में बढ़ता हुआ प्रतीत होता है। 10 मई 2001 को रास्ता रोको प्रतिरोध के बाद किसानों की एक बड़ी रैली हुई जिसमें जिले भर से 10000 किसान आए जिससे प्रशासन को उनके आगे झुकना पड़ा और निम्न बिंदुओं पर समझौता हुआ–

1. धान की खरीद और बिक्री एक ही परिसर में ही होगी जिससे मिल मालिकों पर नियंत्रण रहेगा। पहले मिल मालिक आरएमसी के बाहर से धान खरीद लेते थे। न्यूनतम समर्थन मूल्य से बहुत कम दाम पर खरीद कर फूड कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया को ऊंचे दाम में बेच देते थे।
2. समझौते में भुगतान संबंधी निर्णय लिया गया। यदि 15 बोरी से कम धान कोई बेचता है तो उसका भुगतान तुरंत हो जाएगा। यदि यह मात्रा ज्यादा हो तो 30 प्रतिशत का भुगतान तुरंत किया जाएगा और शेष धन का भुगतान एक सप्ताह में हो जाएगा। इसके अतिरिक्त उचित गुणवत्ता मानक या एफएक्यू विश्लेषण आरएमसी प्रतिष्ठान में हो न कि चावल की मिलों में। इसके अलावा फोटो पहचान पत्र दिए गए जिससे आरएमसी पर धान बेचते समय व्यापारियों की पहचान हो सके। अतः यदि कोई कम मूल्य पर धान खरीदता हो तो उसकी पहचान हो सके।

किसान विरोध प्रदर्शन (2020–21)– पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़ तथा लगभग पूरे देश के किसानों द्वारा मुख्य रूप से 2020 में भारतीय संसद द्वारा पारित तीन कृषि अधिनियमों का विरोध किया जा रहा है। यह विरोध 9 अगस्त 2020 से चल रहा है जिसमें लोकसभा और राज्यसभा द्वारा पास तीन कृषि कानूनों (फार्म बिल) की वापसी मुद्दा है। जिसमें उन्होंने घेराव, धरना, रास्ता रोकने, प्रदर्शन आदि विधियों के द्वारा अपना विरोध प्रदर्शन किया है। किसानों के मुख्य लक्ष्य निम्न हैं–

- तीनों फार्म बिलों को निरस्त कराना।
- कानूनी रूप से न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) सुनिश्चित करना।
- एमएसपी को उत्पादन की लागत से कम से कम 50 प्रतिशत अधिक करना।
- एनसीआर और आस–पास के क्षेत्रों में वायु गुणवत्ता का निसन आयोग (2020)
- किसानों हेतु राष्ट्रीय आयोग की सिफारिशों को लागू करना।

- फार्म यूनियन नेताओं के खिलाफ दर्ज सभी मामलों को वापस लेने के लिए।
- कृषि विश्वविद्यालयों के लिए डीजल की कीमतों में 50 प्रतिशत की कमी करना।
- बिजली (संशोधन) अध्यादेश (2020) को रद्द करना।

भारत के राष्ट्रपति ने 28 सितंबर, 2020 को तीन विधेयकों पर हस्ताक्षर करके तीन कृषि कानूनों पर अपनी सहमति दी जो इस प्रकार है–

1. **कृषि उपज, वाणिज्य और व्यापार (संवर्धन और सुविधा) अधिनियम**– चुनिंदा क्षेत्रों से उत्पादन, संग्रह और एकत्रीकरण के किसी भी स्थान पर किसानों के व्यापार क्षेत्रों का दायरा बढ़ाता है। अनुसूचित किसानों की इलेक्ट्रॉनिक ट्रेडिंग और ई–कॉमर्स की अनुमति देता है। राज्य सरकारों को बाहरी व्यापार क्षेत्र में आयोजित किसानों की उपज के व्यापार के लिए किसानों, व्यापारियों और इलेक्ट्रॉनिक ट्रेडिंग प्लेटफार्म पर कोई बाजार शुल्क, उपकर या लेबी वसूलने से प्रतिबंधित करता है।
2. **मूल्य आश्वासन और कृषि सेवा अधिनियम पर किसान (सशक्तीकरण और संरक्षण) समझौता**– किसी भी किसान के उत्पादन या पालन से पहले किसान और एक खरीददार के बीच एक समझौते के माध्यम से अनुबंध कृषि के लिए एक रूपरेखा तैयार करता है। यह तीन स्तरीय विवाद निपटान तंत्र प्रदान करता है– सुलह बोर्ड, उप विभागीय मजिस्ट्रेट और अपीलीय प्राधिकरण।
3. आवश्यक वस्तु (संशोधन) अधिनियम– युद्ध या आकाल जैसी असाधारण स्थितियों के दौरान केंद्र कुछ खाद्य पदार्थों को विनियमित करने की अनुमति देता है तथा कृषि उपज की स्टॉक सीमा को हटाता है।

किसानों के एक सीमित वर्ग को यह संदेह है कि ये कानून मंडी व्यवस्था को धीरे–धीरे समाप्त कर देंगे और किसानों को निगमों की दया पर छोड़ दिया जाएगा। किसानों की आशंकाओं को देखते हुए सरकार ने फिलहाल इन किसान बिलों को वापस ले लिया है।

आंदोलन के कारण

आज के समय में भारतीय कृषि में गंभीर समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। यह समस्या भूख से मृत्यु व किसानों की आत्महत्या की बढ़ती घटनाओं से और अधिक नजर आती है। अभी भी भूख से होने वाली मौतों की ज्यादातर संख्या देश के पिछड़े क्षेत्रों से नियमित रूप से दर्ज होती हैं। ये आंध्रप्रदेश, उड़ीसा और अब राजस्थान व महाराष्ट्र में बढ़ रही हैं। किसानों में आत्महत्या की प्रवृत्ति सामान्यतः बहुत अधिक कर्ज, फसल खराब होने, उत्पादनों के लिए बाजार न मिलना, कम मूल्य मिलना आदि के कारण देखी जा रही है। इन समस्याओं के कारण किसानों में असंतोष बढ़ रहा है।

शहरी औद्योगिक उच्च वर्ग द्वारा ग्रामीण समुदाय का शोषण ही कृषि समुदाय की इस दयनीय स्थिति का मूल कारण है। किसानों की यह मांग है कि राज्य को उन्हें भी उसी प्रकार की लाभकारी संरचनाएं, सुविधाएं, रियायतें, आधारभूत संरचना आदि मुहैया करानी चाहिए जैसी शहरी–औद्योगिक व्यवस्था को दी जाती हैं।

भारत के सभी भागों में अलग–अलग समय पर किसानों ने कृषि नीति में परिवर्तन करने के लिए आंदोलन किए हैं ताकि उनकी दशा सुधर सके। मौजूदा दौर में भारत में कृषक आंदोलन तेज गति से बढ़ रहे हैं इसका मुख्य कारण है कि किसान की आर्थिक दशा दिन प्रतिदिन कमजोर हो रही है और वह कर्ज के जाल में फंसता जा रहा है। क्योंकि मौजूदा दौर में कृषि की लागत बढ़ रही है आमदनी घट रही है जिसके कारण किसानों में आत्महत्या की घटनाएं बढ़ रही है। दूसरी तरफ कृषि नीति बदलवाने के लिए देश के सैकड़ों किसान संघर्ष कर रहे हैं। वर्ष 2017 में देश में छोटे–बड़े सैकड़ों आंदोलन हुए।

वर्ष 1858 और वर्ष 1914 के बीच की अवधि में आंदोलनों की प्रवृत्ति वर्ष 1914 के बाद के आंदोलनों के विपरीत, स्थानीयकृत, असंबद्ध और विशेष शिकायतों तक सीमित थी। वर्ष 1920 से वर्ष 1940 के बीच कई किसान संगठनों का उदय हुआ। वर्ष 1936 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में सहजानंद की अध्यक्षता में अखिल भारतीय किसान सभा का गठन किया गया।

पिछले तीन दशकों में अनेक सशक्त किसान आंदोलन हुए। तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा आदि राज्यों में लाखों की संख्या में किसान अपनी मांगों को लेकर सड़कों पर निकले। बाद में उड़ीसा, राजस्थान आदि में भी किसानों ने आंदोलन किए। किसानों ने बड़े–बड़े धरने एवं रैलियां कीं। इसमें लाखों महिला किसानों एवं पुरुष किसानों ने भाग लिया। किसानों का शोषण, कृषि उपज का उचित दाम न मिलना, किसानों पर बढ़ता कर्ज, किसानों पर बढ़ते शुल्क, बिजली के बढ़े बिल आदि उनके प्रमुख मुद्दे हैं। वैश्वीकरण की नीतियों ने किसानों को बड़ी संख्या में आत्महत्याओं की कगार पर पहुंचा दिया।

नेशनल एकाउंट्स डाटा के अनुसार कृषि अपने बुरे दौर से गुजर रही है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार प्रतिवर्ष औसतन 15168 किसान आत्महत्या करने को मजबूर हैं। जिनमें छोटे किसानों की संख्या अधिक है जिनके पास 2 हेक्टेयर से भी कम जमीन है। पिछले दिनों देश के किसान संगठन अपनी मांगों को लेकर आंदोलन करते रहे हैं। कर्ज माफी, समर्थन मूल्य में वृद्धि की मांग पर किसान लगातार संर्घरत हैं।

उपरोक्त विश्लेषण के आलोक में सरकार द्वारा कृषि एवं कृषकों के हितों तथा उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की बाध्यताओं के मध्य उचित संतुलन बनाते हुए नीतियों का उचित निर्माण एक समाधान–परक उपाय होगा।

अपनी प्रगति जांचिए

1. "किसानों के आंदोलन एक नियम के रूप में विस्तृत विचारधारा को विकसित नहीं करते हैं किंतु निश्चित मांग जरूर उठाते हैं।"– यह किसका अवलोकन है?

   (क) हर्बर्ले का (ख) गांधी जी का

   (ग) विनोबा भावे का (घ) रणजीत गुहा का

2. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद और गांधी जी की मृत्यु के बाद तिभागा व तेलंगाना आंदोलन की समाप्ति पर किसका उदय हुआ?

(क) अनुदान का (ख) भूदान का

(ग) अन्नदान का (घ) श्रमदान का

4.3 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)

4.4 सारांश

आंदोलनों में उनके लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अकसर एक कार्यनीति होती है और समग्र कार्यनीति को पूर्ण करने के लिए कई युक्तियों का प्रयोग किया जाता है। कभी–कभी आंदोलन का उद्देश्य अपने न्यायोचित अधिकारों को समझाने के माध्यम से प्राप्त होता है जब राज्य इस पर ध्यान नहीं देता तो इससे संपूर्ण रूपांतरण से संबद्ध कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं में परिवर्तन लाने के लिए संगठित मांग उठने लगती है।

यह भी देखा गया है कि साधनों के एक समूह को संस्थागत माना जा सकता है या अन्यथा इसे स्थापित शक्ति की संरचना की प्रकृति से संबंधित माना जा सकता है। राज्य के पास ही कानूनी व गैरकानूनी रूप में परिभाषित करने का अधिकार होता है। अतः एक समान जन प्रतिरोध को भारत व अमेरिका में राजनैतिक संस्कृति और संरचना के हिस्से के रूप में स्वीकार किया जा सकता है पर चीन और दक्षिण अफ्रीका में यह स्वीकार्य नहीं है।

1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद भारत में किसान आंदोलन की शुरुआत सन् 1859 से हुई। अंग्रेजों की नीतियों से सबसे ज्यादा किसान प्रभावित हुए। इसलिए आजादी के पहले भी कृषि नीतियों ने किसानों के आंदोलन की नींव डाली। सन् 1857 के सिपाही विद्रोह के विफल होने के बाद विरोध का मोर्चा किसानों ने ही संभाला क्योंकि सबसे बड़े आंदोलन अंग्रेजों और देशी रियासतों के शोषण से उपजे थे। भारत में जितने भी किसान आंदोलन हुए उनमें से ज्यादातर अंग्रेजों या फिर देश के हुक्मरानों के खिलाफ हुए। जिनमें किसानों का शोषण, उनके साथ होने वाली सरकारी अधिकारियों की ज्यादतियां, पक्षपातपूर्ण व्यवहार आदि किसानों के संघर्ष के प्रमुख कारण हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद और गांधी जी की मृत्यु के बाद तिभागा व तेलंगाना आंदोलनों की समाप्ति पर भूदान का उदय हुआ जो बाद में ग्रामदान आंदोलन, तिभागा व तेलंगाना के रूप में जाना गया। ग्रामदान व भूदान आंदोलन गांधी जी की परिकल्पना के विस्तार थे जिसमें संपत्ति के निजी स्वामित्व को न्यास की संपत्ति में बदलना था विशेषतः भूमि के मामलों में। न्यास स्वामित्व का अर्थ है कि उत्पादन के साधनों अर्थात भूमि, मशीनें आदि के स्वामी अपनी संपत्ति और उपक्रम के न्यासी बन जाएं और यह उस समुदाय की होगी जो उस पर श्रम करेगा।

पिछले तीन दशकों में अनेक सशक्त किसान आंदोलन हुए। तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा आदि राज्यों में लाखों की संख्या में किसान अपनी मांगों को लेकर सड़कों पर निकले। बाद में उड़ीसा, राजस्थान आदि में भी किसानों ने आंदोलन किए। किसानों ने बड़े–बड़े धरने एवं रैलियां कीं। इसमें लाखों महिला किसानों एवं पुरुष किसानों ने भाग लिया। किसानों का शोषण, कृषि उपज का उचित दाम न मिलना, किसानों पर बढ़ता कर्ज, किसानों पर बढ़ते शुल्क, बिजली के बढ़े बिल आदि उनके प्रमुख मुद्दे हैं। वैश्वीकरण की नीतियों ने किसानों को बड़ी संख्या में आत्महत्याओं की कगार पर पहुंचा दिया।

नेशनल एकाउंट्स डाटा के अनुसार कृषि अपने बुरे दौर से गुजर रही है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार प्रतिवर्ष औसतन 15168 किसान आत्महत्या करने को मजबूर हैं। जिनमें छोटे किसानों की संख्या अधिक है जिनके पास 2 हेक्टेयर से भी कम जमीन है। पिछले दिनों देश के किसान संगठन अपनी मांगों को लेकर आंदोलन करते रहे हैं। कर्ज माफी, समर्थन मूल्य में वृद्धि की मांग पर किसान लगातार संघर्षरत हैं।

4.5 मुख्य शब्दावली

- **सामूहिक** : मिलजुल कर।
- **युक्ति** : तरकीब, उपाय।
- **साधन** : जरिया।
- **उपयोग** : इस्तेमाल।
- **परिस्थिति** : हालत, दशा।

4.6 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. कृषि आंदोलन से आप क्या समझते हैं?
2. आंदोलन में अपनाए गए साधनों के उपयोग के कौन–कौन से पहलू हैं?
3. विनोबा भावे का भूदान आंदोलन कहां से आरंभ हुआ था?
4. ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियां किसानों के लिए कैसी थी?
5. आंदोलनों का क्या महत्व है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. नक्सली आंदोलन की विवेचना कीजिए।
2. बरगा ऑपरेशन की प्रमुख बातों का विश्लेषण कीजिए।
3. उड़ीसा के किसान आंदोलन की व्याख्या कीजिए।

4. प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात भारत में हुए प्रमुख किसान आंदोलनों की समीक्षा कीजिए।

टिप्पणी

4.7 सहायक पाठ्य सामग्री

MacIver, R.M and C. Page. *Society: An Introductory Analysis*. New York: Macmillan.

Bottmore, T.B. *Sociology — A Guide to Problems and Literature.* Delhi: S. Chand.

Davis, Kingsley. *Human Society.* New York: Macmillan.

Horton, Paul. B, and Chester, L. Hunt, *Sociology.* New York: McGraw-Hill.

Hadden W. Richard. *Sociological Theory — An Introduction to the Classical Tradition.* Canada: Board View Press.

Spencer, H. *Study of Sociology*. Michigan: University of Michigan Press

Rao, M.S.A.(Eds), *Urban Sociology in India: Reader and Source Book*. New Delhi: Orient Longman, New Delhi.

Shivaramakrishan, K.C. Amitabh Kundu and B.N. Singh, 2005. *Oxford Hand Book of Urbanisation in India.* New Delhi: Oxford University Press, New Delhi.

Hadden W. Richard. *Sociological Theory — An Introduction to the Classical Tradition.* Canada: Board View Press.

Singh, Y. *Indian Sociology: Social Conditioning and Emerging Concerns*. Delhi: Vistaar.

इकाई 5 वैश्वीकरण और कृषि पर इसके प्रभाव : जल और कृषि, सिंचाई प्रबंधन प्रथाएं

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 वैश्वीकरण और कृषि पर इसके प्रभाव
5.3 जल और कृषि तथा सिंचाई प्रबंधन प्रथाएं
5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.5 सारांश
5.6 मुख्य शब्दावली
5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.8 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

शोधपरक तथ्य स्पष्ट करते हैं कि पशुपालन व कृषि का काम भारत में 9000 ईसा पूर्व आरम्भ हो गया था। सिंधु नदी के कांठे के पुरावशेषों के उत्खनन से इस बात के प्रचुर साक्ष्य मिले हैं कि आज से 5000 वर्ष पूर्व यहां कृषि उन्नत दशा में थी। ऋग्वेद व अथर्ववेद में कृषि–विषयक अनेक ऋचाएं हैं। अतएव कृषि का संबंध आदिकाल से ही हमारी अर्थव्यवस्था से रहा है। व्यावसायिक कृषि के प्रचलन से पहले कृषि कार्य खाद्यान्नों तक ही सीमित था। आधुनिक कृषि, व्यावसायिक कृषि है। अब कृषि क्रिया के अन्तर्गत बोई जाने वाली विभिन्न फसलों के साथ–साथ पशुपालन, मत्स्यपालन, बागवानी, मधुमक्खीपालन, चरागाह तथा वनारोपण आदि भी सम्मिलित किये जाते हैं। आधुनिक युग में कृषि के अन्तर्गत वे सभी उद्योग भी सम्मिलित किए जाते हैं जो कृषि के विकास के लिए उत्पादन करते हैं। देश के आर्थिक विकास में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। कोई भी देश आर्थिक प्रगति के कितने भी ऊंचे शिखर पर क्यों न पहुंच जाये वह कृषि की उपेक्षा नहीं कर सकता क्योंकि कृषि मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं, जैसे; भोजन, कच्चा–माल, आवास, आदि की पूर्ति करती है। देश के उद्योग–धन्धे, विदेशी व्यापार, विभिन्न योजनाओं की सफलता एवं राजनीतिक स्थायित्व भी कृषि पर निर्भर करता है।

इस इकाई में हम भारतीय कृषि के प्राकृतिक संसाधनों की स्थिति तथा उनके प्रयोग की विधियों एवं प्रथाओं, भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की भूमिका, कृषि उद्योग संदर्भित समस्याओं के समाधान सरीखे विविध प्रासंगिक विषयों का अध्ययन करेंगे।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- वैश्वीकरण तथा कृषि पर इसके प्रभावों को जान पाएंगे;
- जल तथा कृषि एवं सिंचाई प्रबंधन प्रथाओं का अध्ययन कर पाएंगे।

5.2 वैश्वीकरण और कृषि पर इसके प्रभाव

इनका अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

वैश्वीकरण

वैश्वीकरण एक जटिल, आर्थिक, राजनीतिक ओर सामाजिक प्रक्रिया है। सामाजिक वैज्ञानिक दृष्टि में वैश्वीकरण की प्रक्रिया समय और दूरी का राष्ट्र–राज्य से आगे संकुचन उत्पन्न करती है। वैश्वीकरण में वर्तमान धारा का उदारीकरण और निजीकरण से अभिन्न संबंध है। यह पूंजी, श्रम, उत्पाद, प्रौद्योगिकी और सूचना के जरिए आधुनिकीकरण, राष्ट्र निर्माण एवं राष्ट्रों के बीच गठबंधन निर्माण के साथ ही उत्पन्न हो रही है। इसे सूचना तकनीकी एवं जैव प्रौद्योगिकी में हो रहे क्रांतिकारी परिवर्तनों से गति मिलती है। इसमें प्रतियोगिता, दक्षता, बेहतर उत्पादकता एवं प्रौद्योगिकी तरक्की के जरिए प्रगति की भी संभावना है।

वैश्वीकरण एक नई जटिल अवधारणा है। अभी तक इसकी सर्वमान्य परिभाषा का अभाव है। इसकी कुछ परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

रवि प्रकाश पांडेय के अनुसार, "वैश्वीकरण की प्रक्रिया समय और दूरी का राष्ट्र–राज्य से आगे संकुचन उत्पन्न करती है। इसके आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आयाम हैं। वैश्वीकरण की वर्तमान धारा का उदारीकरण और निजीकरण से अभिन्न संबंध है। इसमें विश्व बाजार, विभिन्न आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं, मल्टीमीडिया प्रौद्योगिकी तथा संस्कृति आदि के एकीकरण का अंतर्वेशन हो रहा है। जबकि राष्ट्र–राज्य की प्रभुसत्ता और स्वदेशीयता आदि में कमी आ रही है।"

आर. अरॉबट्र्सन के अनुसार, "वैश्वीकरण प्रक्रिया की जटिलता को देखते हुए वे मानते हैं कि वैश्वीकरण लादने का दबाव बड़ी तेजी से बढ़ा है किंतु इसमें अंतरात्मक शक्ति प्रदान की है।"

रॉबट्र्सन ने वैश्वीकरण को एक ऐसी अवधारणा के रूप में परिभाषित किया है जो दुनिया का दबाव और दुनिया की चेतना के तीव्रीकरण दोनों से संयुक्त रूप से संबंधित है।

एंथनी गिडेंस के अनुसार, "दुनिया के स्तर पर सामाजिक संबंधों तथा बहुत तीव्रीकरण जो दूरस्थ क्षेत्रों को इस प्रकार से जोड़ता है जिससे स्थानीय गतिविधियों तथा बहुत अधिक (किलोमीटर) दूर की घटनाओं द्वारा एक–दूसरे को स्वरूप प्रदान किया जाता है।"

थॉमस, फ्राइडमैन के अनुसार, "वैश्वीकरण वास्तव में बाजारों, अर्थव्यवस्था और प्रौद्योगिकियों का एकीकरण है। इसमें विश्व का मध्यम से छोटे रूप में एक ऐसा संकुचन हो रहा है जिससे हम दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने तक इतनी जल्दी तथा सस्ते में पहुंच जाएं जितने में पहले कभी संभव नहीं था। पूर्व की सभी अर्थव्यवस्थाओं की भांति यह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में घरेलू राजनीति, आर्थिक नीतियों तथा सभी देशों के विदेशी संबंधों को स्वरूप प्रदान कर रहा है।"

एक सामाजिक अवधारणा के रूप में सर्वप्रथम वैश्वीकरण का प्रयोग करने का श्रेय पिट्सबर्ग विश्वविद्यालय के रॉलैण्ड रॉबट्र्सन को जाता है। अपने व्यापक अर्थ में वैश्वीकरण केवल शुद्ध आर्थिक प्रक्रिया नहीं है अपितु यह विश्व के सभी भागों में रहने वाले लोगों के मध्य सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक, व्यापारिक संबंधों के विकास की व्यापक प्रक्रिया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण अंतर्राष्ट्रीयवाद को दर्शाने वाली एक प्रक्रिया है। इसमें विभिन्न देशों के पारस्परिक संबंधों तथा उनको बनाए रखने के प्रयास शामिल हैं। इनके अंतर्गत राष्ट्रीय हितों का अंतर्राष्ट्रीयकरण किया जाता है ताकि वैश्वीकरण की प्रक्रिया के उद्देश्य प्राप्त करने में सुविधा रहे। इसका आधार मुक्त विश्व व्यापार व्यवस्था है। इसी पर सभी तरह के संबंध आधारित होते हैं।

विशेषताएं

बहुराष्ट्रीय निगमों की बढ़ती भूमिका ने पूंजी व मुद्रा पर लगे नियंत्रण तोड़ दिए हैं और मुक्त व्यापार को बढ़ाया है। उनका कहना है कि इससे विकास दर में वृद्धि होगी, निर्धनता में कमी आएगी और विकासशील देशों का कल्याण होगा। इसलिए उन्होंने विश्व व्यापार संगठन का निर्माण किया है और अर्थव्यवस्था को बाजारोन्मुख बनाने के लिए अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक की भूमिका में बदलाव की अपेक्षा की है। जिस नए प्रकार की व्यवस्था की ओर हम जा रहे हैं उसकी विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. श्रम बाजार अंतर्राष्ट्रीय हो गया है। 1965 में 71.5 करोड़ व्यक्ति रोजगार की दृष्टि से दूसरे देशों में प्रवाहित हुए थे। अब यह संख्या 12.5 करोड़ तक पहुंच गई है।
2. आज विज्ञान प्रौद्योगिकी के विकास ने विश्व के देशों में भौगोलिक दूरियों को कम कर दिया है। न केवल व्यापार, तकनीकी एवं सेवा क्षेत्र बल्कि आवागमन को भी सरल एवं सस्ता बना दिया है। आज कम्प्यूटर तथा इंटरनेट तेजी से दुनियां को जोड़ रहे हैं।
3. श्रम बाजार की मांगों को पूरा करने के लिए कई व्यवस्थित माध्यम तैयार हो गए हैं। आज श्रम एजेंटों की सक्रियता के कारण श्रमिकों का अवैध या वैध व्यापार हो रहा है। विदेशों में पुराने प्रवासियों के नेटवर्क के कारण नए प्रवासियों को मार्गदर्शन मिल रहा है।
4. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रचार के कारण ग्लोबल संस्कृति का विकास हुआ है। पॉप संगीत, हॉलीवुड फिल्में, जींस, टी–शर्ट आज की युवा पीढ़ी की संस्कृति है। जो विश्व के प्रत्येक देश में पाई जाती है। आज विश्व में उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास हुआ है। आज भ्रष्टाचार तथा अपराधों की प्रवृत्ति व उन्हें रोकने के लिए तरीके एक समान हैं। आज आतंकवाद का स्वरूप भी अंतर्राष्ट्रीय हो गया है।
5. आज बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर रोजगार प्रदायक हो गई है। पहले ये केवल उत्पादित वस्तुओं, सेवाओं, तकनीकी आदि की ही आवाजाही के साधन थे, आज विश्व में व्यापार विशेषज्ञों, प्रबंधकों, कुशल–अकुशल श्रमिकों की नियुक्ति इन्हीं के द्वारा की जाती है। ये श्रम प्रवाह का सबल साधन हैं।

6. आज शिक्षा का भी वैश्वीकरण होने से अमेरिका जैसे देशों में उच्च शिक्षा के लिए जो विद्यार्थी जाते हैं वहीं पर रोजगार प्राप्त कर लेते हैं। दूसरी तरफ आज शिक्षा संस्थानों का अंर्राष्ट्रीयकरण होने से किसी भी देश में शिक्षा प्राप्त व्यक्ति कहीं भी किसी भी देश में रोजगार प्राप्त कर सकता है।
7. आज पहले की तुलना में डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षाविद् तथा वैज्ञानिक अधिक मात्रा में विदेशों की तरफ आकर्षित हुए हैं। आज विदेश आवागमन पहले की तुलना में अधिक आसान हो गया है।

वैश्वीकरण द्वारा विभिन्न देशों के बाजारों एवं उनमें बेची जाने वाली वस्तुओं में एकीकरण है जिसमें विदेशी व्यापार की बढ़ती हुई प्रवृत्ति, उन्नत प्रौद्योगिकी की निकटता आदि के कारण विश्व व्यापार को बढ़ावा मिलता है। वैश्वीकरण से संपूर्ण विश्व में परस्पर सहयोग एवं समन्वय से एक बाजार के रूप में कार्य करने की शक्ति को बढ़ावा मिलता है। इसके द्वारा ही वस्तुओं एवं सेवाओं के एक देश से दूसरे देश में आने एवं जाने के अवरोधों को समाप्त कर दिया जाता है जिससे संपूर्ण विश्व में बाजार की शक्तियां स्वतंत्र रूप से कार्य करने लगती हैं।

वैश्वीकरण का उद्देश्य

वैश्वीकरण के माध्यम से विश्व की अर्थव्यवस्था को एकीकृत करके स्वतंत्र एवं मुक्त व्यापार नीति को अपनाना है। संपूर्ण देशों को एक आर्थिक अर्थतंत्र के माध्यम से जोड़ना ही वैश्वीकरण का मुख्य उद्देश्य है।

वैश्वीकरण के माध्यम से विश्व व्यापार का काफी तेजी से विस्तार करना है। ताकि स्थानीयकरण से मौद्रिक घाटा कम हो सके। सुनियोजित तरीके से स्वतंत्र व्यापार का संतुलन बनाया जा सके। विश्व के सभी देश एक साथ मुक्त व्यापार संगठन की प्रक्रिया में भाग ले सकें। वैश्वीकरण की अर्थव्यवस्था को भारतीय अर्थव्यवस्था के द्वारा समझा जा सकता है। जैसा कि भारतीय अर्थव्यवस्था में उत्तरोत्तर उदारीकरण के माध्यम से वैश्वीकरण करने के लिए किए गए प्रयासों एव विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों को लागू करने के फलस्वरूप देश की अर्थव्यवस्था पर जो प्रभाव पड़े हैं उनकी समीक्षा तथा आंकलन करके वैश्वीकरण का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव को समझा जा सकता है। वैश्वीकरण आपसी प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देता है जिसके माध्यम से विश्व के संपूर्ण देश उदारीकरण की प्रक्रिया में समान रूप से भाग ले सकते हैं एवं सामंजस्य बनाए रखते हैं।

वैश्वीकरण को प्रोत्साहित करने वाले कारक

तकनीकी ज्ञान का विस्तार– वैश्वीकरण के कारण विगत 50 वर्षों के दौरान तकनीकी ज्ञान का काफी तीव्र गति से विकास हुआ है। इस तकनीकी ज्ञान के द्वारा परिवहन, प्रौद्योगिकी से अब दूर देशों तक वस्तुओं को कम लागत में पहुंचाना संभव हो गया है। सूचना संचार प्रौद्योगिकी ने विश्व की संपूर्ण अर्थव्यवस्था को एक सुनिश्चित योजना से स्पष्ट एवं सरल बना दिया है। संचार सूचनाओं में जैसे– कम्प्यूटर, इंटरनेट, मोबाइल, फोन, फैक्स आदि के द्वारा एक दूसरे की संबद्धता को काफी सरल बना दिया है। वैश्वीकरण के द्वारा सूचना, संचार एवं प्रौद्योगिकी विकास ने विश्व व्यवस्था को विशेष रूप से प्रभावित किया है।

विदेशी व्यापार में विस्तार– विदेशी व्यापार के विस्तार से वैश्वीकरण की प्रक्रिया नियंत्रित हुई है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद लगभग सभी देशों में विदेशी व्यापार में वृद्धि हुई है। विश्व व्यापार संगठन के द्वारा घरेलू बाजार को भी विश्व बाजार में वस्तुओं एवं सेवाओं को भेजने का अवसर मिला है। विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने इस हेतु महत्वपूर्ण योगदान दिया है। विश्व व्यापार के माध्यम से उत्पादन की मात्रा में वृद्धि हुई है। इसके साथ ही प्रत्येक देश के उत्पादकों को प्रतियोगिता में समान अवसर मिला है।

व्यापार एवं प्रशुल्क संबंधी सामान्य समझौता (GATT)

गैर–द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व की प्रमुख शक्तियों ने विभिन्न देशों के बीच व्यापार अवरोधों को कम करने और आपसी विवादों को निपटाने के लिए अनेक नियम बनाने पर चर्चाएं आरंभ की। इन वार्ताओं का सार्थक परिणाम 1948 ई. में व्यापार और प्रशुल्क संबंधी सामान्य समझौता की स्थापना के रूप में आया। गैट के प्रशासन का निरीक्षण करने के लिए स्वीट्जरलैंड के जेनेवा नगर में इसका मुख्यालय स्थापित किया गया है।

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना– विश्व व्यापार संगठन विभिन्न देशों के मध्य संतुलन एवं समझौते के परिणाम के रूप में एक व्यवस्था स्थापना थी। विभिन्न देशों के मध्य असंतुलन की समस्या को दूर करने हेतु उदारीकरण की प्रक्रिया एवं मुक्त व्यापार को लागू करने हेतु विश्व व्यापार संगठन एक माध्यम बना। 15 अप्रैल, 1994 को जारी मराकश घोषणा पत्र में विभिन्न मुद्दों में एक महत्वपूर्ण मुद्दा विश्व व्यापार संगठन का था। इसके अनुसार 1 जनवरी, 1995 को विश्व व्यापार संगठन की स्थापना की घोषणा की गई।

वैश्वीकरण का विकास– वैश्वीकरण की शुरुआत 16वीं शताब्दी में मानी जाती है। इस अव्यवस्थित प्रक्रिया के विभिन्न प्रकार के गति एवं अवरोधों के बीच यह व्यवस्था चलती रही। इस प्रक्रिया के चलते विश्व व्यापार में घटक देशों को बहुत परेशानी का सामना करना पड़ा। आर्थिक एकीकरण को प्रभावशाली बनाने के लिए सन् 1970 के दशक से सकारात्मक प्रयास किए गए। 1990 के दशक में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना से इसके विकास में काफी प्रगति आई।

आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभाव– वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में कोई भी राजनीतिक घटनाक्रम का प्रभाव सारे विश्व को प्रभावित करता है। विश्वयुद्ध एवं उसके परिणामों ने संपूर्ण विश्व को प्रभावित किया है। वर्तमान विश्वव्यापी आर्थिक मंदी का कारण विकसित देशों की राजनीतिक गतिविधियों का परिणाम है। जिससे यह स्पष्ट है कि आर्थिक संबंध जो राजनीतिक वातावरण के कारण विस्तृत हुए हैं उन पर इन संबंधों का विशेष प्रभाव पड़ा है। पूरे विश्व में विकसित देश महाशक्ति के रूप में उभर कर सामने आए हैं, और इनके राजनीतिक एवं आर्थिक संबंध पूरे विश्व को प्रभावित करते हैं जो कि वैश्वीकरण के कारण ही संभव हुआ है।

औद्योगीकरण पर प्रभाव– आज की वर्तमान औद्योगीकरण की प्रक्रिया 18वीं शताब्दी में संपन्न प्रथम औद्योगिक क्रांति की देन है। अर्नाल्ड टायनवी के अनुसार– औद्योगिक क्रांति कोई आकस्मिक घटना नहीं थी बल्कि विकास की निरंतर प्रक्रिया थी। औद्योगिक

क्रांति इंग्लैंड से शुरू हुई, जिसे वैश्वीकरण ने प्रभावित किया। भारत में वर्ष 1991 को घोषित औद्योगिक नीति और बाद में किए गए विभिन्न सुधारों के बाद औद्योगीकरण काफी विकसित हुआ। उद्योग में निजी क्षेत्रों को भरपूर अवसर प्रदान किए गए।

रोजगार के अवसरों पर प्रभाव– वैश्वीकरण के कारण मनुष्य की जीवन पद्धति, गुणवत्ता, रहन–सहन एवं जीवन स्तर पर प्रभाव पड़ा है। विश्व व्यापार संगठनों के द्वारा प्रतियोगिता बाजार को बढ़ावा मिला है। इसके साथ ही रोजगार के अवसरों में कमी आई है। औद्योगीकरण के द्वारा अत्यंत आधुनिक मशीनों का स्वचालित उपयोग एवं सूचना प्रौद्योगिकी के तेजी से विस्तार होने के कारण मानवीय शक्ति श्रम की गुणवत्ता में कमी आई है। वैश्वीकरण ने रोजगार को सबसे अधिक प्रभावित किया है। क्योंकि श्रमिकों को जहां अच्छा रोजगार मिलता है वे वहीं काम करने चले जाते हैं। औद्योगीकरण का रोजगार की प्रक्रिया से प्रत्यक्ष संबंध होता हे। उदाहरण के लिए कारखाने का मालिक अपने उत्पादन की लागत कम करने के लिए श्रमिकों को अस्थायी (Temporary) रोजगार देता है ताकि उसे वर्ष भर वेतन न देना पड़े। वैश्वीकरण के कारण रोजगार एवं कार्यों के मध्य एक आपसी अंतःसंबंधता की समस्या बनी हुई है। इसी कारण श्रमिकों को उनके स्तर के अनुसार रोजगार नहीं मिल पाते जिससे रोजगार के अवसरों पर प्रभाव पड़ता है।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों पर प्रभाव– गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम भारतीय अर्थव्यवस्था की सबसे बड़ी चुनौती है। गरीबी के उन्मूलन हेतु कई पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा कई प्रयास किए गए। विश्व के अनेक देशों में आज भी गरीबी एक सबसे बड़ी समस्या है। गरीबी उन्मूलन सुनिश्चित करने एवं संतुलन बनाए रखने के लिए रोजगार के अवसरों को बढ़ाना, औद्योगीकरण को बढ़ाना, प्रति व्यक्ति आय एवं व्यक्ति के जीवन में गुणात्मक सुधार करना आदि कार्यक्रमों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। विकसित एवं विकासशील देशों के कार्यक्रम अलग–अलग हैं। विकासशील देशों में गरीबी की समस्या निरपेक्ष न होकर सापेक्ष गरीबी में बदल गई। भारतीय अर्थव्यवस्था में वैश्वीकरण से उत्पन्न एक सबसे बड़ी समस्या आर्थिक असमानता की है जिसको गरीबी उन्मूलन द्वारा कम किया जा सकता है।

कृषि पर प्रभाव

वैश्वीकरण का कृषि पर भी व्यापाक प्रभाव पड़ा है। भारत में 90 प्रतिशत कृषक छोटे एवं सीमांत कृषि के अंतर्गत आते हैं। कृषकों के पास सीमित पूंजी एवं आय कम होने के कारण ये किसान कृषि आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं को कम मात्रा में उपयोग कर पाते हैं। हरित क्रांति के बाद जिन कृषकों के पास पूंजी थी उन कृषकों को सबसे अधिक लाभ मिला। लेकिन सीमांत कृषकों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। वैश्वीकरण के कारण कृषि उत्पादकता पर भी काफी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। जैविक खादों एवं कीटनाशक दवाइयों का महंगा होना, कृषि शोध एवं जैविक विविधता में बाधा आदि के कारण कृषि की उत्पादकता एवं कृषि पद्धति काफी प्रभावित हुई है।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की केंद्र बिंदु व भारतीय जीवन की आधारशिला है। आर्थिक जीवन का आधार, रोजगार का प्रमुख स्रोत तथा विदेशी मुद्रा अर्जन करने का माध्यम होने के कारण कृषि को देश की आधारशिला कहा जाता है। देश की कुल

श्रम शक्ति का लगभग 52 प्रतिशत भाग कृषि एवं कृषि से संबंधित क्षेत्रों से अपनी जीविका चलाते हैं अतः देश का विकास कृषि के विकास, समृद्धि व उत्पादकता पर निर्भर है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात कृषि को देश की आत्मा के रूप में स्वीकारते हुए देश के प्रथम प्रधानमंत्री नेहरू ने कहा था कि, "सब कुछ इंतजार कर सकता है मगर खेती नहीं"। इसी तथ्य का अनुसरण करते हुए भारत सरकार कृषि क्षेत्र को विकसित करने एवं कृषकों की आर्थिक स्थिति में सुधार करने हेतु अनेक कार्यक्रम, नीतियां एवं योजनाओं का संचालन कर रही है। सरकार ने 1960–61 में भूमि सुधार कार्यक्रम के द्वारा किसानों को भूमि का मालिकाना हक प्रदान किया। भू–जोतों की अधिकतम सीमा तथा चकबंदी जैसे कार्यक्रमों द्वारा कृषक वर्ग लाभान्वित हुआ है।

वैश्वीकरण की नीति कृषि अर्थव्यवस्था पर लगातार कुठाराघात कर रही है। देश में कृषि की विकास दर 80 के दशक की अपेक्षा नब्बे के दशक में कम हो गई। आठवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास दर 4.7 प्रतिशत दर्ज की गई जो कि घटकर नौवीं पंचवर्षीय योजना में मात्र 2.1 प्रतिशत रह गई। वर्ष 2002–2003 में कृषि विकास दर ऋणात्मक रही जबकि 2004–05 में कृषि दर मात्र 1.1 प्रतिशत। जो कि सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर 6.9 प्रतिशत से काफी कम थी। वर्ष 2009 के दौरान व्यापक सूखा पड़ने से कृषि विकास दर में 0.2 प्रतिशत गिरावट आ गई। वहीं 2010–11 वित्त वर्ष की दूसरी तिमाही में कमजोर मानसून के कारण कृषि उत्पादन में वृद्धि मात्र 0.9 प्रतिशत दर्ज की गई जिसे बढ़ाने के लिए प्रभावी कदम शीघ्र उठाने की आवश्यकता थी। वर्ष 2012–13 के दौरान 4.5 प्रतिशत, 2013–14 में विकास दर 4.9 प्रतिशत रही। आर्थिक सर्वेक्षण 2021–22 के अनुसार कृषि और इससे संबद्ध क्षेत्र कोविड–19 के झटकों को सबसे बेहतर तरीके से सह पाए क्योंकि इस क्षेत्र ने 2020–21 में 3.6 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की और 2021–22 में 3.9 प्रतिशत तक सुधार हुआ, जिससे समग्र भारतीय अर्थव्यवस्था का वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद का विस्तार 2021–22 में 9.2 प्रतिशत हुआ।

वैश्वीकरण की नीतियों के तहत भारतीय बाजार के द्वार विदेशी कृषि उत्पादकों के लिए खोल दिए जाने पर देश की कृषि व्यवस्था पर संकट के बादल छा रहे हैं। उच्च लागत व उच्च कीमतों के कारण हमारे कृषि उत्पाद विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं कर पा रहे हैं। इसके अतिरिक्त विकसित देशों के द्वारा अपने कृषकों व कृषि उत्पादों से संबंधित विविध कंपनियों को भारी मात्रा में अनुदान दिया जा रहा है जिसके कारण हमारे बाजारों में भी विदेशी कृषि उत्पादों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है।

विश्व व्यापार संगठन की नीति को मूर्त रूप प्रदान करते हुए भारत में भी कॉर्पोरेट खेती को प्राथमिकता दी जा रही है। जिसके कारण कृषि की बागडोर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथ जा रही है। इस कारण देश में लघु व सीमांत किसानों की आजीविका पर असर पड़ रहा है। लाखों किसान खेतों में मजदूरी करने के लिए विवश हैं। अनेक गांवों से शहरों की तरफ रोजगार की तलाश में पलायन करने को मजबूर हैं। अनेक ने विभिन्न कारणों से एवं ऋण न चुका पाने के कारण आत्महत्या जैसे अपराध करने को विवश हुए हैं। वर्ष 1977 से वर्ष 2008 तक लगभग 2 लाख किसान अपनी जान गंवा

बैठे हैं। कृषि वित्त, भंडारण एवं विपणन की अपर्याप्त एवं दोषपूर्ण व्यवस्था के कारण अधिकांश लघु किसानों को अपनी फसल का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है जिसके कारण कृषक के लिए परिवार का पेट भरना मुश्किल हो जाता है। इसी प्रकार कृषिगत आगतों की बढ़ती कीमतें, गिरते भू जल स्तर एवं भूमि की घटती उर्वरता के कारण कृषि घाटे का सौदा बन गई है। कई कंपनियां लाभ को अधिकाधिक करने हेतु बहुतायत में रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों का उपयोग करके भूमि की उर्वरता को समाप्त करने पर तुली है।

वैश्वीकरण के इस युग में कृषि को प्रतियोगी बनाकर एवं संभावित खतरों से बचाते हुए कृषि को लाभदायक क्षेत्र के रूप में परिवर्तित करने से ही छोटे किसानों की प्रगति संभव है। जलवायु परिवर्तन के कारण मिट्टी की उर्वरा शक्ति में कमी आने, लवणता बढ़ने तथा जैव विविधता में ह्रास होने की वजह से कृषि व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ने की संभावना बढ़ रही है। परिवर्तन व प्रतियोगिता समय की मांग है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए कृषि व्यवस्था में सुधार करने, कृषि तकनीकी व्यवस्था में परिवर्तन करने तथा जलवायु परिवर्तन के कहर से बचने के लिए प्रभावी व्यूह रचना का क्रियान्वयन जरूरी है।

1. केवल परंपरागत फसलों को उगाकर किसान समृद्ध नहीं हो सकते। बदलती मांग व कीमतों के अनुसार फसल में परिवर्तन करना जरूरी है। प्राकृतिक विधि व जैविक खाद के उपयोग से उगाए गए खाद्य पदार्थों की मांग अमेरिका, यूरोप व जापान में तेजी से बढ़ रही है। इस बढ़ती मांग के अनुसार किसानों को उत्पादन करके लाभ उठाना चाहिए।
2. सन् 1990 के बाद वैश्वीकरण का युग आया और भारतीय किसानों के सामने नई चुनौतियां खड़ी हुईं जिसने आर्थिक युग को ही बदल दिया। चाय, कपास, चावल, कॉफी, जूट, गरम मसाले मुख्य उत्पादन थे। परंतु फिर भी भारतीय कृषि विश्व के विकसित देशों से स्पर्धा करने में असमर्थ है क्योंकि उन देशों में कृषि को अत्यधिक सहायता दी जाती है। उनके पास उच्च उत्पादन वाली किस्मों के बीज, रासायनिक खाद और कीटनाशक, सिंचाई सुविधाएं आदि फसलों के अधिक उत्पादन हेतु उपलब्ध हैं।

कृषि उत्पाद नाशवान है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में शीत गृहों की असुविधा है जिसके कारण 15 से 20 प्रतिशत उत्पाद सड़ जाता है। 55 प्रतिशत गांवों में बीज भंडारण व्यवस्था नहीं है। 80 प्रतिशत गांवों में कृषि औजारों की मरम्मत की सुविधा नहीं है। 60 प्रतिशत गांवों में बाजार केंद्र नहीं हैं। इन आधारभूत सुविधाओं के अभाव में किसान उदारीकरण एवं वैश्वीकरण जनित प्रतियोगिता का सामना नहीं कर पाते हैं। अतः ग्रामों में गोदामों, शीतगृहों एवं बीज भंडारण की व्यवस्था को प्राथमिकता देना होगा। साथ ही कृषि उत्पाद को लाने–ले–जाने के लिए वातानुकूलित वाहनों की व्यवस्था पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

चूंकि कृषि में जोखिम होने के कारण कृषक को फसल बीमा योजना को व्यापक बनाते हुए बीमा प्रीमियम दर को कृषकों की आय के अनुपात में रखना होगा। साथ ही कृषि को उद्योग का दर्जा देना होगा। ग्रामीण विकास के इस अभियान में पंचायती राज्य संस्थाओं व ग्राम सभाओं को भी जिम्मेदार बनाना होगा।

भारत में कृषि पर वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभाव देखने के लिए कृषि की हिस्सेदारी बढ़ाने की कोशिश करना जरूरी है। निर्यात के उत्पादों की गुणवत्ता एवं मात्रा बढ़ाने हेतु कृषि क्षेत्र की समस्याओं का अध्ययन आवश्यक है। बिजली की अनियमितता एवं अपर्याप्त आपूर्ति, बुनियादी सेवाओं की कमी, उत्पादन में कमी, बढ़ती फसलों की योजना की कमी, वित्त की कमी, बारिश पर निर्भरता आदि समस्याओं को हल करने एवं उत्पादों का उचित मूल्य प्राप्त करने के लिए विभिन्न उपाय किए जा रहे हैं। प्रसंस्करण उद्योगों को कृषि उत्पादों को संसाधित करने के लिए विकसित किया गया है। किसानों को कृषि संबंधित उद्योगों के लिए प्रशिक्षित किए जाने हेतु मार्गदर्शन दिया जाना चाहिए जिससे वैश्वीकरण में कृषि को उन्नत कर सकते हैं।

कृषि विकास के निर्धारक तत्व

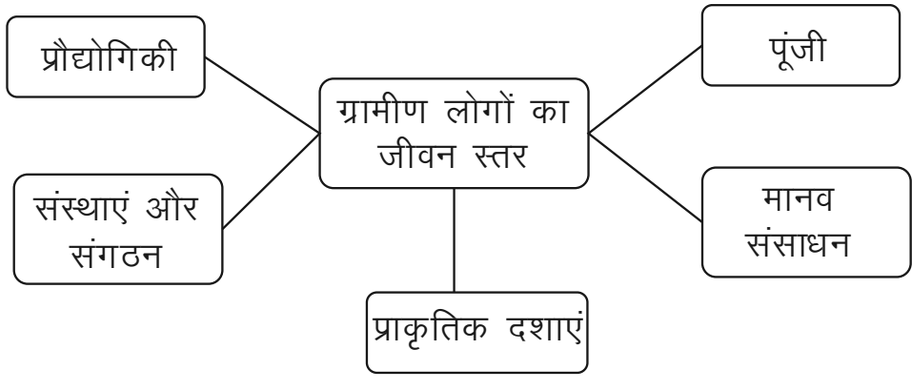

कृषि विकास की प्रगति को प्रभावित करने वाली ग्रामीण आधारभूत संरचना की मुख्य कमियों में बचत जुटाने और ऋण देने के लिए वित्तीय संस्थाओं की कमी है। सार्वजनिक निवेश की भूमिका एवं अन्य मान्य कारक भी हैं जो कृषि विकास को काफी अधिक प्रभावित करते हैं।

भारतीय कृषि के समक्ष प्रमुख चुनौतियां

भारतीय कृषि क्षेत्र के सामने निम्नलिखित चुनौतियां हैं–

1. **मानसून पर बढ़ती निर्भरता**– भारतीय कृषि मानसून पर निर्भर है। कम वर्षा से पैदावार प्रभावित होती है जिससे खाद्य महंगाई बढ़ती है। वर्षा की अनियमितता खाद्य उत्पादकों को प्रभावित करती है और पैदावार में कमी होती है।
2. **अप्रत्याशित मौसम**– मौसम के बदलते तेवर से कृषि प्रभावित होती है जिससे किसानों के जीवन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कहीं मानसून में देरी है तो कहीं सूखे की स्थिति बनती है। दूसरी ओर देश के कुछ हिस्सों में बेमौसम बारिश (खासतौर पर दक्षिण भारत), के कारण फसलों का उत्पादन प्रभावित होता है या फसल बड़े पैमाने पर क्षतिग्रस्त हो जाती है। इसी कारण धान, गेहूं और बागवानी के उत्पादन में कमी आई है।
3. **खेती योग्य भूमि में कमी**– भारतीय कृषि जनगणना 2010–11 के अनुसार प्रति व्यक्ति खेती की जमीन 0.34 हेक्टेयर से घटकर वर्ष 2000 में लगभग

0.15 हेक्टेयर रह गई है। बढ़ती जनसंख्या के साथ वर्ष 2030 तक इसके और भी कम होकर 0.07 प्रति व्यक्ति रह जाने की संभावना है।

4. **खेतों का घटता आकार**– कृषि गणना 2011 के अनुसार भारत में खेतों का औसत आकार वर्ष 2005–2006 में 1.23 हेक्टेयर था, जो घटकर 2010–11 में 1.16 हेक्टेयर रह गया। भूमि के घटने के साथ–साथ खेतों के आकार में कमी के कारण फसलों में पैदावार कम हो रही है जिससे किसानों की आय घट रही है।

5. **प्रति हेक्टेयर कम पैदावार**– विश्व बैंक के वित्तीय वर्ष 2014 के आंकड़ों के अनुसार भारत की प्रति हेक्टेयर पैदावार विश्व में सबसे कम है। भारत में पैदावार तीन टन/हेक्टेयर है। जबकि वैश्विक औसत 4 टन प्रति हैक्टेयर है। विकसित देशों यूएसए (7), फ्रांस (7.5) व जर्मनी (7) भारत की अपेक्षा बेहतर पैदावार करते हैं जिसका कारण आधुनिक कृषि तकनीक है।

भारत में विकास दर बढ़ाने का मूलमंत्र कृषि है। अतः इस क्षेत्र के लिए ठोस व प्रभावी नीतियों को अपना कर संपूर्ण अर्थव्यवस्था को बढ़ाने की आवश्यकता है। भारत को विश्व व्यापार संगठन के तहत किए गए समझौतों, वैश्वीकरण व उदारीकरण की प्रक्रियाओं का कृषि व ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करने के बाद ही लागू करना चाहिए। भारत को विकसित देशों के द्वारा दिखाए गए भ्रमित, प्रलोभित दिवा स्वप्नों को नहीं बल्कि यथार्थ एवं व्यावहारिक नीतियों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

1. एक सामाजिक अवधारणा के रूप में सर्वप्रथम वैश्वीकरण का प्रयोग करने का श्रेय किसे जाता है?

   (क) रॉलैण्ड रॉबट्र्सन को (ख) गिडेंस को

   (ग) रवि प्रकाश पांडेय को (घ) फ्राइडमैन को

2. किसके कारण विगत 50 वर्षों के दौरान तकनीकी ज्ञान काफी तीव्र गति से विकसित हुआ है?

   (क) समाजीकरण के कारण (ख) वैश्वीकरण के कारण

   (ग) बाजारीकरण के कारण (घ) राष्ट्रीयकरण के कारण

5.3 जल और कृषि तथा सिंचाई प्रबंधन प्रथाएं

इनका अध्ययन इस प्रकार किया जा सकता है–

जल एवं कृषि

भारत की आबादी का एक बड़ा हिस्सा कई प्रकार के संकटों– खाद्य असुरक्षा, पानी की कमी, अपर्याप्त ईंधन, असुरक्षित आजीविका जैसे संकटों से जूझ रहा है।

जल सुरक्षा भी एक गंभीर विषय है। ग्रामीण एवं शहरी इलाकों के करोड़ों लोगों के लिए पीने का पर्याप्त जल जुटाना प्रतिदिन का संघर्ष है। जलाशयों, नदियों व भूमिगत जल श्रोतों का कुप्रबंधन, वर्षा जल को खींचने वाले क्षेत्रों का क्षरण, बार–बार आने वाले सूखे, शहरों में आबादी की तेज वृद्धि, सतही एवं भूमिगत श्रोतों का प्रदूषण इसके सबसे प्रमुख कारण हैं।

भूमिगत पानी का संकट खासतौर से चिंता का विषय है। कृषि और औद्योगिक व शहरी जरूरतों के लिए इसका दोहन देश के बहुत सारे भागों में इतने ऊंचे स्तर पर पहुंच गया है कि जल स्तर बहुत तेजी से गिरता जा रहा है। ग्रामीण भारत में आधे से ज्यादा भूमिगत जलखंडों में पानी की भरपाई उतनी तेजी से नहीं हो पा रही है जितनी तेजी से पानी निकाला जा रहा है। देश के एक तिहाई जिलों में भूमिगत पानी पीने लायक नहीं है, उसमें लोहा, फ्लोराइड, आर्सेनिक और खारापन बहुत ज्यादा है।

भारत में पानी का कुल प्रयोग (लगभग 750 अरब घन मीटर) से कम है। लेकिन सन् 2025 के बाद यह कभी भी उपलब्ध स्तर को पार कर जाएगा और 2050 तक काफी ऊंचे स्तर पर जा पहुंचेगा। जैसे–जैसे प्रकृति का विखंडन और जल का क्षरण तेजी से हो रहा है वैसे–वैसे समुदाय बेरोजगार होते जा रहे हैं जो पहले स्वरोजगार (किसान, मछुवारे, चरवाहे) आदि हुआ करते थे।

देश के विशाल विस्तार में जल संसाधनों की असमानता है। भारत की बढ़ती आबादी, जल संसाधनों के प्रदूषण के कारण मौजूदा पानी की घटती गुणवत्ता, भारत के औद्योगिक और कृषि विकास ने एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी है जहां जल की खपत तेजी से बढ़ रही है। शहरी भारत के जल की लगभग 409 मांग भूजल से पूरी होती है। जिसके फलस्वरूप अधिकांश शहरों में भूजल स्तर प्रति वर्ष 2.3 मीटर की खतरनाक दर से गिर रहा है।

जल झीलों, नदियों, आर्द्रभूमि सहित पर्यावरण पर भी कई नकारात्मक प्रभाव डालता है। इसके अतिरिक्त कृषि में सिंचाई जल के प्रयोग से लगातार जल की कमी हो रही है। प्रति व्यक्ति 1544 घन मीटर जल की उपलब्धता के साथ भारत पहले से ही पानी की कमी से जूझ रहा है।

भारतीय कृषि अधिकांशतः सिंचाई पर निर्भर है। भारत के कुछ हिस्सों में, मानसून की कमी के कारण पानी की कमी हो जाती है, जिसके फलस्वरूप उपज की पैदावार पर भी असर पड़ता है। यह विशेष रूप से प्रमुख सूखा क्षेत्रों में जैसा कि दक्षिणी और पूर्वी महाराष्ट्र (पश्चिमी भारत), उत्तरी कर्नाटक (दक्षिण–पश्चिमी), आंध्र प्रदेश (भारत का दक्षिण–पूर्वी तट) और राजस्थान (पश्चिमी भारत) विशेष रूप से सूखा क्षेत्रों में आते हैं। सूखे का मतलब कृषि के लिए सामान्य से कम पानी की उपलब्धता होना है।

भारत पानी से समृद्ध देश नहीं है। जलवायु के नकारात्मक प्रभाव के कारण इसे और चुनौती मिल रही है। जनसंख्या वृद्धि और बदलती जीवन शैली ने पानी की मांग को बढ़ा दिया है।

केंद्रीय जल आयोग का गठन वर्ष 1957 में किया गया जो कि बाढ़ नियंत्रण, सिंचाई, नेविगेशन, पेय जल आपूर्ति के उद्देश्य से संबंधित राज्य सरकारों के परामर्श,

योजना, नियंत्रण, संरक्षण, जल विद्युत विकास और पूरे देश में जल संसाधनों के उपयोग के लिए आगे बढ़ने की सामान्य जिम्मेदारियों को देखता है। देश में राज्य सरकारों के सहयोग से जल संसाधनों के संरक्षण और उपयोग के लिए योजनाओं को प्रारंभ और समन्वित करना और जल की गुणवत्ता का निरीक्षण करना ताकि भू–जल का सबसे अधिक उपयोग सिंचाई के लिए हो सके, यह कुछ प्रमुख कार्यों में से एक है। देश में सिंचाई के मुख्य साधनों में नहरें, टैंक और कुएं तथा ट्यूबवेल हैं। इन सभी जल स्रोतों में भूजल की बहुत बड़ी हिस्सेदारी है जो कि 61.6 प्रतिशत जल उपलब्ध कराते हैं जबकि नहरें 24.5 प्रतिशत जल उपलब्ध करा पाती हैं।

पिछले कुछ वर्षों में सिंचाई के लिए सतही जल के उपयोग में लगातार गिरावट आई है और कृषि कार्य में भूजल उपयोग निरंतर बढ़ा है। ट्यूबवेल की हिस्सेदारी तेजी से बढ़ी है जिससे संकेत मिलता है कि किसानों द्वारा सिंचाई के लिए ट्यूबवेल का अधिक उपयोग किया जा रहा है। हरित क्रांति की शुरुआत ने सिंचाई के लिए भूजल पर निर्भरता बढ़ाई क्योंकि यह स्वयं कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए जल और उर्वरकों जैसे आगतों के अत्यधिक उपयोग पर निर्भर थी। सिंचाई उपकरणों के लिए ऋण ओर बिजली आपूर्ति के लिए सब्सिडी जैसे प्रोत्साहनों ने स्थिति को बदतर किया। बिजली दरों में कमी आने से जल उपयोग तेजी से बढ़ा जिसका परिणाम यह हुआ कि जल स्तर गिरता चला गया।

भूजल संदूषण तब होता है जब पानी में प्रदूषकों की उपस्थिति निर्धारित मात्रा से अधिक होती है। समान्य तौर पर पाए जाने वाले संदूषणों में आर्सेनिक, फ्लोराइड, नाइट्रेट और आयरन शामिल हैं। अन्य संदूषणों में बैक्टीरिया, फॉस्फेट और भारी वस्तुएं आती हैं। इस प्रदूषण का कारण घरेलू सीवेज, कृषि कार्य और औद्योगिक अपशिष्ट सहित अन्य मानव गतिविधियां हैं। संदूषण के स्रोतों में कचरा भरावों, सैप्टिक टैकों और लीकेज वाले भूमिगत गैस टैंकों से होने वाला प्रदूषण तथा उर्वरकों एवं कीटनाशकों का अत्यधिक प्रयोग शामिल है।

वर्तमान चिंताजनक स्थिति

भारत विश्व में भू–जल का सबसे बड़ा उपभोगकर्ता देश है जो प्रतिवर्ष लगभग 250 क्यूबिक मी. भूजल का उपयोग करता है। केंद्रीय भूजल प्राधिकरण के नवीनतम आंकड़ों के अनुसार वर्ष भर में 447 बिलियन क्यूबिक मीटर भूजल में से 228 बिलियन क्यूबिक मीटर भूजल का प्रयोग सिंचाई में किया जाता है। जबकि 25 बिलियन क्यूबिक मीटर भूजल का उपयोग घरेलू पेय एवं उद्योगों के कार्यों के लिए किया जा रहा है।

भूजल स्तर गिरने से सिंचाई लागत में वृद्धि होगी जिससे खेती की लागत में बढ़ोतरी होगी। इसके अतिरिक्त अन्य चुनौतियां आज भी बनी हुई है, जैसे–

- देश के कुल 6584 भूजल ब्लाक में से 1034 को पहले से ही अत्यधिक दोहनवाला घोषित किया जा चुका है। बाकि ब्लाकों की स्थिति भी ठीक नहीं है।
- करीब 96 ब्लाकों में तो केवल खारा पानी है जिसका बहुत अधिक प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

- रिचार्ज के लिए प्राकृतिक एवं कृत्रिम दोनों तरीके उपयोग किए जा सकते हैं। साथ ही वर्षा जल से इसे दोबारा भरने हेतु प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है।
- सरकार को कृषि क्षेत्र में भूजल का उपयोग नियंत्रित करने के लिए टपकन सिंचाई (drip irrigation) जैसी उपायों को बढ़ावा देना चाहिए।

वर्तमान समय में भूजल के उचित मूल्य निर्धारण के अलावा सरकार को ऐसी नीतियों को बनाने की आवश्यकता है, जो कृषि में भी भूजल के विवेकपूर्ण उपयोग को बढ़ावा दें। भूजल निष्कर्षण को कम करने के लिए सरकार को नई सिंचाई तकनीकों जैसे– ड्रिप, स्प्रिंकलर तकनीक को प्रोत्साहित करना चाहिए। जहां पारंपरिक तरीके से सिंचाई करने पर जल की काफी ज्यादा बर्बादी होती है वहां ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई से लगभग 50 प्रतिशत बचत होती है।

किसानों द्वारा भूजल प्रबंधन तथा अन्य पर्यावरण हितैषी उपायों को अपनाने पर जोर दिया जाना चाहिए। स्थानीय भूजल संसाधनों की स्थिति एवं उनकी समीक्षा, शिक्षा, जागरुकता के कार्यक्रमों में वृद्धि की आवश्यकता है जो कुशलतापूर्वक जल संसाधनों का प्रबंधन, रख–रखाव और वितरण को सुनिश्चित करेंगे। इसके अतिरिक्त भू–जल के अतिदोहन के परिणामों को लेकर भी लोगों के बीच साक्षरता आंदोलन शुरू किया जाना चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन प्रथाएं

भारत का क्षेत्रफल विश्व के कुल क्षेत्रफल का केवल 4 प्रतिशत है जबकि इसकी जनसंख्या विश्व की जनसंख्या का 16 प्रतिशत है किंतु इसके पास कुल उपलब्ध स्वच्छ जल आपूर्ति का केवल 4 प्रतिशत है।

जल संसाधनों को दो मुख्य श्रोतों में वर्गीकृत किया गया है– पृष्ठीय जल और भौम जल। वर्षा से जल विशाल मात्रा में मिलता है लेकिन वह बरबाद हो जाता है। इसके अलावा उपलब्ध जल उपयोग हेतु पूरी तरह से उयुक्त नहीं है। देश में जल की सबसे अधिक मात्रा सिंचाई में प्रयुक्त होती है और आगे भी होती रहेगी। इसी में तीन चौथाई अर्थात 75 प्रतिशत से अधिक जल का प्रयोग होता है। कृषि उत्पादन को सुधारने के लिए सिंचाई को सबसे अधिक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। सिंचाई का प्रयोग करके फसलों की अधिक विकसित किस्म पैदा की जा सकती है। अच्छी सिंचित भूमि में मृदा की नमी के प्रयोग से शुष्क अवधि में दूसरी फसल उगाई जा सकती है। इन प्रमुख कारणों के अलावा सिंचाई के लिए अन्य महत्वपूर्ण कारणों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है–

1. मानसून की अनश्चितिता के कारण फसलों को सूखे से बचाने के लिए सिंचाई आवश्यक है।
2. देश के सभी भागों में समान रूप से वर्षा नहीं होती है अतः कम वर्षा के क्षेत्रों में कृषि के लिए सिंचाई आवश्यक है।
3. कुछ क्षेत्रों में मिट्टी बलुई और दोमट होती है अतः इसमें खेती के लिए सिंचाई आवश्यक है।

4. भारत कृषि की दृष्टि से बहुत घनी आबादी वाला देश है। अभी भी 50 प्रतिशत से अधिक लोग कृषि पर आश्रित हैं। अधिक उत्पादन के लिए व्यापक सिंचाई आवश्यक है। समुचित और समय पर सिंचाई के द्वारा खाद्य और खाद्य से भिन्न दोनों फसलों का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

सिंचाई के प्रकार

सिंचाई के विभिन्न प्रकारों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– (1) प्रवाह सिंचाई और (2) उत्थित सिंचाई लघु/मध्य/बड़ी सिंचाई। जलाशय या टैंक से तभी अच्छा प्रवाह होता है जब जल आपूर्ति का श्रोत खेतों के स्तर की अपेक्षा अधिक ऊंचे स्थान पर हो। ऐसी सिंचाई को प्रवाह सिंचाई कहा जाता है। मैदानी क्षेत्रों में यह संभव है किंतु जहां खेत की भूमि अधिक ऊंचे स्थान पर होती है उसकी सिंचाई हेतु पंप द्वारा पानी ऊपर ले जाया जाता है। यह पद्धति उत्थित (Lift) सिंचाई के नाम से जानी जाती है। एक अन्य प्रचलित तरीका छिड़काव का है। यह उन फसलों पर किया जाता है जिन्हें जल की कम आवश्यकता होती है। इसके अलावा विभिन्न प्रकार की जल संचय सुविधा के अनुसार जैसे कुएं, टैंक या कृषि भूमि के आपूर्ति श्रोत से करने के लिए जल के निर्मित मार्ग, टैंक, सिंचाई और नहर सिंचाई के बीच अंतर किया जाता है। भारत में सिंचाई के तहत आने वाले कुल क्षेत्रफल में लगभग 40 प्रतिशत क्षेत्रफल नहरों द्वारा सींचा जाता है शेष 8 प्रतिशत अन्य श्रोतों द्वारा सींचा जाता है।

सिंचाई प्रबंधन के बारे में कैसे जानना चाहिए या वास्तव में किस प्रकार के उपकरण की आवश्यकता है? ये निर्णय व्यक्तिगत सिंचाई करने वालों के लिए अलग–अलग होते हैं।

सिंचाई कब करनी है यह फसल एवं पानी के उपयोग तरीके पर निर्भर करता है। पौधे नमी की कमी के कारण मुरझा जाते हैं (तनाव दिखाते हैं)। आमतौर पर फसल की उपज और उत्पादन की गुणवत्ता सिंचाई पर निर्भर होती है। उथली जड़ों से भी अति तनाव स्थिति हो सकती है तथा अति सिंचाई, या बीमारी से, कीट क्षति से या अन्य तत्वों की कमी का भी उपज पर प्रभाव पड़ता है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. देश के कितने जिलों में भूमिगत पानी पीने लायक नहीं है?

(क) एक चौथाई (ख) आधे

(ग) एक तिहाई (घ) सभी

4. केंद्रीय जल आयोग का गठन कब किया गया था?

(क) 1927 में (ख) 1937 में

(ग) 1947 में (घ) 1957 में

5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (ग)
4. (घ)

5.5 सारांश

वैश्वीकरण एक जटिल, आर्थिक, राजनीतिक ओर सामाजिक प्रक्रिया है। सामाजिक वैज्ञानिक दृष्टि में वैश्वीकरण की प्रक्रिया समय और दूरी का राष्ट्र–राज्य से आगे संकुचन उत्पन्न करती है। वैश्वीकरण में वर्तमान धारा का उदारीकरण और निजीकरण से अभिन्न संबंध है। यह पूंजी, श्रम, उत्पाद, प्रौद्योगिकी और सूचना के जरिए आधुनिकीकरण, राष्ट्र निर्माण एवं राष्ट्रों के बीच गठबंधन निर्माण के साथ ही उत्पन्न हो रही है। इसे सूचना तकनीकी एवं जैव प्रौद्योगिकी में हो रहे क्रांतिकारी परिवर्तनों से गति मिलती है। इसमें प्रतियोगिता, दक्षता, बेहतर उत्पादकता एवं प्रौद्योगिकी तरक्की के जरिए प्रगति की भी संभावना है।

रवि प्रकाश पांडेय के अनुसार, "वैश्वीकरण की प्रक्रिया समय और दूरी का राष्ट्र–राज्य से आगे संकुचन उत्पन्न करती है। इसके आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आयाम है। वैश्वीकरण की वर्तमान धारा का उदारीकरण और निजीकरण से अभिन्न संबंध है। इसमें विश्व बाजार, विभिन्न आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं, मल्टीमीडिया प्रौद्योगिकी तथा संस्कृति आदि के एकीकरण का अंतर्वेशन हो रहा है। जबकि राष्ट्र–राज्य की प्रभुसत्ता और स्वदेशीयता आदि में कमी आ रही है।"

थॉमस, फ्राइडमैन के अनुसार, "वैश्वीकरण वास्तव में बाजारों, अर्थव्यवस्था और प्रौद्योगिकियों का एकीकरण है। इसमें विश्व का मध्यम से छोटे रूप में एक ऐसा संकुचन हो रहा है जिससे हम दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने तक इतनी जल्दी तथा सस्ते में पहुंच जाएं जितने में पहले कभी संभव नहीं था। पूर्व की सभी अर्थव्यवस्थाओं की भांति यह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में घरेलू राजनीति, आर्थिक नीतियों तथा सभी देशों के विदेशी संबंधों को स्वरूप प्रदान कर रहा है।"

वैश्वीकरण का कृषि पर भी व्यापाक प्रभाव पड़ा है। भारत में 90 प्रतिशत कृषक छोटे एवं सीमांत कृषि के अंतर्गत आते हैं। कृषकों के पास सीमित पूंजी एवं आय कम होने के कारण ये किसान कृषि आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं को कम मात्रा में उपयोग कर पाते हैं। हरित क्रांति के बाद जिन कृषकों के पास पूंजी थी उन कृषकों को सबसे अधिक लाभ मिला। लेकिन सीमांत कृषकों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। वैश्वीकरण के कारण कृषि उत्पादकता पर भी काफी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। जैविक खादों एवं कीटनाशक दवाइयों का महंगा होना, कृषि शोध एवं जैविक विविधता में बाधा आदि के कारण कृषि की उत्पादकता एवं कृषि पद्धति काफी प्रभावित हुई है।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की केंद्र बिंदु व भारतीय जीवन की आधारशिला है। आर्थिक जीवन का आधार, रोजगार का प्रमुख स्रोत तथा विदेशी मुद्रा अर्जन करने का माध्यम होने के कारण कृषि को देश की आधारशिला कहा जाता है। देश की कुल श्रम शक्ति का लगभग 52 प्रतिशत भाग कृषि एवं कृषि से संबंधित क्षेत्रों से अपनी जीविका चलाते हैं अतः देश का विकास कृषि के विकास, समृद्धि व उत्पादकता पर निर्भर है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात कृषि को देश की आत्मा के रूप में स्वीकारते हुए देश के प्रथम प्रधानमंत्री नेहरू ने कहा था कि, "सब कुछ इंतजार कर सकता है मगर खेती नहीं"। इसी तथ्य का अनुसरण करते हुए भारत सरकार कृषि क्षेत्र को विकसित करने एवं कृषकों की आर्थिक स्थिति में सुधार करने हेतु अनेक कार्यक्रम, नीतियां एवं योजनाओं का संचालन कर रही है। सरकार ने 1960–61 में भूमि सुधार कार्यक्रम के द्वारा किसानों को भूमि का मालिकाना हक प्रदान किया। भू–जोतों की अधिकतम सीमा तथा चकबंदी जैसे कार्यक्रमों द्वारा कृषक वर्ग लाभान्वित हुआ।

वैश्वीकरण की नीतियों के तहत भारतीय बाजार के द्वार विदेशी कृषि उत्पादकों के लिए खोल दिए जाने पर देश की कृषि व्यवस्था पर संकट के बादल छा रहे हैं। उच्च लागत व उच्च कीमतों के कारण हमारे कृषि उत्पाद विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं कर पा रहे हैं। इसके अतिरिक्त विकसित देशों के द्वारा अपने कृषकों व कृषि उत्पादों से संबंधित विविध कंपनियों को भारी मात्रा में अनुदान दिया जा रहा है जिसके कारण हमारे बाजारों में भी विदेशी कृषि उत्पादों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है।

भारत में कृषि पर वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभाव देखने के लिए कृषि की हिस्सेदारी बढ़ाने की कोशिश करना जरूरी है। निर्यात के उत्पादों की गुणवत्ता एवं मात्रा बढ़ाने हेतु कृषि क्षेत्र की समस्याओं का अध्ययन आवश्यक है। बिजली की अनियमितता एवं अपर्याप्त आपूर्ति, बुनियादी सेवाओं की कमी, उत्पादन में कमी, बढ़ती फसलों की योजना की कमी, वित्त की कमी, बारिश पर निर्भरता आदि समस्याओं को हल करने एवं उत्पादों का उचित मूल्य प्राप्त करने के लिए विभिन्न उपाय किए जा रहे हैं। प्रसंस्करण उद्योगों को कृषि उत्पादों को संसाधित करने के लिए विकसित किया गया है। किसानों को कृषि संबंधित उद्योगों के लिए प्रशिक्षित किए जाने हेतु मार्गदर्शन दिया जाना चाहिए जिससे वैश्वीकरण में कृषि को उत्साहित कर सकते हैं।

भारत की आबादी का एक बड़ा हिस्सा कई प्रकार के संकटों– खाद्य असुरक्षा, पानी की कमी, अपर्याप्त ईंधन, असुरक्षित आजीविका जैसे संकटों से जूझ रहा है।

जल सुरक्षा भी एक गंभीर विषय है। ग्रामीण एवं शहरी इलाकों के करोड़ों लोगों के लिए पीने का पर्याप्त जल जुटाना प्रतिदिन का संघर्ष है। जलाशयों, नदियों व भूमिगत जल श्रोतों का कुप्रबंधन, वर्षा जल को खींचने वाले क्षेत्रों का क्षरण, बार–बार आने वाले सूखे, शहरों में आबादी की तेज वृद्धि, सतही एवं भूमिगत श्रोतों का प्रदूषण इसके सबसे प्रमुख कारण हैं।

भारतीय कृषि अधिकांशतः सिंचाई पर निर्भर है। भारत के कुछ हिस्सों में, मानसून की कमी के कारण पानी की कमी हो जाती है, जिसके फलस्वरूप उपज की पैदावार

पर भी असर पड़ता है। यह विशेष रूप से प्रमुख सूखा क्षेत्रों में जैसा कि दक्षिणी और पूर्वी महाराष्ट्र (पश्चिमी भारत), उत्तरी कर्नाटक (दक्षिण–पश्चिमी), आंध्र प्रदेश (भारत का दक्षिण–पूर्वी तट) और राजस्थान (पश्चिमी भारत) विशेष रूप से सूखा क्षेत्रों में आते हैं। सूखे का मतलब कृषि के लिए सामान्य से कम पानी की उपलब्धता होना है।

पिछले कुछ वर्षों में सिंचाई के लिए सतही जल के उपयोग में लगातार गिरावट आई है और कृषि कार्य में भूजल उपयोग निरंतर बढ़ा है। ट्यूबवेल की हिस्सेदारी तेजी से बढ़ी है जिससे संकेत मिलता है कि किसानों द्वारा सिंचाई के लिए ट्यूबवेल का अधिक उपयोग किया जा रहा है। हरित क्रांति की शुरुआत ने सिंचाई के लिए भूजल पर निर्भरता बढ़ाई क्योंकि यह स्वयं कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए जल और उर्वरकों जैसे आगतों के अत्यधिक उपयोग पर निर्भर थी। सिंचाई उपकरणों के लिए ऋण ओर बिजली आपूर्ति के लिए सब्सिडी जैसे प्रोत्साहनों ने स्थिति को बदतर किया। बिजली दरों में कमी आने से जल उपयोग तेजी से बढ़ा जिसका परिणाम यह हुआ कि जल स्तर गिरता चला गया।

5.6 मुख्य शब्दावली

- **जटिल** : मुश्किल, कठिन।
- **दक्षता** : योग्यता।
- **प्रयास** : कोशिश।
- **निकटता** : नजदीकी।
- **प्रगति** : तरक्की।
- **अवसर** : मौका।

5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. वैश्वीकरण की परिभाषा दीजिए।
2. वैश्वीकरण के क्या उद्देय हैं?
3. भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में शीत गृहों तथा बाजार केंद्रों की क्या स्थिति है?
4. कृषि में जल का कितना महत्व है?
5. सिंचाई के विभिन्न प्रकारों को कितने वर्गों में विभाजित किया जा सकता है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. वैश्वीकरण की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. वैश्वीकरण को प्रोत्साहित करने वाले कारकों का विश्लेषण कीजिए।
3. वैश्वीकरण के कृषि पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या कीजिए।
4. भारतीय कृषि के समक्ष मौजूद प्रमुख चुनौतियों की समीक्षा कीजिए।

5. भारत में वर्तमान में जल की क्या स्थिति है? तथा सिंचाई प्रबंधन प्रथाओं पर प्रकाश डालिए।

5.8 सहायक पाठ्य सामग्री

MacIver, R.M and C. Page. *Society: An Introductory Analysis*. New York: Macmillan.

Bottmore, T.B. *Sociology — A Guide to Problems and Literature.* Delhi: S. Chand.

Davis, Kingsley. *Human Society.* New York: Macmillan.

Horton, Paul. B, and Chester, L. Hunt, *Sociology.* New York: McGraw-Hill.

Hadden W. Richard. *Sociological Theory — An Introduction to the Classical Tradition.* Canada: Board View Press.

Spencer, H. *Study of Sociology*. Michigan: University of Michigan Press

Rao, M.S.A.(Eds), *Urban Sociology in India: Reader and Source Book*. New Delhi: Orient Longman, New Delhi.

Shivaramakrishan, K.C. Amitabh Kundu and B.N. Singh, 2005. *Oxford Hand Book of Urbanisation in India.* New Delhi: Oxford University Press, New Delhi.

Hadden W. Richard. *Sociological Theory — An Introduction to the Classical Tradition.* Canada: Board View Press.

Singh, Y. *Indian Sociology: Social Conditioning and Emerging Concerns*. Delhi: Vistaar.